"आधुनिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में श्री मद्भगवद् गीता का शैक्षिक निहितार्थ एवं उसकी प्रासंगिकता का एक आलोचनात्मक अध्ययन।"

(A Critical Study of Educational Implication of Shri Mad Bhagavad Gita and its relevence in Modern India)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के शिक्षाशास्त्र
में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु
प्रस्तुत "शोध-प्रबन्ध"
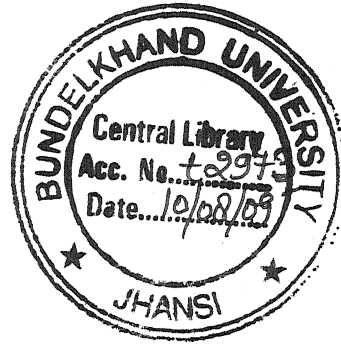
शोध निर्देशक
डॉ० डी०एस० दुबे
एम०ए०, एम०एड०
पी०एच०डी०
विभागाध्यक्ष (से०नि०) शिक्षा संकाय
बुन्देलखण्ड डिग्री कॉलेज, झाँसी

शोधकर्त्री
आरती सिंघल
एम०ए०, एम०एड०
(सहा० अध्यापिका)
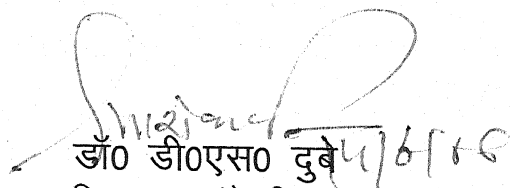
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

2005-2006
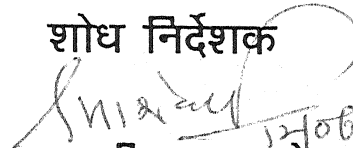
प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के शीर्षक "**आधुनिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में श्री मद्भगवद् गीता का शैक्षिक निहितार्थ एवं उसकी प्रासंगिकता का एक आलोचनात्मक अध्ययन**" को श्रीमती आरती सिंघल एम0ए0, एम0एड0 ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के शिक्षा शास्त्र में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन व परिवीक्षण में वांछित वर्षो के अभ्यन्तर पूर्ण किया है। मैं पुनः प्रमाणित करता हूँ कि जहाँ तक मुझे ज्ञात व विश्वास है कि इनका प्रस्तुत कार्य मौलिक है और इन्होंने अन्यत्र अन्य उपाधि हेतु इसे नहीं प्रस्तुत किया है।

दिनांक –

डॉ0 डी0एस0 दुबे
विभागाध्यक्ष (सेवानिवृत)
प्रशिक्षण विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,
झाँसी

प्रमाणित किया जाता है कि शोधकर्त्री आरती सिंघल ने मेरे निर्देशन में २०० दिन तक उपस्थित होकर नियमित रूप से कार्य किया है।

शोध निर्देशक

17/06/06
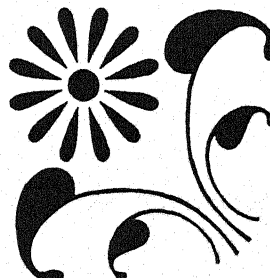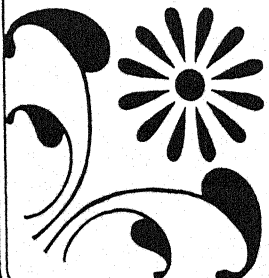
डा० डी०एस० दुबे
विभागाध्यक्ष (से०नि०) शिक्षा संकाय
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी

यह शोध – प्रबन्ध मेरे पिता **श्री बी0डी0 अग्रवाल** (प्रवक्ता बिपिन, बिहारी इन्टर कॉलेज, झाँसी) तथा मेरी माँ **श्रीमती शोभा अग्रवाल** (एम0ए0, बी0एड0) के श्री चरणों में समर्पित है।

आभार प्रदर्शन

गुरूर्ब्रह्म गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वर :।

गुरूः साक्षात परब्रह्मः तस्मै श्रीं गुरूवै नमः।।

आभार ज्ञापन की भावांजलि का प्रथम प्रसून उन गुरूदेव डॉ0 डी0एस0 दुबे विभागध्यक्ष शिक्षा संकाय बुन्देलखण्ड महाविद्यालय के चरण कमलों मे श्रद्धा पूर्वक अर्पित जिन्होने मेरे द्वारा किये गये कार्यो को विधिवत पर्वेक्षित किया तथा इसे पूर्ण करने हेतु सह्रदय सहयोग प्रदान किया। इनकी महती कृपा से मैं इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण कर पाई।

मैं बुन्देलखण्ड डिग्री कॉलेज झॉसी तथा विपिन बिहारी इन्टर कालेज झाँसी के प्राचार्यो की आभारी हूॅ जिन्होने मेरे प्रस्तुत शोध हेतु उपयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थों एवं पुस्तकों की व्यवस्था प्रदान की।

मैं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झॉसी जिला पुस्तकालय झॉसी तथा चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ के पुस्तकालयाध्यक्षो एवं गीता प्रेस गोरखपुर के साहित्य की भी कृतज्ञ हूॅ जिनके माध्यम से शोध प्रबन्ध हेतु मौलिक कृतियों, संन्दर्भ ग्रन्थों, पत्र पत्रिकाओं, तथा अन्यान्य पुस्तकों को उपलब्ध कराने में इनका बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ।

मैं अपने जीवन साथी श्री राजीव रस्तौगी एवं अपने पुत्र आर्जव रस्तौगी की अक्षुण्ण आभरी हूॅ। जिन्होने मुझे शोध करने के लिये हमेशा अपना असीम सहयोग एवं अमूल्य समय प्रदान किया। जिन्होने मेरे लक्ष्य में कभी वाधा उत्पन्न नहीं होने दी तथा जिनके प्रेरणा और सहयोग से ही मैं अपने कर्मपथ पर अग्रसर होकर पूर्ण लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो सकी।

मैं डॉ0 धर्मेन्द्र दुबे जी एवं श्री अरूण कुमार वशिष्ठ चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय की आभारी हूॅ जिन्होने समय–समय पर मेरा उत्साह बढ़ाया एवं

शोध को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया।

मैं अपने माता–पिता समान सास एवं ससुर, श्री नरेन्द्र कुमार रस्तौगी, श्रीमती मधुवाला रस्तौगी तथा ननद श्रीमती राखी रस्तौगी एवं देवर श्री रोविन रस्तौगी की भी आभारी हूँ, जिन्होने मुझे अपना मूल्यवान समय एवं सहयोग दिया।

मैं अपने शोध प्रबन्ध के कम्पोजर श्री रामबाबू राय, युसुफ खान जो मेरे भाई हैं उनका हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने अथक परिश्रम करके शुद्ध रूप में तथा सौन्दर्यात्मक ढंग से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को कम्प्यूटरीकृत किया है।

अन्ततः मैं अपने उन प्रिय जनो को धन्यवाद प्रेषित करता चाहती हूँ जिनके बहुमूल्य सुझावों एवं स्नेहपूर्ण सहयोग के बिना यह शोध पूर्ण करना असम्भव था। मैं अपनी बड़ी वहिन श्रीमती ज्योति गोयल, छोटी वहिन श्रीमती पूजा गुप्ता, भाई श्री कपिल सिंघल एवं भाभी श्रीमती विमिता सिंघल की हृदय से आभारी हूँ, उनके अमूल्य सहयोग के लिये कृतज्ञता ज्ञापन करना शोधिका के शब्दों की सीमा से परे है।

A. Singhal

(आरती सिंघल)

प्राक्कथन

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नापुनर्भवम्।

कामये दुःख तप्तानां प्राणिनार्मित नाषनम्।।

केडनु स स्यादुपायोडत्र येनाहं दुःखीतात्मनाम्।

अन्तः प्रविष्य भूतानां भ्वेयं दुःखभाक् सदा।।

"न तो मैं किसी राज्य की सत्ता प्राप्त करना चाहता हूॅ न ही मेरी इच्छा स्वर्ग व अमरत्व प्राप्ति की है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि कष्ट एवं दुःखों से पीड़ित लोगों को कुछ लाभ प्रदान कर सकूँ, जिससे मैं दुःखों से पीड़ित मनुष्यों के हदय में स्थान बना सकूँ और उनके दुःख–दर्द बाँट सकूँ।" गीता दर्शन का लक्ष्य एवं जीवन के मूल्य उपरोक्त पंक्तियों से प्रकट होते हैं।

गीता दर्शन में हम देखते हैं कि दो कर्मयोगी व्यक्तियों का समन्वय है– प्रथम भगवान कृष्ण की ध्यान ऊर्जा द्वितीय अर्जुन की व्यवहारिक कुशलता। यह दोनो गुण ही हैं जिनसे व्यक्ति प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत गीता दर्शन के शैक्षिक एवं दार्शनिक चिंतन के पक्ष का अध्ययन करने का प्रयास इस शोध अध्ययन में किया गया है। जो आज के समाज के लिये विशेष अनुकरणीय है एवं भारतीय संस्कृति का पोषक है।

गीता की दार्शनिक विचारधारा के अन्तर्गत कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग के विवेचन के साथ देश–भक्ति, सहिष्णुता, ईश्वर में विश्वास, धर्म एवं जन–सहयोग की अवधारणा तथा धार्मिक शिक्षा की समीक्षा की गई है। वर्तमान में उसकी उपादेयता का विश्लेषण करने का प्रयास इस शोध अध्ययन के अन्तर्गत किया गया है। शिक्षा को सभी की उन्नति का आधार मानने वाले प्रमुख भारतीय शिक्षविदों के शिक्षा दर्शन का भी उल्लेख प्रस्तुत शोध अध्ययन में समाहित है।

आज हम सामाजिक परिवर्तन के उस दौर से गुजर रहे हैं जो हमे यह सोचने पर विवश कर देता है कि क्या आज हमारी पीढ़ी वैसी बन पाई है जैसा हम चाहते थे। यदि वैसी नही बन पाई तो हमारी शिक्षा प्रणाली समय के अनुकूल

सिद्ध नहीं हुई। क्या वह इतनी अशक्त है कि समय के अनुकूल अपने को न ढाल सकी। यह मूलभूत प्रश्न है। इसका कारण आधुनिकता की अंधी दौड़ है।

अरस्तु ने बतलाया था कि मनुष्य–जीवन के दो पक्ष हैं – पशुत्व तथा विचारशीलता। इनमें से दूसरा ही पक्ष प्रधान है। गीता में मानव और पशु का अन्तर बतलाते हुए जीवन को उच्च बनाने की प्रेरणा दी गयी है आज का मनुष्य जिस प्रकार इंसानियत को तजकर भोग विलास की तरफ भाग रहा है यही मानवता के विध्वंस का कारण है तथा नैतिकता का पतन है।

गीता एक ऐसी शक्ति का नाम है जिसमे मिट्टी के उपकरणों से फौलाद के अस्त्र ढालने की क्षमता है। इसमें समन्वयवादी, आदर्शवादी, मानवतावादी, प्रगतिवादी सभी विचारधाराओं का समन्वय है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में –

''कुछ लोग ऐसे होते हैं जो आधुनिकता को सीमित रूप में देखते हैं, उनके अनुसार भूतकाल दिवालिया समय है जो हमारे लिए कोई अमानत नहीं छोड़ता है। केवल ऋणों की विरासत छोड़ता है। वह इस पर विश्वास करने को तत्पर नहीं है कि वह सेना जो अग्रगामी है पार्श्व से भी पोषित हो सकती है। ऐसे अभागे जिन्होनें अपने भूतकाल को खो दिया है, अपने वर्तमान को भी खो देते हैं। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम भी ऐसे ही विरासतहीन व्यक्ति हैं। अब समय आ गया है कि हम अपने पूर्वजों के खजाने को खोलें और उसका उपयोग करें।''

अतः गीता के महान आदर्शो को जानना एवं समझना अति आवश्यक है विशेषकर तब जबकि भारतीय नवयुवक अपनी सांस्कृतिक धरोहर से विलग होकर पाश्चात्य सभ्यता के पीछे भाग रहे हैं। अतैव प्रस्तुत अध्ययन द्वारा भारतीय की वर्तमान पीढ़ी को गीता द्वारा बताये गये जीवन के आदर्शों एवं शिक्षाओं से अवगत कराने हेतु यह शोध अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

शोधकर्त्री

आरती सिंघल

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भारत एक महान देश और प्रभावी अतीत वाला है। लेकिन भारत एक नया राष्ट्र भी है यदि लोग यह सोचें कि यथा स्थिति बनाये रखेगें और परिस्थितियां अपने आप अनुकूल होती चली जायेगीं तो वे भ्रम में हैं। किसी भी जीवित संस्कृति के लिये यह जरूरी है कि उसमें गहराई हो, बदलती रहे और विकास करने की क्षमता हो।

(जे0एल0 नेहरू)

प्रथम अध्याय

आमुख – यद्यपि भगवद्‌गीता का व्यापक पठन–पाठन एवं प्रकाशन होता रहा है तथापि यह आज भी उतना ही नवीन एवं नित नये विचारों का उद्‌गम स्रोत है। बाबू अरविंद घोष ने स्वयं कहा है कि – ''प्रत्यक्ष अनुभव से यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि श्री मद्‌भगवद् गीता वर्तमान युग में भी उतनी ही नव्यतापूर्ण एवं स्फूर्तिदात्री है, जितनी की महाभारत में समाविष्ट होते समय थी।''1 श्री मद्‌भगवद् गीता को गीतोपनिषद भी कहा जाता है। यह वैदिक ज्ञान का सार है और वैदिक साहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपनिषद है।

इसकी महत्ता एवं श्रेष्ठता केवल भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी स्वीकार की गयी है। थॉमस मर्टन ने कहा है कि ''गीता को विश्व की सबसे प्राचीन जीवित संस्कृति, तथा भारत की महान धार्मिक सभ्यता के प्रमुख साहित्यिक प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है।''2 इसके माहात्म्य को बताते हुए – डॉ0 गेड्डीज मैक्ग्रेगर ने आगे कहा है कि ''पाश्चाव्य जगत में भारतीय साहित्य का कोई भी ग्रन्थ इतना अधिक उद्‌धृत नहीं होता जितना कि भगवद्‌गीता, क्योंकि यही सर्वाधिक प्रिय है।''3

गीता नीतिशास्त्र का विश्व विख्यात ग्रन्थ है। ऐसी जन श्रुति है कि गीता साक्षात् श्री कृष्ण के मुखारबिन्द से निकली हुई वाणी है। इसके संकलन कर्ता श्री व्यास जी है। श्री कृष्णजी ने अपने उपदेश का जितना अंश पद्यों में ही कहा था उसे व्यास जी ने ज्यों का त्यों रख दिया। वे अंश जिन्हे उन्होंने गद्य में कहा था, उसे व्यास जी ने स्वयं श्लोक वद्ध कर दिया था, इसके अतिरिक्त व्यास जी ने संजय साथ ही अर्जुन एवं धृतराष्ट्र के वचनों की भाषा को भी अपने शब्दों में श्लोक वद्ध कर लिया था। इस प्रकार सात सौ श्लोकों के पूरे ग्रन्थ को अठ्ठारह अध्यायों में विभक्त करके श्री व्यास जी ने महाभारत महाकाव्य में मिला दिया था,

जो आज हमें इस रूप में उपलब्ध है।

श्री मद्भगवद् गीता का अर्थ – श्री मद् का अर्थ है – 'सुन्दर, शानदार एवं भगवद् का अर्थ है – 'दैवीय' अथवा 'भगवान का', 'ईश्वर का' तथा गीता का अर्थ है – 'गीत'। अतः श्री मद्भगवद् गीता का अर्थ है – देवों का सुन्दर गीत' अथवा सुन्दर दैवीय गीत (A Beautiful song of Divine one)

गीता महाभारत के दो चरित्र कृष्ण और अर्जुन के मध्य प्रश्नोत्तर के रूप में एक वार्तालाप है, जब सारथि बने कृष्ण अर्जुन के रथ को लेकर कुरूक्षेत्र में आते है तो अर्जुन अपने भाइयों, चाचाओं, ताऊओं, गुरूओं आदि रिश्तेदारों को देखकर विषाद युक्त हो, युद्ध न करने का प्रस्ताव रख देते है। यही वास्तव में विषाद योग का वर्ण्य विषय है जिस प्रकार कि कोई शिष्य अध्ययन करने से विरत होने के लिए कोई विशेष कारण ढूढ़ लेता है जैसे– पारिवारिक, आर्थिक एवं शारीरिक स्थिति आदि। उसी प्रकार अर्जुन भी विषाद युक्त होकर धर्म युद्ध से अलग होना चाहते हैं। ऐसे समय में शिक्षक उसे अध्ययन हेतु प्रेरित करता है उसे पुरस्कार, दण्ड प्रोत्साहन आदि प्रेरणाओं के माध्यम से सत कार्य हेतु उसे प्रेरित करता है, वही कार्य यहाँ पर श्री कृष्ण एक सद् शिक्षक के रूप में अपने शिष्य अर्जुन के विषाद, मोह तथा माया के बन्धन को तिरोहित कर धर्म युद्ध रूपी सद् कार्य की ओर उसे उन्मुख करने के लिए देवताओं की वाणी एवं उनकी शिक्षाओं का उपदेश देते है तथा कर्म करने के लिए प्रेरित करते है।

महान आत्माये, महापुरूष एवं महाकविगण समय और स्थान से बंधे नहीं होते हैं। भारत के इन महान आत्माओं ने ज्ञान एवं मानवीय कर्मो, गुणों, नियमों को वेदो, पुराणों एवं उपनिषदों जैसे ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया है। श्री मद्भगवद् गीता मानवीय शिक्षाओं का प्रमुख स्रोत एवं प्रेरणा स्तम्भ है।

श्री मद्भगवद् गीता का प्रधान विषय है ईश्वर प्राप्ति, तथा इसका मुख्य

संदेश है, 'निष्काम कर्म' है अर्थात बिना फल की इच्छा किये हुए कर्त्तव्य करना। आत्मा अजर व अमर है, न तो इसे कोई मार सकता है और न ही वह किसी को मार सकती है। गीता ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के संगम की त्रिवेणी है। गीता में निष्काम कर्म को सुगम एवं उत्तम साधन के रूप में स्वीकार करते हुये जीवन के लक्ष्य अन्तिम मुक्ति को ज्ञान के माध्यम से प्राप्त करने की ओर अभिप्रेरित किया गया है।

दर्शन के अध्ययन – अध्यापन की परम्परा संसार भर में अति प्राचीन काल से चली आ रही है, किन्तु भारत को इस दृष्टि से विश्व में विशेष स्थान है। यहाँ दर्शन को कोरी कल्पना की वस्तु न समझकर व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया गया है और सत्य का साक्षात् दर्शन करने का प्रयास किया गया है। गीता एक व्यावहारिक दर्शन का अनुपम ग्रंथ है। इसके शैक्षिक विचार पूर्णतया व्यावहारिक है।

यह केवल सैद्धान्तिक विचारों का विवरण मात्र नहीं है जीने की क्रियाओं में ही शिक्षा निहित है ऐसा ही गीता का विशेष सन्देश है। जब जीने की क्रिया से भिन्न 'शिक्षण' नाम की कोई स्वतन्त्र क्रिया वन जाती है तब किसी विजातीय द्रव्य के शरीर में प्रविष्ट होने पर सम्भावय दुष्परिणाम की तरह शिक्षा का भी मन पर विषैला और रोग युक्त प्रभाव पड़ता हैं। कर्म की कसरत किये बिना ज्ञान की क्षुधा नहीं लगती। बलात् ठूंसे हुये ज्ञान से तो अपचन होकर बौद्धिक पेचिस शुरू होती है और मानव की नैतिक मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि गीता कर्म के सिद्धांत को विशेष महत्व देकर मानव को ज्ञानवान बनाना चाहती है।

आज हम शैक्षिक अवसरों की समानता की चर्चा करते है, किन्तु शिक्षा कोई ऐसा सामान या माल तो नहीं है जिसका समान रूप से वितरण किया जाय। हां, यदि इसका वितरण होगा भी तो वह योग्यता के आधार पर ही हो सकता है।

गीता में श्री कृष्ण के उपदेशों को केवल अर्जुन ही समझ कर ग्रहण कर पाये हैं। श्री कृष्ण ने उन्हे ही योग्य समझा। इस प्रकार गीता भी यह सिद्धान्त प्रतिपादित करती है कि शिक्षा का वितरण केवल योग्यता के आधार पर ही संभव है शिक्षा का संबन्ध केवल बाह्य जगत से नहीं होता वरन् शिक्षा व्यक्ति के अन्दर परिवर्तन लाना चाहती है और व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन शिक्षा का मुख्य विषय है। 'श्री मद्भगवद् गीता' के शैक्षिक विचारों ने अर्जुन के दृष्टिकोण में तथा जीवन में किस प्रकार परिर्वतन लाकर कर्मशील मानव बनाया है यह सर्वाविदित है। एकता में अनेकता का दर्शन भारतीय दर्शन कुंजी है। विश्व की नियामक सत्ता 'ब्रह्म' और इस पिण्ड की नियामक सत्ता 'आत्मा' है। आत्मा और ब्रह्म में अभेद ही ''एकमेवा द्वितीयम' नेह नास्ति किच्चन्'' कहकर ऋृषियों ने इस अद्वितीय तत्व को प्राप्त करने का परामर्श दिया है। हमारी शिक्षा का लक्ष्य वास्तव में व्यक्तित्व का बहुआयामी विकास करना है। व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास पर गीता के शैक्षिक विचार भी बल प्रदान करते हैं। सर्वागीण विकास में शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, भावात्मक एवं अध्यात्मिक सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाता है।

श्री मद्भगवद् गीता ज्ञान का अथाह समुद्र है, इसके अन्दर ज्ञान का अनन्त भण्डार भरा है। ऐसे अगाध रहस्यमयी गीता के आशय, महत्व एवं शैक्षिक विचारों को समझना मेरे जैसे मनुष्य के लिये ठीक वैसा ही प्रयास है जैसा कि एक साधारण पक्षी का अनन्त आकाश का पता लगाने का प्रयत्न करना है।

विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि गीता का मुख्य तात्पर्य अनादिकाल से अज्ञानवश संसार सागर में पड़े हुये जीव को परमात्मा की प्राप्ति कराना है। गीता में ऐसे उपाय बताये गये हैं जिनके आचरण से मनुष्य अपने सांसारिक कर्तव्य–कर्मो को भली भॉति करता हुआ परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

व्यवहारिक परमार्थ के प्रयोग की यह अद्भुद कला गीता में स्पष्ट परिलक्षित होती है। गीता में ज्ञान और कर्म शब्दों का प्रयोग जिन–जिन अर्थो में हुआ है वह भी विशेष रहस्यमय है। गीता के कर्म और कर्मयोग तथा ज्ञान और ज्ञान योग दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं।

गीता में जिस पद्धति का निरूपण किया गया है, वह सर्वथा भारतीय और ऋृषि सेवित है तथापि गीता के शैक्षिक विचार परम्परा पर मनन करने पर यह कहा जा सकता है कि गीता में बताये हुये साधनों के अनुसार आचरण करने का अधिकार मनुष्य मात्र को ही है। गीता की शिक्षा समस्त मानव जाति के लिये है किसी खास वर्ग या किसी खास आश्रम के लिये नहीं, वास्तव में यही गीता की विशेषता है। गीता की शिक्षाओं में जगह–जगह "मानव", "नर", "देहमृत", "देही" आदि शब्दों का प्रयोग इसी बात को स्पष्ट करने के लिये किया गया है। गीता में वर्ण धर्म पर विशेष जोर दिया गया है। जिस वर्ग के लिये जो कर्म निहित है उसके लिये वे ही कर्म कर्तव्य है।

कर्मभोग के साधन में कर्म की प्रधानता है और स्ववर्णोचित निहित कर्म करने की विशेष रूप से आज्ञा है। गीता में भक्ति, ज्ञान, कर्म सभी विषयों का विशद रूप से विवेचन किया गया हैं गीता में समता की बात प्रधान रूप से प्रकट की गई है। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति तीनों में समता की आवश्यकता बतलाई गयी है। श्री मद्भगवद् गीता में सम्पूर्ण प्राणी की क्रिया भाव और पदार्थो में अनेकों प्रकार से समता की व्याख्या की गई है। सर्वत्र समदृष्टि रखने की शिक्षा प्रदान की गयी है। दुख–सुख, लाभ–हानि, निन्दा–स्तुति सभी में समान भाव रखने वाले प्राणी की महत्ता प्रति पादित की गई है। जो समता युक्त पुरूष है वही वास्तव में सच्चा साम्यवादी है। गीता के साम्यवाद और वर्तमानकाल के साम्यवाद में बड़ा अन्तर है। वर्तमान काल का साम्यवाद ईश्वर विरोधी है जबकि गीता का

साम्यवाद सर्वत्र ईश्वर को देखता है। आधुनिक साम्यवाद धर्मनाशक है किन्तु गीता का साम्यवाद धर्म की पुष्टि करता है। वह हिंसामय है यह अहिंसा का प्रतिपादक है वह स्वार्थ मूलक है, यह स्वार्थ को समीप भी नहीं आने देता। वह खान–पान, स्पर्श आदि में एकता रखकर आन्तरिक भेदभाव रखता है। यह खान–पान स्पर्श आदि में मर्यादानुसार यथायोग्य भेद रखकर भी आन्तरिक भेद नहीं रखता और सबमें परमात्मा को ही देखने की शिक्षा देता है।

गीता भारतीय दर्शन का प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थ है। जिसके आधार पर विश्व का प्रत्येक मानव अपने भाग्य का निर्माता एवं विधाता स्वयं माना गया है। इतना होने पर भी हम संसार में अपने चारो ओर समस्त मानवों को भीषण दुर्घटनाओं, प्राकृतिक आपत्तियों और अनेक विपत्तियों से घिरा अपार दुख व पीड़ा भोगते देख रहे हैं। उत्तम प्रकृति के भले लोग त्रस्त तथा निकृष्ट प्रकृति के बुरे लोग मौजमस्ती उड़ाते हुये दिखाई दे रहे हैं यदि हम सब इस रहस्यपूर्ण तथ्य की जानकारी प्राप्त करना चाहते है कि ऐसा क्यों होता है ? तो इसका उत्तर भी हमें गीता के अन्दर निहित विचारों की गवेषणा करने पर ही उपलब्ध हो सकता है क्योंकि इसका उत्तर प्रकृति के विधान के ज्ञान में निहित हैं, गीता के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि एक दैवीय योजना के अधीन कुछ मूलभूत सिद्धान्तों एवं नियमों के द्वारा संचालित है। इसे ही कर्म का विधान कह सकते है। क्योंकि बिना कर्म के कोई परिणाम होता ही नहीं है। इस प्रकार हर कार्य का परिणाम अनिवार्य है। एकता दैवीय योजना के स्वाभाविक प्रक्रिया का एक अंग है। यदि व्यक्ति अपने कर्मो, विचारों और भावों द्वारा सृष्टि की एकता को वाधित करता है तो उसे सामंजस्य की प्रक्रिया द्वारा एकता को पुनः स्थापित करना होगा। विधान किसी को पुरस्कृत एवं दण्डित नहीं करता। हम ही अपने को विधान के अनुकूल अथवा प्रतिकूल आचरण करके पुरस्कृत अथवा दण्डित करते रहते हैं।

हम प्रायः देखते व सुनते चले आ रहे हैं कि लोग जीवन की घटनाओं विशेषकर दुखद घटनाओं के लिए अपने भाग्य को जिम्मेदार ठहराते है किन्तु यह नहीं जानते है कि सब कुछ कर्म के विधान का ही परिणाम है। भाग्य हमारे पूर्व जन्म के संचित कर्मो का योग है। जिसके आधार पर हमें सुख व दुख मिलता है। कर्म के भोग के बिना कर्म से मुक्ति नहीं होती और न ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति ही उपलब्ध किया जा सकता है, क्योंकि कहा गया है कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं न भुक्ते न क्षीयते कल्प कोटि शतैरपि''। गीता भी कर्म के दर्शन के प्रतिपादन का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जीवन के समस्त दुखो व कष्टों से निवृत्ति हेतु हमें गीता के विचारों का अनुशीलन करना आवश्यक प्रतीत होता है। हम परिस्थितियों के उपयोग करने में स्वाधीन है, किन्तु एक बार परिस्थितियों का सदुपयोग अथवा दुरूपयोग कर लेने के पश्चात उसके फल में पराधीन है। हमारा प्रारब्ध हमारे ऊपर थोपा हुआ नहीं है। वरन् हम स्वयं उसका निर्माण अपने कर्मो, विचारों और भावनाओं द्वारा निरन्तर करते रहते हैं।

गीता का कथन है कि –

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।।''4

विचार में वह रचनात्मक शक्ति है जिसका प्रयोग अच्छे या बुरे दोनों के लिये किया जा सकता है। विचार शक्ति का सदुपयोग करके हम अपनी सामर्थ्य को बढ़ाते है और अपने चरित्र को संवारते है। कामना में एक चुम्बकीय शक्ति है जिससे वह सब स्वतः हो जाता है जैसा हम वास्तव में चाहते हैं। हर इच्छा, कामना या चाह जिसका हमारे हृदय से सम्बन्ध है, जिसके बिना हम रह नहीं सकते वह विधान के अनुसार आज या कल अवश्य पूर्ण होगी। क्रियाशक्ति हमारी स्थूल परिस्थितियों का निर्माण करती है यदि हमारी वाणी या क्रिया से दूसरों को सहयोग और प्रसन्नता प्राप्त होती है तो वह सहयोग व प्रसन्नता कई गुना होकर

हमारे पास वापस लौटती है। इसलिये 'मर्सी डबुली ब्लेसड के आधार पर दया की क्रिया से दोनो पक्ष लाभान्वित होते हैं। यदि हम अपनी वाणी या क्रिया का उपयोग 'उपर्युक्त' के विपरीत करते तो उसका परिणाम हमे निराशा व अवसाद के रूप में ही प्राप्त होगा। जीवन एक है, अखण्ड है, हम अनेकों जन्मों से कर्म करते हुये अनेकों संबंधों के कर्तव्य का निर्वाह कर रहे है।

स्थूल शरीर की मृत्यु से हमारे द्वारा निर्मित कर्मो का नाश नहीं होता। हमारे कर्म बीज की भॉति है जो वोये जाने पर हमारी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। कालान्तर में वे ही अंकुरित व फलित होते है। उसी प्रकार विधान के अनुसार जो कुछ भी हम करते है उसका परिणाम अवश्यम्भावी है। विधान सदैव न्याय संगत होता है। अतीत के हमारे कर्मो का परिणाम हमें वर्तमान में भले ही प्रतिकूल लगे, किन्तु उसके उत्तदायी हम स्वयं है। हम निरन्तर जो कर्म करते हैं वे हमारे पुराने कर्मफल को संशोधित करते रहते हैं, यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। ये समस्त कार्य शिक्षा प्रद हैं। अतएव शिक्षा की प्रक्रिया भी निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

वर्तमान में हमारे सभी व्यक्तिगत संबंध चाहे वे राग के हों या द्वेष के हो, वे अतीत से ही उत्पन्न होते है। हमें प्रेम और सेवा द्वारा दूसरों के प्रति अपने द्वेष और राग को मिटा देना चाहिये, इस सृष्टि में जो हम देते हैं विधानतः उसे ही वही वापस पाते हैं। हम विधि के विधान को भली भॉति समझकर स्वाधीन व सुरक्षित होकर विचरण कर सकते हैं। हमें अपने दुखों के लिए उत्तरदायी दिखाई देने वाले व्यक्तियों के प्रति भी कभी किसी प्रकार का क्रोध अथवा द्वेष भाव नहीं रखना चाहिए। श्री मद्भगवद् गीता में इन विचारों की बड़ी ही सुन्दर भावाभिव्यक्ति की गई है। गीता का अंतरंग भाव यही है कि विधान का आदर करने पर प्रकृति की समस्त शक्तियां हम पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए आतुर हो उठती हैं।

ऐसा करने पर हमारा जीवन दुखों से चिन्ताओं से सदैव के लिए मुक्त हो जायेगा और जीवन प्रेम व आनन्द का सदन बन जायेगा। आज की एक मात्र भौतिक विकास की प्रतिस्पर्द्धा केवल मनुष्य जीवन के लिये ही नहीं वरन सम्पूर्ण सृष्टि के लिए घातक है। अतः आवश्यक हो जाता है कि भौतिक विज्ञान को मानव की सुख सुविधाओं तक ही सीमित रखा जाये, क्योंकि यही जीवन का अन्तिम परम ध्येय नहीं है। जीवन में प्रत्येक प्राणी सुख सुविधा, प्रसन्नता, हर्ष आदि का आकांक्षी है। उसके समस्त क्रियाकलाप सुख प्राप्ति के लिये ही किये जा रहे हैं। जो कर्म या क्रियाशीलता विपरीत परिणाम देने वाली हो उसे त्यागने में ही कल्याण हैं। श्री मद्भगवतगीता का शैक्षणिक निहितार्थ मानव के कल्याणार्थ ही अभिव्यक्त हुआ है। अतएव इसका अनुशीलन, पठन तथा इसे जीवन का अभिन्न अंग बनाना ही श्रेयस्कर है।

वर्तमान में श्री मद्भगवतगीता की प्रासंगिकता सर्वोपरि है, क्योंकि संकटों से घिरा विश्व विनाश की ओर बढ़ रहा है। यहाँ एक बहुआयामी युद्ध नित्यप्रति घटित हो रहा है। यह युद्ध वैचारिक है और सामरिक भी, यह भौतिक भी और अभौतिक भी। यह युद्ध भावनाओं से भी जुड़ा है तथा भूगोल से भी। यह युद्ध "पेट" और "परमात्मा" दोनो में से किसी एक का चुनाव करने का भी है मारो, काटो, लूटो, पीटो के चीत्कार सर्वत्र सुनाई दे रहे है। दसों दिशाओं में सुख–दुख के मध्य मल्ल युद्ध चल रहा है। अपना–अपना एकाधिकार स्थापित करने के लिये कोई अर्थ को हथियार बना रहा है, कोई विनाशकारी शस्त्रों को। जिधर भी श्रवण करेंगे उधर ही सुनाई देगा कि यह संसार ही दुखमय है। सभी दुखी हैं, कोई धन, पद, प्रतिष्ठा साधन के अभाव के कारण दुखी है तो कोई इस सबके प्रभाव के कारण दुखी है, किसी को अप्राप्ति का दुख है तो किसी को इन सबके छिन जाने का, मिट जाने का दुख है। विश्व अपनी ही महत्वकांक्षाओं से निर्मित

मकड़जाल में फंसा हुआ है। वह न मायाजाल को तोड़ता है न जंजाल छोड़ता है। सुख की तलाश में हम दुख के अम्बार खड़े करते जा रहे है जबकि ये दोनों असत्य हैं, क्षणिक है, सापेक्ष है, विलोम है।

केवल श्री मद्भगवद् गीता ही इस प्रकार के द्वन्द से मुक्ति दिलाने में सक्षम है जिसके विचारों, सिद्धान्तों व शैक्षिक अवधारणाओं के अवलम्बन से इस प्रकार के द्वंदात्मक युद्ध से विरत रहकर परम सुख व शान्ति का वरण किया जा सकता है। श्री गीता सन्यासियों के लिए ही नहीं हैं, बल्कि गृहस्थों के लिये एक आदर्श पथ प्रदर्शक ग्रंथ है। इसके शैक्षिक विचार सुख शान्ति के प्रबोधन है।

प्रश्न उठता है कि यदि सुख दुख दोनों असत्य व मिथ्या है तो सत्य क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में सहस्त्रों वर्ष से भारतीय जीवन सहज गति से उस लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जा रहा है, जहां कलेश और कलह, प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा का संताप नहीं होता है। हमारे देश के संतो, तपस्वियों, शास्त्रज्ञों, मनीषियो व दार्शनिकों तथा अवतारों ने केवल हमें ही नही और न तो केवल संसार को ही बल्कि समस्त ब्रह्माण्ड को इस सत्य की प्रतीति और पहचान कराई है कि "तात्कालिक सुख ही नही वरन् अखण्ड और घनीभूत आनंद उत्तराधिकार में मिला है। वहाँ न धन साधन के आभाव का दुख है और न ही प्रचुरता का अभाव" यदि उपर्युक्त लक्ष्य सत्य है तो इस संसार में मारामारी क्यों है ? यदि हम आनन्द स्वरूप है तो दुख आया कहां से ? परस्पर गलाघोट प्रतिस्पर्धा का कारण क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने तथा इन प्रश्नों से संवद्ध समस्याओं का समाधान प्राप्त करने का प्रयास किया जाने लगा है। यह कार्य विश्व स्तर पर भी किया जाने वाला है। यह प्रयास स्वभावतः समस्त विश्व को अपना कुटुम्व मानने वाले भारत के संतो, मनीषियो, चिन्तको एवं शिक्षाशास्त्रियों ने प्रारम्भ किया है। इस समय एक विश्व स्तरीय मानव धर्म जागरण यात्रा चल रही है। इसका प्रथम

चरण अगस्त 2001 में पूर्ण हुआ है।

इस मानव धर्म जागरण यात्रा में समता और समानता प्राप्त करने के अप्राकृतिक सोच को एक नई दिशा दी गई है। ''सोचना है तो समता की नहीं समरसता की सोचो, एक रूपता की नहीं विविधता में एकता के सूत्रों की तलाश करो। विविधता में विषमता नहीं'', प्रकृति की सहज एकरसता को पहचानो।'' भौतिक स्तर पर समानता व समता संभव ही नहीं है। यहॉ तक कि प्रकृति में भी समानता व समता नहीं है, कहीं समतल भूमि है तो कहीं ऊँचे–ऊँचे पर्वत, कहीं उपजाऊ मिट्‌टी तो कहीं बंजर व मरूस्थल है। कहीं वर्षा अधिक होती है तो कहीं एक बूद पानी नहीं बरसता, कहीं बर्फ पड़ती है तो कहीं लू की लपटे चलती हैं, कहीं भूख व बीमारी है तो कहीं सम्पत्ति व सम्पदा अठखेलियों करती दृष्टिगत होती हैं।

वास्तव में यह विषय भावलोक का है, भावना का है, स्नेह, प्रेम, ममता का है। सबके प्रति स्नेह व प्रेम तो संभव है किन्तु सबको एक समान बना पाना कठिन है। आज की हमारी समस्यायें एवं दुख, स्नेह, संवेदना के अभाव तथा अपनत्व के अकाल के कारण है। यह तन का नहीं मन का विषय है। हमारे मन इतने विकृत व संकुचित हैं कि 'अपने' अतिरिक्त हमें कोई 'अपना' दिखाई नहीं देता। वर्तमान विकास व तरक्की की प्रक्रिया में और भौतिक अपसंस्कृति में 'हम और हमारा पेट' ही सब कुछ हो गया है। आप सुखी संसार सुखी, आप दुखी संसार दुखी ही वर्तमान विकास और अर्थव्यवस्था का मूल मंत्र बन गया है।

हमारी समस्त समस्याओं और हमारे समस्त संकटों का कारण भौतिक साधनों का अभाव नहीं वरन संवेदनशील मानवीय भावनाओं की कमी है। जड़चेतन, तरू–पल्लव, नदी–नालो, पशु–पक्षी, सांप–विच्छू सभी के योग–क्षेम का चिन्तन और चिन्ता करने वाला आनन्द स्वरूप मनुष्य आज इसी कारण दुख

रूप तथा दुख का कारण बना हुआ है। पश्चिम जगत में भौतिक विकास का यह नया दौर विज्ञान एवं प्रौद्योगिक की सफलताओं के चकाचौंध से भरा हुआ है। आज के मानव ने विकास का जो रास्ता चुना है वह सुखद जीवन का नहीं, वरन् दुःखद अकाल मृत्यु का रास्ता है। इसके निवारणार्थ हमारे ऋृषियों द्वारा दिखाये और बताये गये मार्ग अव अत्यन्त प्रासंगिक होते जा रहे है तथा गीता की विचार धारा तथा उसके मंतव्य सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक हैं। समरसता एवं विविधता में एकता की अनुभूति कराने वाले हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व –

भारत के योगशील जीवन, संयमित आहार–विहार बौद्विक ऋृचाओं और गीता के उपदेशों को भौतिक विकास के शिखर पर पहुँचे देशों के लोग भी अब ग्रहण करने लगे है और विश्व मानवता की पीड़ा को दूर करने के लिये भारतीय एकात्म भाव तथा अध्यात्म की गंगा प्रवाहित की जाने लगी है। अधिकांश देशों के पूर्वजों ने कोई ऐसा ज्ञान का शाश्वत खजाना नही रख छोड़ा है जिसके आधार पर अपने भौतिक विकास का संतुलन बनाये रखकर वे सच्चे अर्थो में जीवन प्राप्त कर सकें। विश्व मानवता को संकटो व दुखो से निवृत्ति प्रदान करने में गीता के वैचारिक भाव व इसकी शिक्षा किस प्रकार वर्तमान काल में प्रासंगिक है। इसका आलोचनात्मक अध्ययन करना शोधिका आवश्यक एवं अनिवार्य समझती है। एतदर्थ प्रस्तुत अध्ययन वरण किया गया है।

भारत भूमि या पाश्चात्य देशों की भूमि पर भौतिक सम्पन्नता का लक्ष्य प्राप्त कर लेना ही सब कुछ नही है। भौतिकता से सम्पन्न देशों में भी अब उस 'परम' की प्राप्ति का अन्वेषण होने लगा है। इस भावधारा का स्रोत किसी मजहबी किताब, शिक्षा संस्थान और आश्रमों के व्रतशील जीवनचर्या में नहीं है, वल्कि यह साक्षात् प्रकृति में सर्वत्र व्याप्त है। आज का मानव अप्राकृतिक मार्ग पर भाग रहा

है। वह वात्सल्य, स्नेह, प्रेम की भावधारा से कटता जा रहा है। उसमें पारिवारिक बोध का अभाव पाया जा रहा है जिसके कारण आज की संताने भी असंतुलित हो रही हैं। उनके देह, मन और आत्मभाव का सम्यक् विकास नहीं हो पा रहा है। इसका कारण यह है कि जीवन में रमने वाली, पालने पोसने वाली मानवीय संवेदनाओं को आधुनिक भौतिकतावाद ने इतने निम्न स्तर पर उतार दिया है कि इसका आनन्द समाप्त हो गया है। विश्व जीवन के कलेशों को दूर करने के लिये श्री मद् भगवद् गीता में निहित प्रकृति और धर्म निःसृत वात्सल्य ही सर्वोपरि है। गीता के वैचारिक भावों में समदृष्टि और संघर्ष शून्य समरसता का निवास है। सम्यक् परिवर्तन, सुख–शान्ति और समृद्धि की प्राप्ति का गीता के द्वारा प्रदर्शित विचार का अवलम्वन लेना ही एक मात्र उपर्युक्त मार्ग है। अतः गीता में निहित विचारों का अनुशीलन व अवगाहन आवश्यक है।

भारतीय जीवन के अनुसार जीवन की सार्थकता जीवन को सुसंयत करके उसे भगवानोन्मुख बनाने में है, जिससे हम इस क्षुद्र, अल्पकालीन अस्थायी, भौतिक जीवन से उठकर महान शाश्वत एवं असीम, अनन्त जीवन को प्राप्त कर सके। हम भारतीयों की दृष्टि में किसी ग्रन्थ की आवश्यकता एवं उपादेयता इस बात पर निर्भर करती है कि वह हमें जीवन के चरम और परम लक्ष्य तक ले जाने में सहायक हो। इस दृष्टि से विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि श्री मद्भगवद् गीता का एकमात्र अनुशीलन ही मानव मात्र को लक्ष्य की प्राप्ति करा देने में सबसे अधिक सहायक उपयोगी तथा स्वयं सिद्ध सबल साधन के रूप में खरा उतरता है। अतः किस प्रकार गीता मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी है यह अध्ययन करना अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

श्री मद्भगवद गीता की महिमा अगाध और असीम है। इसमें समस्त मानवों के लिए उपयोगी एवं लाभप्रद सामग्री उपस्थित है, चाहे वह किसी भी देश,

समुदाय, सम्प्रदाय, वर्ण अथवा आश्रम का ही व्यक्ति क्योंन हो। इसका कारण यह है कि इसमें वास्तविक तत्वों का वर्णन एवं कर्म की प्रधानता है जो आज के समाज की महती आवश्यकता है। इसलिये इसमें शिक्षा दर्शन का महत्वपूर्ण पहलू नैतिक एवं सामाजिक दर्शन है। जीवन के विभिन्न पहलू जैसे राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, कूटनीति, वर्णाश्रम, शुद्ध आचरण, दान, तप, कर्तव्य एवं अधिकार की अति आवश्यक बाते हैं जिन्हें जानना अति महत्वूपर्ण है। अतः इस हेतु प्रस्तुत अध्ययन आवश्यक है। गीता में समभाव, दयाभाव, सेवा भाव, त्याग, सहानुभूति, सुख, दुख, सत्य, अहिंसा, अन्तःकरण की शुद्धता, वाणी की सरलता, इन्द्रिय निग्रह, अहंकार रहित होना, गुरू निष्ठा, अनुशासन, लक्ष्य से विचलित न होना आदि बातें कब, कैसे और कहां प्रकट हुई, उस तथ्य का अध्ययन करना अति आवश्यक है।

''साम्यवाद एक महत्वपूर्ण दर्शन है, परन्तु गीता के साम्यवाद और आजकल कहे जाने वाले साम्यवाद में बड़ा अन्तर है। आज का साम्यवाद ईश्वर विरोधी है और गीतोक्त साम्यवाद सर्वत्र ईश्वर को देखता है। वह धर्म का नाशक एवं हिसांमय है यह धर्म की पुष्टि करने वाला अहिंसा का प्रतिपादक है।''5 इस प्राकर गीतोक्त साम्यवाद व आधुनिक साम्यवाद में उपस्थित अन्तर की खोज करना आवश्यक प्रतीत होता है। सच्चा साम्यवादी कैसा होता है साम्यवाद मानवता का आधार किस प्रकार है इस तथ्य की खोज करने हेतु प्रस्तुत अध्ययन आवश्यक हो जाता है। गीता में समता की बात प्रधान रूप से आयी है आज जब लोग रूढ़िवादी होकर धर्म, जाति–पाति, क्षेत्रवाद के लिये झगड़ा कर रहे है तब गीता के दार्शनिक आदर्श को जानना बहुत आवश्यक हो जाता है। कि समस्त जीवों के प्रति समता का भाव धारण करने के लिए गीता द्वारा किस प्रकार के आचरण व व्यवहार करने के निर्देश दिये गये हैं। अतः वर्तमान में गीता के आदर्श को जानने

के लिए प्रस्तुत अध्ययन आवश्यक है।

अपरा विद्या लौकिक विद्या है और परा आध्यात्मिक। ये दोनों विद्यायें मानव कल्याण के लिए अति महत्वपूर्ण एवं अवश्यक है। गीता में अपरा विद्या द्वारा परा विद्या की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। अतः इस तथ्य को खोजने हेतु प्रस्तुत शोध आवश्यक है।

गीता के महान आदर्शो को जानना, समझना एवं अंगीकार करना विशेषकर आधुनिक परिप्रेक्ष्य में जबकि भारतीय नवयुवक अपनी सांस्कृतिक धरोहर से विलग होकर पाश्चात्य सभ्यता के पीछे भाग रहे है अति आवश्यक है। अतएव प्रस्तुत अध्ययन इस हेतु भी अति आवश्यक है कि जिससे नवयुवक गीता के आदर्श का अनुकरण एवं आचरण करने के लिए प्रेरित हो सके।

भारत की वर्तमान पीढ़ी को श्री मद्भगवद गीता द्वारा जीवन के आदर्शो एवं शिक्षाओं से अवगत कराने हेतु प्रस्तुत अध्ययन अति आवश्यक है ताकि भारतीय नवयुवकों का भविष्य उज्जवल हो सके।

उद्देश्य – श्री मद्भगवद् गीता सम्पूर्ण वेदो का सार स्वरूप एक परम रहस्यमयी ग्रन्थ है वेद और उपनिषद की बातें साधारण जन के लिये बोधगम्य नहीं है। अतः गीता दर्शन के माध्यम से उन्हें साधारण जन तक पहुँचाने का काम किया गया है। यह गीता दर्शन भारतीय दर्शनों का निचोड़ है। अतएव विभिन्न रहस्यों एवं भावों से यह ग्रन्थ ओत प्रोत है। जीवन के मर्म का वर्णन जिस प्रकार इस गीता शास्त्र में किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थों में मिलना कठिन है। अतः सुन्दर, सरल, रहस्मयी श्री मद्भगवद् गीता से गीता के शैक्षिक दर्शन व जीवन के मर्म की खोज करना एवं उसे प्रस्तुत करना इस शोध का उद्देश्य है।

द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैताद्वैत, विशुद्धाद्वैत, अचिन्त्य भेदाभेद आदि किसी एक सम्प्रदाय के किसी एक सिद्धान्त का श्री मद्भगवद् गीता में प्रतिपदन नहीं किया

गया है। श्री मद्‌भगवद्‌ गीता का मुख्य लक्ष्य यह है कि मनुष्य किसी भी परिस्थिति में कल्याण से वंचित न रहें। गीता के अनुसार संसार में ऐसी कोई भी परिस्थिति है ही नही जिसमें मनुष्य का कल्याण न हो सके। "यह एक आशावादी दर्शन का प्रतिपादक ग्रंथ है।" आज प्रायः जब लोग जात–पात ऊँच–नीच, क्षेत्रवाद आदि भावो में लिप्त है तो गीता इस विचार के विपरीत समत्व, एकत्व की अनुभूति कराने वाले दर्शन को प्रस्तुत करता है। अतः मानव कल्याण एवं अस्प्रश्यता निवारण हेतु प्रस्तुत ग्रंथ दर्शन किस प्रकार का विचार विश्व के समक्ष रखना चाहता है इस तथ्य की खोज करना प्रस्तुत शोध का लक्ष्य है।

गीता दर्शन श्री कृष्ण का व्यक्तिगत दर्शन नहीं है न ही यह किसी व्यक्ति के विचारों का संकलन मात्र है, पितु समस्त धार्मिक, नैतिक, मान्यताओं, परम्पराओं तथा रीति रिवाजो आदि का विश्लेषणात्मक ग्रंथ है। इसमें तत्व विचार, नैतिक नियम, ब्रह्म विद्या, योग तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी है। इस भारतीय दार्शनिक ग्रन्थ में ज्ञान योग, भक्तियोग तथा कर्मयोग की त्रिधारा का सम्यक विश्लेषण किया गया है। जीवन को सदाचारी चरित्रवान, कर्मशील बनाने के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। जीवन में इन तत्वों का शैक्षिक महत्व क्या है, इस तथ्य का अन्वेषण करना इस शोध कार्य का उद्‌देश्य है।

श्रेष्ठ जीवन यापन हेतु व्यक्ति को शिक्षित होना चाहिये। श्रेष्ठ जीवन के लिये श्री मद्‌भगवद्‌ गीता की शिक्षाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य की धार्मिक चेतना ईश्वर में मानवीय गुणो की गणु की गवेषणा करती है, इसलिए गीता में ईश्वर को पुरूषोत्तम कहा गया है। गीता के दार्शनिक विचार ईश्वर को मनुष्य के इतने सन्निकट कर दिया है कि आत्मानुभूति एवं सत्यानुभूति का मार्ग प्रशस्त हो गया है। कर्मयोग के प्रतिपादन से ईश्वर अनुभूति की बात कही गयी है तथा मोक्ष का अधिकारी बताया गया है। अतः कर्मयोग क्या है ? इसके माध्यम से किस

प्रकार सत्यानुभूति की जा सकती है ? तथा इन दोनो प्रकार के कर्मो का मानवीय जीवन में क्या महत्व है। इसकी खोज करना प्रस्तुत शोध का लक्ष्य है।

शिक्षा में आज उत्पादनोन्मुख शिक्षा की चर्चा की जाती है। शिक्षा को जीविकोपार्जन का साधन माना जाने लगा है, किन्तु शिक्षा इसके अतिरिक्त व्यक्ति की सम्पूर्ण शक्तियों जैसे – भौतिक, नैतिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक गुणों के विकास का आधार भी है। गीता दर्शन किस प्रकार व्यक्ति की सम्पूर्ण शक्तियों एवं गुणों के विकास में योगदान प्रदान करता है। इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त करना भी प्रस्तुत शोध का लक्ष्य है।

वर्तमान में शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य प्रायः लुप्त होता जा रहा है। आधुनिक शिक्षा को समाज मात्र आर्थिक रूप में ग्रहण कर रहा है। जबकि शिक्षा का ध्येय व्यक्ति के आर्थिक स्तर को उठाना ही नहीं अपितु इसके बौद्धक स्तरको उठाने में सहयोग देना है और उसे इस योग्य बनाना है कि वह दूसरों के दृष्टिकोण को भली भॉति समझ सके। शिक्षा का ध्येय शिक्षार्थी के मौलिक चिन्तन की क्षमता का विकास करना है और आन्तरिक शक्तियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने की ओर अनुप्रेरित करना है। गीता दर्शन किस प्रकार आन्तरिक शक्यिों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है, इसका ज्ञान प्राप्त करना भी प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में चरित्र निर्माण के तत्व नैतिकता एवं आध्यत्मिकता का प्रायः अभाव पाया जाता है, जबकि जीवन की आधार शिला इनके अभाव में बालू के ढेर पर खड़ी हुई प्रतीत होती है। गुरू और शिष्य का आदर्श सम्बन्ध दृष्टिगत नही हो पा रहा है। वर्तमान शिक्षा अपने प्राचीन गौरव और आदर्शो को भूल चुकी है। आज न तो शिक्षार्थी अनुशासित है और न ही शिक्षक। बहुविषयी पाठ्यक्रम होते हुए भी व्यक्ति के सर्वागीण विकास में वह

सक्षम नहीं है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य क्या होना चाहिए, आदर्श शिक्षक कैसा हो, शिक्षार्थी का आचरण किस प्रकार का हो, पाठ्यक्रम में किन–किन विषयों का समावेश होना चाहिए ? आदि के सम्बन्ध में गीता दर्शन के आधार पर अन्वेषण करना प्रस्तुत शोध का लक्ष्य है।

आज हम भारतीय पश्चिमी सभ्यता के पीछे भाग रहे है और भौतिकतावादी होते जा रहे है। अपनी सांस्कृतिक विरासत, परम्पराओं, रीति रिवाजो, धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं को भूलते जा रहे हैं। आज का युवा अपनी महान संस्कृति से विमुख होता जा रहा है। धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक आदर्शो की स्थापना गीता दर्शन के आधार पर किस प्रकार की जा सकती है इसकी खोज करना भी प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है।

आज गीता दर्शन की विचार धाराओं का वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति में क्या प्रसांगिकता है, यह हमें किस प्रकार आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में योगदान प्रदान कर सकती है। इस तथ्य की खोज करना भी प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हे।

"आज जब साम्यवाद एवं समाजवाद का नारा चर्तुदिक् प्रसारित किया जा रहा है। सबको शिक्षा ग्रहण करने के समान अवसर प्रदान करने की बात कही जा रही है। ऐसी परिस्थिति में श्री मद्भगवद् गीता के दर्शन की क्या संगति है, इसकी खोज करना भी प्रस्तुत शोध का लक्ष्य है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त विधि, उपकरण एवं स्रोत

प्रयुक्त विधि – प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान का एक भाग है। किसी समाज का इतिहास प्रायः वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का आधार होता है। सामाजिक समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त वैज्ञानिक विधि की अनुप्रयुक्ति ही ऐतिहासिक अन्वेषण है। प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य गीता के शैक्षिक निहितार्थ एवं

आधुनिक परिपेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता एवं उपयोगिता का अध्ययन करना है। इसलिए यह शोध पुस्तकालय शोध है एवं प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया जायेगा। ऐतिहासिक विधि का तात्पर्य अतीत के अनुभवों का अध्ययन करना व व्यवहार के उन विकास क्रमों का खोज करना है जिससे किसी सामाजिक गतिविधि के आधार का पता लगता है। इस विधि के प्रयोग का लक्ष्य श्री मद्भगवद् गीता के शिक्षा सम्बन्धी दार्शनिक, विचारो, धारणाओं, उद्देश्यों एवं आदर्शो की जानकारी उपलब्ध कराना है एवं इस परिपेक्ष्य में वर्तमान शिक्षा की समस्याओं एवं व्यवस्थाओं का सन्दर्भ निकालना है। अतः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य आधुनिक भारतीय परिपेक्ष्य में श्री मद्भगवद् गीता की शैक्षिक प्रसांगिकता का अध्ययन करना एवं वर्तमान की आवश्यकताओं के सन्दर्भ मूल्यांकन करना है। अतः ऐतिहासिक विधि का प्रयोग उपयुक्त है। ऐतिहासिक विधि के अतिरिक्त वर्णनात्मक, तुलनात्मक तत्व ज्ञान एवं मूल्य मीमांसीय अध्ययन विधि का भी प्रयोग किया जायेगा।

उपकरण – प्रस्तुत अध्ययन में उपकरण में रूप में शोधकत्री ने प्रांचीन एवं वर्तमान साक्ष्यों, साधनों, लेखों एवं अभिलेखों को चयन कर तथा गीता की अन्तर्वस्तु का विश्लेषण करके उसके शैक्षिक पक्ष की खोज करेगी। इन प्रयोगों से आशा है कि गीता का शैक्षिक दर्शन के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी उपलब्ध होगी उसके संदर्भ में वर्तमान का यर्थाथ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जायेगा।

स्रोत – प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक विधि के दो प्रमुख स्रोत का उपयोग किया जायेगा।

प्राथमिक स्रोत – ये प्रदत्त के मौलिक एवं मूल स्रोत होते हैं। यह विषय वस्तु का मूल भण्डार होता है किसी महत्वपूर्ण अवसर का मूल अभिलेख होता है।

इसलिए भगवान वेद व्यास द्वारा लिखित श्री मद्भगवत गीता को आधार रूप में ग्रहण किया जायेगा।

अप्रमुख स्रोत – अप्रमुख स्रोत में हम उन उपकरणों व साधनों को शामिल करते हैं जिनका लेखक, दार्शनिक के चिन्तनों के प्रति अन्य व्यक्तियों के द्वारा विचार व्यक्त किये जाते है। अतः महान मनीषियों, ज्ञानियों, आलोचकों, समालोंचकों द्वारा गीता के संबंध में दिये गये शैक्षिक अध्ययन को भी प्रस्तुत अध्ययन में शामिल किया जायेगा। जिससे हम प्रस्तुत अध्ययन की विषय वस्तु को समझने व अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने के योग्य हो सकेगे एवं प्रस्तुत शोध को पूर्ण कर सकेंगे।

प्रस्तुत अध्ययन का न्यादर्श व क्षेत्र का सीमांकन

न्यादर्श – प्रस्तुत अध्ययन में श्री वेदव्यास जी द्वारा लिखित गीता तथा उन पर अन्य द्वारा लिखित ग्रन्थों तथा शोध कार्य से संबंधित साहित्य ही न्यादर्श का आधार होगा।

क्षेत्र – (अ) आधुनिक भारतीय परिपेक्ष्य में श्री मद्भगवद् गीता के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करना प्रस्तुत अध्ययन कें क्षेत्र में शामिल किया जायेगा।

(ब) गीता ने आधुनिक शिक्षा को प्रभावित किया है अथवा नहीं, यदि किया है तो किस प्रकार किया है इस तथ्य की जांच के प्रयास को भी क्षेत्र में सम्मिलित किया जायेगा।

(स) जीवन के मूल्य क्या है ? जीवन में इनकी क्या आवश्यकता है ? इन्हें सामाजिक जीवन में किस प्रकार व्यावहार परक बनाया जाये ? इस दिशा में गीता किस प्रकार सहायक है यह भी प्रस्तुत अध्ययन की विषय वस्तु के क्षेत्र में शामिल किया जायेगा।

(द) मन, आत्मा तथा इन्द्रियों आदि को मनुष्य किस प्रकार नियंत्रित एवं स्थिर

कर सकता है। तथा जीवन के नैतिक सत्य, अहिंसा, दृढ़ता, एकाग्रता, क्षमा, दया, विश्वास, श्रद्धा, परोपकार आदि के बारे में गीता ने क्या तथ्य दिये है तथा यह वर्तमान शिक्षा में कितने आश्वयक हैं। यह भी प्रस्तुत अध्ययन में शामिल किया जायेगा।

(य) धर्म, अर्थ, कर्म, श्रम, व्यवसाय, उद्योग वर्ण व्यवस्था आचार, विचार आदि तत्व किसी भी समाज के आधार है। गीता ने सामाजिक मूल्यों पर एवं राजनैतिक मूल्यों पर क्या—क्या तथ्य उजागर किये हैं इसका ज्ञान प्राप्त करना भी प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में शामिल किया जायेगा।

(र) गीता के शिक्षा के संबंध में क्या विचार है शिक्षा के उद्देश्य, शिष्य, गुरू—शिष्य सम्बन्ध आदि के प्रति श्री मद्भगवत गीता में किस प्रकार के विचार प्रस्तुत किये गये है। इन तथ्यों की खोज को अध्ययन की विषय वस्तु में शामिल किया जायेगा।

(स) ज्ञानयोग, कर्मयोग, एवं भक्तियोग गीता के तीन प्रमुख मार्ग हैं। यह किस प्रकार जीवन के नैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में सहायक है एवं इनके द्वारा किस प्रकार जीवन के परमलक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है यह भी प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में शामिल किया जायेगा।

(व) वर्तमान शिक्षा की क्या समस्यायें, परिस्थितियां एवं व्यवस्थायें है तथा गीता के शैक्षिक दर्शन द्वारा वर्तमान शिक्षा की समस्याओं, परिस्थितियों एवं व्यवस्थाओं के सन्दर्भ में किस प्रकार लाभ प्राप्त किया जा सकता है, इसकी खोज करना भी प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में शमिल किया जायेगा।

संबन्धित साहित्य का सर्वेक्षण तथा प्रारम्भिक शोध कार्य का विवरण

(1) पहारिया कृष्णा कुमार (1992) में "महाभारत के लोक कल्याणकारी राज्य

की अवधारणा'' पर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। जिसमें महाभारत कालीन कल्याणकारी राज्य की प्रमुख विशेषताओं का सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया है।

(2) पाण्डेय श्री राम ने (1992) में अपना शोध प्रबन्ध श्री मद्भागवत और गर्ग सहिता में कृष्ण चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

(3) श्रीवास्तव श्रीमती अंतिया ने (1998) में 'श्री मद्भगवद् में वर्णित सामाजिक मूल्यों का अध्ययन प्रस्तुत किया है और तत्कालीन सामाजिक मूल्यों की सुन्दर विवेचना प्रस्तुत की गयी है।

(4) द्विवेदी, कृष्ण कुमार ने (1990) में 'श्री मद्भगवद् और तुलसी साहित्य में वर्णित मीरा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

(5) गौर, शिवरानी ने (1997) में श्री मद्भगवद् तथा विष्णु पुराण का तुलनात्मक अध्ययन (साख्य योग के सन्दर्भ में) प्रस्तुत किया है जिस सांख्य योग का विशद वर्णन गीता में निहित है।

(6) त्रिपाठी, श्याम मोहन (1984) ने ''शुद्ध द्वैतवाद और इसका कृष्ण काव्य पर प्रभाव'' पर अपना शोध प्रस्तुत किया है।

(7) श्री धर – (1994) ने प्रमुख पुराणों के सन्दर्भ में राष्ट्र तथा राष्ट्रीय भावना का विकास पर अपना शोध प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त सन्दर्भ ग्रन्थों के अवलोकन व अध्ययन द्वारा प्रस्तुत शोध को पूर्ण करने में सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध का विवरण –

1. द्वितीय अध्याय में श्री मद्भगवद् गीता का वर्ण्य विषय, इसका दार्शनिक सम्प्रव्य एवं गीता दर्शन का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

2. तृतीय अध्याय में गीता का शिक्षा दर्शन तथा गीता के अनुसार शिक्षा की विवेचना प्रस्तुत की किया गया है।
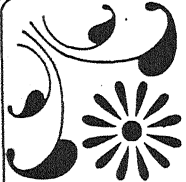
3. चतुर्थ अध्याय में गीता के शिक्षा के सम्बन्ध में क्या विचार है शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन तथा शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध आदि के प्रति गीता में क्या विचार प्रस्तुत किये गये हैं इसको खोजने का प्रयास किया गया है।

4. पंचम अध्याय में गीता के शिक्षा दर्शन का अन्य भारतीय दार्शनिकों के शैक्षिक दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा है इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

5. वर्तमान लोकतांत्रिक भारतीय परिवेश में गीता की संगति एवं शैक्षिक निहितार्थ षष्ठय अध्याय में शामिल किया गया है।

6. सप्तम अध्याय का संयोजन समस्त अध्यायों का सारांश करने में किया गया है।

अध्याय प्रथम से सम्बन्धित सन्दर्भ सूची।

1. तिलक, वालगंगाधर — ''श्रीमदभगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र'' 27 वां संस्करण, गणेश मुद्रणालय, पुणे 2000 पृष्ठ – 01
2. मटर्न, थॉमस, (लेट कैथौलिक थियोलॉजियन मॅड़स) – ''श्री मदभगवद्गीता यथारूप'' श्री ए0सी0 भाक्तिवेदान्त स्वामी – भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई–2004 पृष्ठ – 01
3. मैक्ग्रेगर, डॉ0 गेड्डीज (प्रोफेसर दक्षिणी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय) ''श्री मदभगवद् गीता यथारूप – भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई–2004 पृष्ठ – 01
4. गोयन्दका, जयदयाल – ''श्री मदभगवद् गीता तत्वविवेचनी हिन्दी – टीका'' गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2057 पृष्ठ – 80
5. गोयन्दका, जयदयाल – ''श्री मदभगवद् गीता तत्वविवेचनी हिन्दी – टीका''गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2057 पृष्ठ – 19
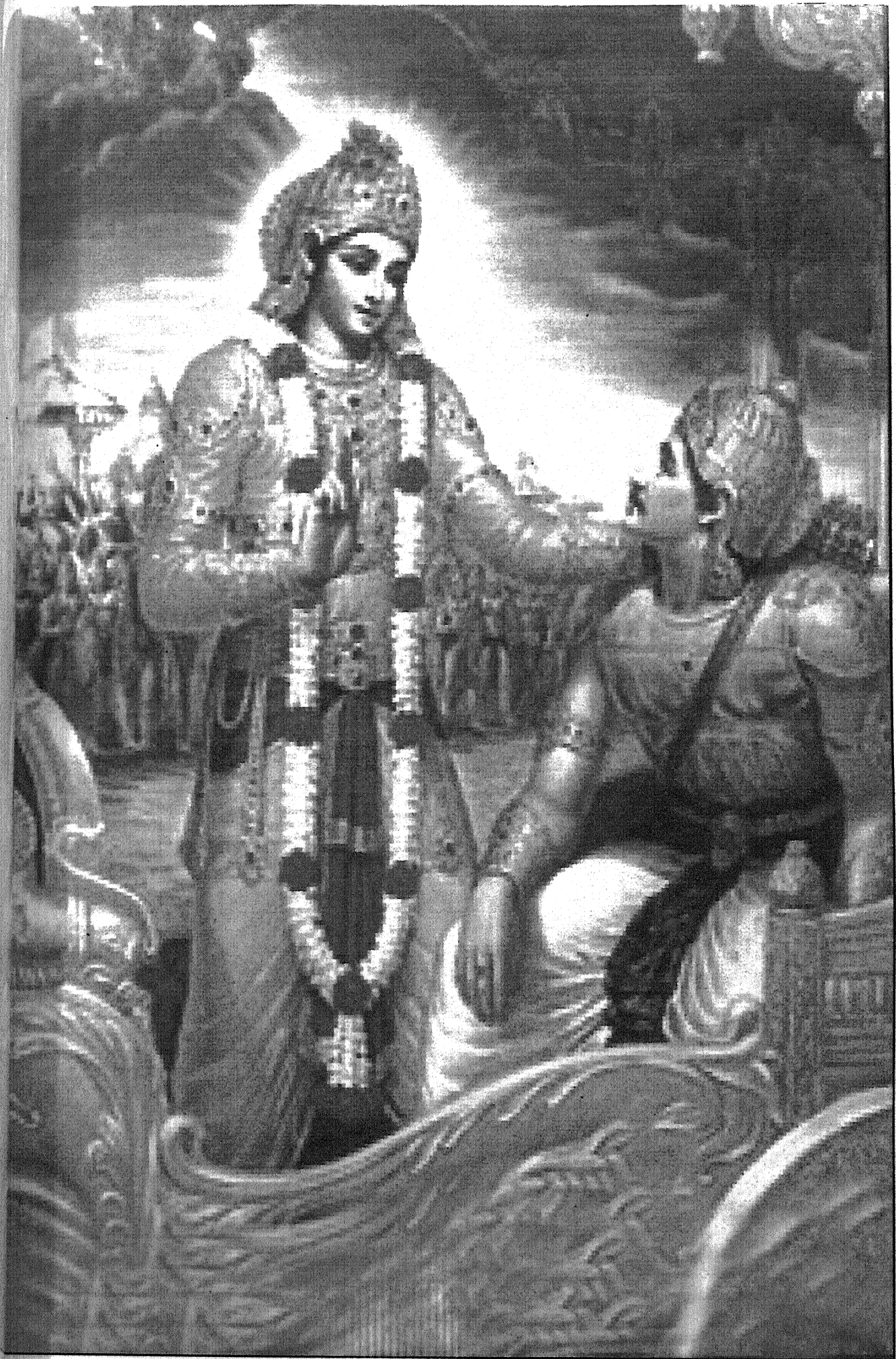
ी कृष्ण अर्जुन को गीता की शिक्षा देते हुये!
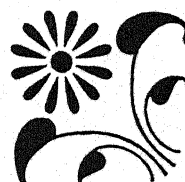
द्वितीय अध्याय

शिक्षा बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वागीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। गीता में कहा गया है कि –

''ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं''

(महात्मा गाँधी)

द्वितीय अध्याय

(अ) श्रीमद भगवद् गीता का वर्ण्य विषय

श्री मद् भगवद् गीता साक्षात भगवान की दिव्य वाणी है। इसकी महिमा अपार एवं अपरिमित है। उसके यथार्थ का वर्णन समस्त देव व मानव जाति की सामर्थ्य से भी परे है। यह वास्तव में स्वयं में पूर्ण है। इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार निहित है। इसकी रचना इतनी सरल सुन्दर एवं सुबोध है कि स्वयं के अभ्यास से ही मनुष्य इसे सहज ही समझ सकता है; परन्तु इसका आशय इतना गूढ़ और गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहने पर भी इसकी गूढ़ता एवं गम्भीरता में अन्तर नहीं आता है। प्रतिदिन नये–नये भाव उत्पन्न होते ही रहते हैं। इससे वह सदा नवीन ही बना रहता है।

जब हम गीता के वर्ण्य विषय पर विचार करते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि गीता सर्वशास्त्रमयी है। गीता का भलीभाँति ज्ञान हो जाने पर सब शास्त्रों का तात्विक ज्ञान स्वमेव ही हो जाता हे। तदर्थ अलग से परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस तथ्य की पुष्टि महाभारत भी करता है **''सर्व शास्त्र मयी गीता''**1 महाभारत के भीष्मपर्व में उक्त उक्ति आई है तथा गीता की महत्ता बताते हुये स्वयं श्री कृष्ण ने कहा है–

''गीता श्रेयेद्वंह तिष्ठामि गीता में चोत्रम गृहम।

गीता ज्ञानामुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालायाम्यहम् ।।''2

''अर्थात् मैं गीता के आश्रय में रहता हूँ गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता के ज्ञान का सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।''

श्री कृष्ण जी मुक्त कंठ से यह घोषणा करते हैं कि जो कोई मेरा इस गीता

रूप आज्ञा का पालन करेगा वह निःसन्देह मुक्त हो जायेगा।

''ये मे मतमिंद नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।।

श्रद्धा वन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः5।। 3

दोष दृष्टि से रहित श्रद्धायुक्त होकर मेरे मत का अनुशरण करने वाला मनुष्ये सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं। उर्पयुक्त कथन से प्रतीत होता है कि गीता जाति, वर्ण, धर्म व आश्रम के बन्धन से मुक्त होकर सर्वजन हिताय एक अनुपम ग्रन्थ है। जाति विभेद को त्याग कर दोष दृष्टि मुक्त होना ही मानव का श्रेष्ठ कर्म है तथा जो बन्धन मुक्ति का कारण भी है। गीता के सम्यक ज्ञाता गुरू श्री कृष्ण ने जीवन के बहुमूल्य मन्तव्यों को अर्जुन, संजय तथा धृतराष्ट्र जैसे शिष्यों के वचनों के माध्यम से अभिव्यक्ति किया है। गीता का सम्पूर्ण वर्ण्य विषय सात सौ श्लोकों अथवा अठ्ठारह अध्यायों में बंटा हुआ है।

श्री मद्भगवद् गीता का शाब्दिक अर्थ, श्रीमद् का अर्थ है—सुन्दर शानदार एवं भगवद् का अर्थ है ''दैवीय अथवा 'भगवान का' 'ईश्वर का' गीता का अर्थ ''देवों का सुन्दर गीत'' अथवा 'सुन्दर दैवीय गीत' (Beautiful song of Divine one) श्री मद्भगवद् गीता हमारे धर्म ग्रन्थों का एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिंड ब्रह्मांड ज्ञान युक्त आत्म विद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को अल्प शब्दों में स्पष्ट रीति से समझाने, तात्विक दृष्टि से मनुष्य मात्र को आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान कराने, कर्म शक्ति और ज्ञान के संयुज्य के मर्म को स्पष्ट कराने तथा संसार से त्रस्त मनुष्य को निष्काम कर्तव्य के परिपालन से मानसिक शान्ति देने वाले ग्रन्थ समस्त संसार के वाङ्मय में श्री मद्भगवद् गीता ग्रन्थ के सदृश कोई अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। केवल काव्य की दृष्टि से इसकी परीक्षा की जाय तो भी यह ग्रन्थ उत्तम काव्यों में गिना जा सकता है, क्योंकि इसमें आत्म ज्ञान के अनेक गूढ़

सिद्धान्त ऐसी प्रासादिक भाषा में लिखे गये हैं कि प्रत्येक वर्ग के प्राणियों को समान रूप से सुगम है। गीता का महत्व इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि वैदिक धर्म के अनेक सम्प्रदायों में प्राचीन काल से आज तक वेद रूप में सर्वसम्मति से प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसलिये "गीता ध्यान" में इस स्मृतिकालीन ग्रन्थ का अलंकार युक्त परन्तु यथार्थ वर्णन किया गया है।

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।" 4

"यहाँ समस्त उपनिषदों को गोये श्री कृष्ण को ग्वाला, बुद्धिमान अर्जुन को भोक्ता बछड़ा (वत्स) और दुहा गया, दुग्ध ही मधुर गीतामृत है।" ऐसा कहा गया है इस ग्रन्थ में वर्ण्य विषय का आर्यावर्त की समस्त भाषाओं में अनेक अनुवाद टीकायें और विवेचनायें की जा चुकी है। यहाँ तक कि संस्कृतज्ञ पश्चिमी विद्वानों ने भी ग्रीक, लेटिन, जर्मन, फ्रेंच अंग्रेजी आदि यूरोपिया भाषाओं में भी इसके सुन्दर अनुवाद प्रकाशित किये हैं। समस्त उपनिषदों के सारतत्व के सम्पादित होने के कारण ही इसे 'श्रीमद् भगवद् गीता उपनिषद' कहते हैं। इसका प्रमाण हमें अध्याय के अंत में अध्याय समाप्ति सूचक संकल्प " इति **श्री मद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे"5** के वाक्य में देखने को मिलता है। यह संकल्प यद्यपि मूल ग्रन्थ (महाभारत) में नहीं है, तथापि यह गीता की समस्त प्रतियों में पाया जाता है। इससे अनुमान होता है कि जब महाभारत से गीता नित्य पाठ के लिये अलग की गयी तभी से उक्त संकल्प का प्रचार हुआ होगा। यहाँ इस संकल्प के केवल दो पद। भगवद् गीता सुऽपनिषत्सु विचारणीय है। उपनिषद शब्द हिन्दी में पुल्लिंग माना जाता है परन्तु संस्कृत में स्त्रीलिंग है। इसलिये "श्री भगवान के द्वारा गाया गया अर्थात कहा गया उपनिषद" यह अर्थ प्रकट करने के

लिये संस्कृत में "श्री मद्भगवद् गीता उपनिषद" ये दो विशेषण विशेष रूप स्त्रीलिंग शब्द प्रयुक्त हुये हैं। यद्यपि ग्रन्थ एक ही है तथापि सम्मान के लिये 'श्रीमद् भगवद् गीता सुपनिषत्सु' ऐसा सप्तमी के बहुवचन का प्रयोग किया गया है।

श्री मद्भागवत गीता में अठ्ठारह अध्याय एवं सात सौ श्लोक हैं। परन्तु सात सौ श्लोकों की भगवद् गीता को ही गीता नहीं कहते। अनेक ज्ञान विषयक ग्रन्थ भी गीता कहलाते है। उदाहरणार्थ "महाभारत के शान्ति पर्वान्तर्गत मोक्ष पर्व के कुछ फुटकर प्रकरणों को पिंगल गीता, शपांक गीता, वोध्य गीता, हारित गीता, वृत्र गीता, पराशर गीता और हंसगीता आदि कहते हैं। अश्वमेघ पर्व की अनुगीता के एक भाग का विशेष नाम ब्राम्हण गीता है। इनके अवधूत–गीता, अष्टावक्र गीता, ईश्वर गीता, उत्तर गीता, कपिल गीता, गणेश गीता, देवी गीता, पांडव गीता, ब्रम्ह गीता, भिक्षु गीता, यम गीता, राम गीता, व्यास गीता, शिव गीता, सूत गीता, सूर्य गीता इत्यादि अनेक गीतायें प्रसिद्ध है। इनमें से कुछ तो स्वतंत्र रीति से निर्माण की गई है कुछ भिन्न–भिन्न पुराणों में हैं।"6

अनेक गीताओं के होने पर भी भगवद् गीता की श्रेष्ठता निर्विवाद सिद्ध है। इसी कारण उत्तर कालीन वैदिक धर्माय पंडितों ने अन्य गीताओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया और भगवद् गीता की ही परीक्षा करने और उसी का तात्पर्य अपने बंधुओं को समझा देने में अपनी कृतकृत्यता मानने लगे। ग्रन्थ की दो प्रकार से परीक्षा की जाती है। एक अंतरंग परीक्षा दूसरी बहिरंग परीक्षा कहलाती है। पूरे ग्रन्थ को देखकर उसके मर्म, रहस्य, यथार्थ और प्रमेय ढूंढ निकालना 'अंतरंग परीक्षा है। ग्रन्थ को किसने और कब बनाया, उसकी भाषा सरस है या नीरस काव्य दृष्टि से उसमें माधुर्य और प्रसाद गुण है या नहीं, शब्दों की रचना में व्याकरण पर ध्यान दिया गया है या उस ग्रन्थ में अनेक अर्थ है, प्रयोग है उसमें किन किन मतों, स्थलों और व्यक्तियों का उल्लेख है। इत्यादि बातों के विवेचन को 'बहिरंग परीक्षा कहते हैं।

अतः उक्त ग्रन्थ दोनों ही परीक्षाओं में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

कहा जाता है कि कोहिनूर हीरा जब भारत वर्ष से विलायत पहुँचाया गया, तब वहाँ फिर उसके नये पहलू बनाने पर वह और भी तेजस्वी हो गया हीरे के लिये प्रयुक्त होने वाला यह न्याय सत्यरूपी रत्नों के लिये भी प्रयुक्त हो सकता है। गीता में प्रतिपादित धर्म, सत्य और अभय को जिस समय और जिस रूप में बतलाया गया था उस देश काल आदि परिस्थिति में वर्तमान काल में अधिक अन्तर हो गया है, इस कारण अब उसका तेज पहले की भाँति कलुषित युक्त मानव को दृष्टिगत नहीं होता है। बहुत सा अंश अब कुछ लोगों को अनावश्यक प्रतीत होता है और कुछ नये विद्धानों की यह समझ हो गई है कि अर्वाचीन काल में आधिभौतिक ज्ञान की पश्चिमी देशों में जो बाढ़ के कारण अध्यात्म शास्त्र के आधार पर की गयी कर्मयोग की प्राचीन विवेचना वर्तमान काल के लिये पूर्णतयाः अनुपयुक्त है किन्तु ऐसा विचार समीचीन नहीं है। सदा सर्वदा त्रिकाल अवाधित जो ज्ञान है उसका निरूपण करने वाले गीता जैसे ग्रन्थ से काल भेद के अनुसार मनुष्य को नवीन–नवीन स्फूर्ति प्राप्त होती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अतएव यह किसी भी काल के लिये अनुपयुक्त नहीं है। गीता धृतराष्ट्र, संजय तथा कृष्ण और अर्जुन के मध्य प्रश्नोत्तर के रूप में एक वार्तालाप है। गीता के प्रथम अध्याय में वर्णित विषय के अन्तर्गत धृतराष्ट्रसंजय से प्रश्न द्वारा धर्मक्षेत्र एवं कुरूक्षेत्र रूपी युद्ध में उपस्थित अपने व पाण्डवों की सेना के विषय में परिचय प्राप्त करते हैं। चौथे से छटे श्लोक तक सेना के प्रमुख योद्धाओं के नाम बतलायें हैं। प्रथम अध्याय के महारथी के लक्षण तथा कौरव पक्षीय प्रमुख वीरों का परिचय भी दिया गया है। अर्जुन के अनुरोध से भगवान का दोनों सेनाओं के बीच में रथ को ले जाना और अर्जुन द्वारा स्वजनों को देखकर शोकाकुल होना एवं विषाद युक्त होना स्वाभाविक क्रिया है। यह प्रथम अध्याय के अन्तर्गत है। अतः श्री भगवान ने अर्जुन को निमित्त बनाकर समस्त विश्व को श्री

गीता के रूप में जो महान उपदेश दिया है यह अध्याय उसकी अवतारणा के रूप में है। इसमें मुख्यतया अर्जुन के बंधुनाश की आशंका से उत्पन्न मोहजनित विषाद का ही वर्णन है। इस प्रकार का विषाद भी अच्छा संग मिल जाने पर सांसारिक भोगों में वैराग्य की भावना द्वारा कल्याण की ओर अग्रसर करने वाला हो जाता है इसलिए इसका नाम 'अर्जुन विषाद योग' रखा गया है। यहाँ पर छात्र रूपी अर्जुन के द्वारा गुरू से व्यावहारिक परिस्थिति को देखने, सुनने व समझने की जिज्ञासा प्रकट की गई है। गुरू ने दोनों सेनाओं के मध्य रथ को स्थापित कर व्यावहारिक आदर्श पाठ प्रस्तुत करने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। शरणागत अर्जुन द्वारा अपने शोक की निवृत्ति का एकान्तिक उपाय पूछे जाने पर प्रथमतः भगवान ने तीसवें श्लोक तक आत्म तत्व का वर्णन किया है। सांख्य योग के साधन में आत्म तत्व का श्रवण मनन और निदिध्यायन मुख्य है। यद्यपि इस अध्याय में तीसवें श्लोक के बाद स्वधर्म का वर्णन करके कर्म योग का स्वरूप भी समझाया गया है परन्तु उपदेश का आरम्भ योग से ही हुआ है। आत्म तत्व का वर्णन अन्य अध्यायों की अपेक्षा इसमें अधिक विस्तारपूर्वक हुआ है। इस कारण इस द्वितीय अध्याय का नाम 'सांख्य योग' रखा गया है। इसमें स्थिर बुद्धि वाले पुरूष के लक्षण बताये गये हैं। (श्लोक 55–56,57,58)

'दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः।

बीत राग, भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिउच्यते ।।'7

इस प्रकार द्वितीय अध्याय स्थिर बुद्धि के लक्षणों की विवेचना हेतु संगठित किया गया प्रतीत होता है। उक्त अध्याय में राग द्वेष से रहित होकर कर्म करने वाले को प्रसाद की प्राप्ति, दुखों का अभाव एवं बुद्धि की स्थिरता प्राप्त होती है। राग द्वेष से रहित होकर विचरने वाले पुरूष परम शान्ति को प्राप्त करते है – जैसा कहा गया

है –

''प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्न चेतसे ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।8

''अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर सम्पूर्ण दुखों का अभाव हो जाता है और कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही स्थिर हो जाती है।''

कर्मयोग के साधन से पापों का नाश होकर अन्तःकरण विशुद्ध हो जाता है तथा शुद्ध अन्तःकरण में ही उपर्युक्त सात्विक प्रसन्नता जन्म लेती है। इसलिये सात्विक प्रसन्नता से सारे दुखों का अभाव बतलाना न्यायसंगत ही है। तृतीय अध्याय का नाम 'कर्मयोग' रखा गया है क्योंकि इस अध्याय में नाना प्रकार के हेतु से विहित कर्मों की आवश्यक कर्तव्यता सिद्ध की गई है तथा प्रत्येक मनुष्य को अपने–अपने वर्ण आश्रम के लिये विहित कर्म किस प्रकार करने चाहिये, क्यों करने चाहिये, उनके न करने में क्या हानि है, करने में क्या लाभ है कौन से कर्म बन्धन कारक है और कौन से मुक्ति में सहायक हैं इत्यादि बातें भलीभाँति समझायी गई है अतः इस अध्याय में दूसरे विषयों का समावेश कम तथा कर्मयोग का समावेश अधिक हुआ है। गीता के वर्ण्य विषय में सांख्य निष्ठा और योग निष्ठा के स्वरूप का वर्णन मुख्यतया दिया गया है अतः जिस प्रकार सांख्य निष्ठा के चार विभाग किये गये हैं उसी प्रकार योग निष्ठा के भी तीन मुख्य भेद ''जयदयाल गोयन्दका'' की पुस्तक में बताये गये हैं।

1. कर्मप्रधान कर्मयोग

2. भक्ति मिश्रित कर्मयोग

3. भक्ति प्रधान कर्मयोग''9

1. कर्मप्रधान कर्मयोग :– समस्त कर्मों में और सांसारिक पदार्थों में फल और आसक्ति को सर्वथा त्याग करके अपने वर्णाश्रमानुसार शास्त्र विहित कर्म करते रहना ही कर्मप्रधान कर्म योग है। निष्काम कर्म योगी कर्म फल से न बंधकर परमात्मा की प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है। गीता में कहा गया है कि–

''तस्मादसक्तः सततं कार्यम कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्रोति पुरूषः।।10

आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। गीता इस बात पर जोर देती है कि परिणाम की चिन्ता न करते हुए सच्चे मन से कर्म करते रहना चाहिए अतः कर्मयोग वास्तव में तभी पूर्ण होता है जब फल और आसक्ति दोनों का ही त्याग हो जाता हे।

''नियत कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ध्यकर्मणः ।

शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्ध येद कर्मणः।।11

हमें शास्त्र विहित कर्तव्यकर्म करने चाहिये। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। शरीर निर्वाह भी कर्म के बिना सम्भव नही है। गीता के अनुसार सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं

''प्रकृते क्रियमाणनि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकार विमूढात्मा कर्ताऽहिमिति मन्यते।।12

किन्तु जिसका अन्तः करण अज्ञान एवं अहंकार से मोहित हो रहा है वह स्वयं को कर्ता मानता है।

अन्तःकरण और इद्रियों का विषयों को ग्रहण करना एक स्वाभाविक क्रिया है, जैसे किसी विषय में बुद्धि का निश्चय करना मन का मनन करना, कान का सुनना, त्वचा का स्पर्श करना, आँरवों का देखना, जिह्वा का आस्वादन करना, नासिका का सूंघना, वाणी का उच्चारण करना, हाथ का वस्तु को ग्रहण करना, पैरों का गमन करना ये सभी प्रकृत्या अर्थात् उनका स्वाभविक जनित कर्म है। व्यक्ति यह कहता है कि '' मैं निश्चय करता हूँ'' मैं संकल्प करता हूँ और देखता हूँ आदि उसे कर्म बन्धन में बाँधते हैं इसलिये उसे उन कर्मो का फल भोगने के लिये जन्म मृत्यु रूपी संसार चक्र में अनेकों बार आना जाना पड़ता है।

2. भक्ति मिश्रित कर्म योग :– ईश्वर की व्यापकता को अंगीकार कर अपने वर्णोचित कर्म के द्वारा ईश्वरार्चन करते हैं । ऊँच नीच छोटे बड़े आदि की संकीर्ण भावना से मानव को ऊपर उठाना ही भक्ति मिश्रित कर्मयोग है।

3. भक्ति प्रधान कर्म योग :– इसके दो भेद किये गये हैं –

1. भगवदर्पण कर्म **2. भगवदर्थ कर्म**

भगवद्र्पण कर्म के विषय में गीता में कहा गया है कि –

''मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्याध्यात्म चेतसा।

निराशीं निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगत ज्वराः ।।13

श्री कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, मुझ अर्न्तयामी परमात्मा में लगे हुये चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके आशा, ममता और सन्ताप रहित होकर जीवन कर्म रूपी युद्ध को करने हेतु तत्पर होजा।

भगवद्त्र्य कर्म :– जो कर्म भगवान के विग्रह के अर्चन भजन ध्यान और उपासना रूपी कर्म के रूप में किये जाते हैं वे 'भगवदर्त्य' कर्म कहलाते हैं।

'स्वामी रामसुख दास ने अपनी पुस्तक' साधक संजीवनी में इन तीन योगों की व्याख्या भिन्न रूप में दी है। इनके अनुसार कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग ये तीन ही योग हैं । शरीर (अपरा) को लेकर कर्मयोग है। शरीरी (परा) को लेकर ज्ञानयोग है और शरीर–शरीरी (अपरा – परा) दोनों के मालिक को लेकर भक्तियोग है। स्वामी रामसुख दास जी कहते हैं कि भगवान ने गीता के आरम्भ में पहले शरीरी को लेकर फिर शरीर को लेकर क्रमशः ज्ञान योग और कर्मयोग का विशद वर्णन किया है और अन्त में कल्याण करने में सक्षम ध्यान योग का भी वर्णन किया गया है। 14 सातवें अध्याय में यह विचार अभिव्यक्ति किया गया है कि मनुष्य कर्मयोग से जगत के लिये, ज्ञानयोग से अपने लिये और भक्तियोग से भगवान के लिये उपयोगी हो जाता है।

चतुर्थ अध्याय का नाम 'ज्ञानकर्म सन्यास योग' है। 'ज्ञान' शब्द परमार्थ ज्ञान अर्थात तत्वज्ञान का, कर्म शब्द कर्मयोग अर्थात योग मार्ग का और 'सन्यास' शब्द सांख्य योग अर्थात ज्ञानमार्ग का प्रतीक एवं वाचक है। इस अध्याय का संयोजन अपने अवतरित होने के रहस्य और तत्व के साथ कर्मयोग तथा सन्यास योग का और परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान एवं उसके वर्णन के लिये किया गया है। इस अध्याय में श्री कृष्ण द्वारा कर्मयोग की प्राचीन परम्परा बतायी गई है। अर्जुन के प्रश्न पर भगवान के द्वारा अवतार रहस्य का वर्णन, चारों वर्णों की सृष्टि गुण व कर्म के आधार पर ईश्वर कृत है ऐसा बताया गया है । साथ ही कर्म के रहस्य और महापुरूषों की महिमा का वर्णन भी किया गया है।

श्री कृष्ण जी ने अवतार गृहण करने के विभिन्न कारणों का वर्णन करते हुये कहा है कि –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभयुत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।15

इसी अध्याय में ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हुये विवेक द्वारा संशय का नाश करके कर्मयोग का अनुष्ठान करने में अर्जुन का उत्साह वर्धन करते हुये कर्मयोगी की प्रशंसा करते हुये कहते हैं कि –

योग संन्यस्त कर्माणि ज्ञान संछिन्न संशयम्।

आत्मवन्तं च कर्माणि निवधन्ति धनज्जय ।। 16

कहने का तात्पर्य यह है कि जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों को परमात्मा में अर्पण कर दिया है और विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है ऐसे पुरूष को कर्मानुसार नाना योनियों में जन्म नहीं लेना पड़ता।

अतः गीता में प्रकरण के अनुसार ज्ञान शब्द कई अर्थों में व्यवहृत हुआ है। जैसे बारहवें अध्याय के बारहवें श्लोक में ज्ञान की अपेक्षा ध्यान को और उससे भी कर्मफल के त्याग के श्रेष्ठ बतलाया है। इस कारण वहाँ ज्ञान का अर्थ शास्त्र और श्रेष्ठ पुरूषों द्वारा होने वाला विवेक ज्ञान से है। तेरहवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक में ज्ञेय के वर्णन में विशेषण के रूप में 'ज्ञान' का अर्थ परमेश्वर का नित्य विज्ञानानन्द घन स्वरूप ही है। अठारहवें अध्याय के बयालीसवें श्लोक में ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्मो की गणना में 'ज्ञान' शब्द का अर्थ शास्त्रों का अध्ययनाध्यापन करना ही माना गया है। इसी अध्याय के छत्तीसवें श्लोक से उन्तालीसवें श्लोक तक 'ज्ञान' शब्द का अर्थ परमात्मा का तत्व ज्ञान है।

इस प्रकार हमें देखते हैं कि गीता में शब्दों का प्रयोग अनेकार्थो में हुआ है।

शब्द 'सन्यास' है। इसलिये पंचम अध्याय का नाम 'कर्म—सन्यास योग' रखा गया है।

जब शिष्य अर्जुन द्वारा अपने गुरू रूपी कृष्ण जी से सांख्य योग तथा कर्म योग की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा के समाधान हेतु प्रश्न पूंछते हैं तो श्री कृष्ण सांख्य योग तथा कर्म योग दोनों को ही कल्याण कारक बतलाते हुये कर्म सन्यास की अपेक्षा कर्म योग को ही श्रेष्ठ बतलाते हैं। परन्तु दोनों का फल एक होने के कारण पांचवें अध्याय के पांचवे श्लोक में दोनों की एकता का प्रतिपादन करते हुये कहते है कि—

''यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।

एकं सांख्य च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।17

जो परम धाम ज्ञान योगी प्राप्त करता है वही स्थान कर्मयोगी को भी प्राप्त होता है अतः ज्ञान योग और कर्मयोग को समान देखने व समझने वाला ही दृष्टा होता है।

सांख्य योग और कर्मयोग दोनों की साधन प्रणाली भिन्न है तथा दोनों के मार्ग भी स्वतन्त्र है। फिर भी सांख्य योग से जो मोक्ष मिलता है वही कर्मयोग अर्थात् कर्मों के न छोड़ने से भी प्राप्त होता है।

तत्व को जानने वाला सांख्य योगी तो—

''नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्यते तत्वावित्।

पश्चन् शृण्वन्स्पृशज्जिधन्नश्नन्गच्छन्स्पपन्श्रवसन्।। 18

प्रलपन्विसृजन्गृहन्नुन्मिषन्नि मिषन्निपि ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्पेषु वर्तन्त इति धारयन् ।। 19

देखता, सुनता, स्पर्श करता, सूंघता, भोजन आदि को करता हुआ भी वह कुछ भी नहीं करता है। अतएव कर्म तो दोनों को ही करना पड़ता हे। किन्तु आसक्ति को छोड़ना ही इसका मुख्य तत्व है, और उसी का गीता में निरूपण किया गया है।

''बाह्यस्पशैष्वसकात्मा विन्द त्यास्मनि यत्सुरवम।

स ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षय मश्नुते ।। 20

''ये हिं संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एवते ।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुध ।। 21

उर्पयुक्त कथन से हमें ज्ञात होता है कि विषयाभोग में जिसका मन आसक्त नहीं वही ब्रह्मयुक्त पुरूष अक्षय रूप आत्म सुख का अनुभव करता है। इसलिए श्री कृष्ण जी अर्जुन को कर्मयोगी बनने का उपदेश देते हैं।

कर्मयोग और सांख्ययोग–इन दोनों ही साधनों में उपयोगी होने के कारण इस छठे अध्याय में ध्यान योग का भलीभाँति वर्णन किया गया है। ध्यानयोग में शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि का संयम करना परम आवश्यक है तथा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि – इन सबको आत्मा के नाम से कहा जाता है और इस अध्याय में इन्हीं के संयम का विशेष वर्णन है अतः इस अध्याय का नाम :आत्म संयम योग' रखा गया हे। इसमें ध्यान योग का अंगों प्रत्यंगों सहित विस्तार से वर्णन किया गया है।

जिसने मन और इन्द्रियों सहित शरीर को जीत लिया है वह अपना स्वयं मित्र बन जाता है इस तथ्य की पुष्टि गीता में इस प्रकार की गई है–

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।

शींतोष्ण सुख दुखेषु तथ मानापमा नयो ।। 22

परमात्मा आत्मा से भिन्न स्वरूप का पदार्थ नहीं है बल्कि मानव शरीर में रहने वाला आत्मा ही तत्वतः परमात्मा है महाभारत भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

आत्मा क्षेज्ञस इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतै गुणैः ।

तैरेव विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहतः ।। 23

प्रकृति के गुणों से (सुख दुख आदि विकारों से) बद्ध रहने के कारण आत्मा को ही क्षेत्रज्ञ या शरीर का जीवात्मा कहते हैं और इन गुणों से मुक्त होने पर वही परमात्मा हो जाता है क्योंकि–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म काच्चनः।।24

सुह्न्मित्रार्युदासनि मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु।

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धि र्विशिष्यते ।। 25

जिस व्यक्ति के लिए ज्ञान विज्ञान मिट्टी पत्थर और सुवर्ण समान है वह योगी भगवत प्राप्त है।

सुहृद मित्र बैरी, और पापियों आदि में भी समान भाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है। कर्मयोगी की प्रशंसा करते हुए श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

तपस्विभ्योऽधिको योगी सानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।

कर्मिम्यच्चाधिको योगी तस्माधोगी भवार्जुन ।। 26

कर्मयोगी तपस्वी ज्ञानी पुरूषों व कर्मकाण्ड करने वालों से श्रेष्ठ है। इसलिये हे अर्जुन, तू कर्मयोगी बन।

श्री कृष्ण कहते हैं कि कर्मयोग में भी भक्ति का प्रेम पूरित मेल हो जाने से वह

योगी भगवान को अत्यन्त प्रिय हो जाता है। इसके पश्चात 'ज्ञान' और विज्ञान किसे कहते हैं, और परमेश्वर का पूर्ण ज्ञान होकर कर्मों को न छोड़ते हुये भी कर्म योग मार्ग की किन विधियों से अन्त में निःसंदेह मोक्ष प्राप्त होता है। सातवें अध्याय से लेकर सत्रहवें अध्याय पर्यन्त इसी विषय का वर्णन है और अन्त के अठारहवें अध्याय में सब कर्मयोग का उपसंहार किया गया है। सृष्टि के अनेक प्रकार के अनेक विनाशवान पदार्थों में एक ही अविनाशी परमेश्वर समा रहा है। इस समझ का नाम है 'ज्ञान' और एक ही नित्य परमेश्वर से विविध नाशवान पदार्थों की उत्पत्ति को समझा लेना विज्ञान कहलाता है। गीता में इसे ही क्षर व अक्षर के नाम से वर्णित किया गया है।

ज्ञान और विज्ञान के सहित भगवान के स्वरूप को जानना ही समग्र भगवान को जानना है। इस अध्याय में इसी समग्र भगवान के स्वरूप का उसके जानने वाले अधिकारियों का और साधनों का वर्णन है – इसलिए इस अध्याय का नाम 'ज्ञान विज्ञान योग्य' रखा गया है।

भूमिरायोऽनलो....................मणिगणा इव ।। 27

उर्पयुक्त चारों श्लोकों में सब क्षर अक्षर ज्ञान का सार आ गया है और अग्रिम श्लोकों में इसी की विस्तार पूर्वक विवेचना की गई है। अर्जुन को परमात्म तत्व की व्यापकता को समझाते हुये कृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन –

रसोऽहमप्सु कोन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययो : ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरूषं नृषु ।। 28

परमात्म तत्व रूपी जल में रस, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार, आकाश में शब्द और पुरूषों में पुरूषत्व के रूप में मैं ही विद्यमान हूँ। हे पार्थ मुझको

सब प्राणियों का सनातन बीज समझ। पुनः श्री कृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि हे अर्जुन –

''तेषा ज्ञानी नित्ययुक्तं एक भक्ति र्विशिष्यते।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्षमहं स च मम प्रियः।। 29

नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है। उसे मैं प्रिय हूँ और ज्ञानी मुझे भी अत्यन्त प्रिय है।

''प्रथमतः तो भगवान स्वयं स्वाभाविक रूप से प्रेम स्वरूप है'' 30

'अक्षर' और 'ब्रह्म' दोनों शब्द भगवान के सगुण और निर्गुण स्वरूपों के वाचक हैं । ऊँ को भी अक्षर और ब्रम्ह कहते हैं इसलिये इस अध्याय का नाम 'अक्षर ब्रह्म योग' रखा गया है।

इस अध्याय के पहले और दूसरे श्लोकों में ब्रह्म अध्यात्म आदि विषयक अर्जुन के सात प्रश्न है फिर तीसरे से पाँचवें तक भगवान सातों प्रश्नों का संक्षेपमें उत्तर देकर छठे में अन्तकाल के चिन्तन का महत्व दिखलाते हुये सातवें में अर्जुन को निरन्तर अपना चिन्तन करने की आज्ञा देते हैं।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को बताया कि सबसे परम अक्षर नष्ट न होने वाला तत्व ब्रह्म है। और प्रत्येक वस्तु का अपना मूलभाव (स्वभाव) ''अध्यात्म'' कहलाता है। (अक्षर ब्रह्म) से भूतमात्रादि (चर अचर) पदार्थों की उत्पत्ति करने वाला सृष्टि व्यापार ''कर्म'' है।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

भूत भावोद्भव करो विसर्गः कर्म संज्ञितः ।।31

अधिभूतं क्षरो भावः पुरूषश्चाधिदैवतम् ।

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ।। 32

अतः नौवें व दसवें अध्याय में कर्म योग की सिद्धि के लिये राज मार्ग का निर्देश दिया गया है। इस अध्याय में प्रधान रूप से विभूतियों का ही वर्णन है । इसलिये इस अधयय का नाम 'विभूतियोग' रखा गया है। इस अध्याय में ईश्वर ने 'योग' के प्रभाव का वर्णन करके उसके जानने का फल बतलाया है। विभूतियों का संक्षेप में वर्णन करते हुये सातवें श्लोक में प्रभु की विभूति और योग को तत्व से जानने का निर्देश दिया है।

इस 11वें अध्याय के आरम्भ में शिष्य अर्जुन ने गुरू के उपदेश की प्रशंसा करते हुये विश्व रूप का दर्शन कराने के लिये प्रार्थना करते हैं। शिष्य की शंकाओं को दूर करने हेतु उन्हें विश्वरूप का दर्शन कराया जाता है, इसलिये इस 11वें अध्याय का नाम 'विश्वरूप दर्शन योग' रखा गया है।

बारहवें अध्याय में अनेक प्रकार के साधनों सहित भगवान की भक्ति का वर्णन करके भगवद्भक्तों के लक्षण बतलाये गये हैं। इसका उपक्रम और उपसंहार भगवान की भक्ति में ही हुआ है।

तेरहवें अध्याय में 'क्षेत्र' (शरीरी) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) की व्याख्या की गई है। क्षेत्र जड़ विकारी, क्षणिक, और नाशवान है। एवं क्षेत्रज्ञ चेतन, ज्ञान स्वरूप, निर्विकार, नित्य और अविनाशी है। इस अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों के स्वरूप का उपर्युक्त प्रकार से विभाग किया गया है। इसलिए इसका नाम 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञविभाग योग' रखा गया है।

तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के लक्षणों का निर्देश करके उन दोनों के ज्ञानको ही ज्ञान की कोटि में सार्थक किया गया है पुरूष के बार–बार अच्छी बुरी

योनियों में जन्म लेने में गुणों का संग ही हेतु है यह तथ्य चौदहवें अध्याय में वर्णित है। गुणों के भिन्न–भिन्न स्वरूप क्या है ये जीवात्मा को कैसे शरीर में बाँधते है किस गुण के संग से किस योनि में जन्म होता है, गुणों के छूटने के उपाय क्या हैं, गुणों से छूटे हुये पुरूषों के लक्षण तथा आचरण कैसे होते हैं आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की प्रत्येक जिज्ञासु इच्छा होती है।

इस चौदहवें अध्याय में सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों के स्वरूप का उनके कार्य, कारण और शक्ति का तथा वे किस प्रकार किस अवस्था में जीवात्मा को कैसे बन्धन में डालते हैं और किस प्रकार इनसे छूटकर मनुष्य परमपद को प्राप्त हो सकता है तथा इन तीनों गुणों से परे होकर परमात्मा को प्राप्त मनुष्य के क्या लक्षण है ? इन्हीं त्रिगुण सम्बन्धी बातों का विवेचन किया गया है इस लिये इस अध्याय का नाम 'गुणत्रय विभाग योग रखा गया है।

14वें अध्याय में पांचवे से अठारवें श्लोक तक तीनों गुणों के स्वरूप उनके कार्य एवं उनकी बन्धनकारिता का और बंधे हुये मनुष्यों की उत्तम, मध्यम और अधम गति का विस्तारपूर्वक वर्णन करके उन्नीसवें और बीसवें श्लोकों में उन गुणों से परे होने का उपाय और उसके फल की विवेचना की गई है। उसके बाद गुणातीत पुरूष के लक्षणों और आचरणों का वर्णन करके छब्बीसवें श्लोक में सगुण परमेश्वर के अव्यभिचारी भक्तियोग को गुणों से रहित होकर ब्रह्म प्राप्ति के लिये योग्य बनने का सरल उपाय बताया गया है। अंतएवं उस सगुण परमेश्वर पुरूषोत्तम भगवान के गुण प्रभाव और स्वरूप का एवं गुणों से रहित होने में प्रधान साधन वैराग्य और भगवतशरणागति का वर्णन करने के लिये पंद्रहवें अध्याय का संगठन किया गया है।

पंद्रहवें अध्याय में सम्पूर्ण जगत के कर्ता–हर्ता सर्व शक्तिमान, सबके नियन्ता,

सर्वव्यापी, अन्तर्यामी, परम दयालु सबके सुहृद सर्वाधार, शरण लेने योग्य, सगुण परमेश्वर, पुरूषोत्तम भगवान के गुण प्रभाव और स्वरूप का वर्णन किया गया है। क्षर पुरूष (क्षेत्र) अक्षर पुरूष (क्षेत्रज्ञ) और पुरूषोत्तम परमेश्वर इन तीनों का वर्णन करके क्षर और अक्षर से भगवान किस प्रकार उत्तम हैं वे किसलिये 'पुरूषोत्तम' कहलाते हैं उपर्युक्त विषयों को भलीभांति समझाने के लिये इस अध्याय का नाम पुरूषोत्तम योग रखा गया है। देवी प्रकृति युक्त एवं आसुरी प्रकृति युक्त आज्ञानी पुरूषों के लक्षण एवं स्वभाव का विस्तार पूर्वक वर्णन करने के लिये 16 वें अध्याय का संयोजन किया गया है। इसलिये इस अध्याय का नाम 'दैवासुरसम्पदविभाग योग' रखा गया है।

इस 17वें अध्याय का नाम 'श्रद्धाश्रय विभाग योग' रखा गया है, क्योंकि इस अध्याय में श्रद्धायुक्त पुरूषों की विशद व्याख्या एवं वर्णन किया गया है। तीन प्रकार की श्रद्धा के अनुसार ही पुरूष का स्वरूप, पूजा, यज्ञ, तप आदि में श्रद्धा का सम्बन्ध दिखाते हुये अन्तिम श्लोक में श्रद्धा रहित पुरूषों के कर्मों को असत बतलाया गया है अतः इस अध्याय में त्रिविध श्रद्धा की विभागपूर्वक व्याख्या होने से इस अध्याय का नाम पूर्णतः सार्थक है।

इस अठारवें अध्याय में समस्त अध्यायों के उपदेशों का सार जानने के उद्देश्य से सन्यास यानि ज्ञान योग का और त्याग यानि फलासक्ति के त्याग रूप कर्मयोग का तत्व भलीभांति अलग–अलग जानने की अर्जुन इच्छा प्रकट करते हैं।

जन्म मरण रूप संसार के बन्धन से सदा के लिये छूटकर परमानन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेने का नाम मोक्ष है। इस अध्याय में पूर्वाक्त समस्त अध्यायों का सार संग्रह करके मोक्ष के उपाय भूत सांख्य योग का सन्यास के नाम से और कर्मयोग का त्याग के नाम से अंग प्रत्यगोसहित वर्णन किया गया है इसलिये

रहना चाहिए।

गीता के इस प्रकार के सन्देश को सभी विद्यार्थियों के जीवन को सुखमय, देशभक्त, कर्तव्यनिष्ठ एवं समाजसेवी, परेपकारी, सर्वधर्मसमभावी बनाने में प्रयोग किया जा सकता है। यही तो गीता का वास्तविक शैक्षिक निहितार्थ है। यही सन्देश विद्यार्थियों को भी दिया गया है।

(ब) **गीता का दार्शनिक सम्प्रत्य** –

प्राचीन भारत में चिन्तन और विचार करने की पद्धति को दर्शन कहा जाता था। परन्तु ज्ञान क्षेत्र में विकास होने के कारण अर्थ शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, धर्म शास्त्र, मानव शास्त्र आदि अनुशासनों के रूप में विभाजन करना शुरू हो गया है। अन्तिम सत्य की खोज ज्ञान की जिस शाखा के द्वारा की जाती है उसे हम दर्शन शास्त्र कहते है।

दष्श् धातु में ल्युट् प्रत्यय लगाकर दर्शन शब्द का निर्माण किया गया है। इसलिए उपनिषद में कहा गया है कि 'दष्श्यते अनने इति दर्शनम्' अर्थात जिसके द्वारा देखा जाये अथवा सत्य के दर्शन किये जाये उसे दर्शन कहते है। हम जानते है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है। इन साधनों में से प्रत्यक्ष अर्थात आंख से देखने को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। सूक्ष्म, स्थूल दोनो प्रकार के पदार्थो का प्रत्यक्ष ज्ञान, चक्षु द्वारा ही सम्भव होता है। मानव को स्थूल पदार्थो को देखकर उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'प्रज्ञा चक्षु' या 'ज्ञान चक्षु' का प्रयोग करना पड़ता है। अतः भारतीय दर्शन एक ऐसा विज्ञान है जो प्रज्ञा चक्षु या ज्ञान चक्षु या दिव्य नेत्र को खोजने पर विशेष बल देता है। ताकि बौद्धिक मानव सूक्ष्म तत्वों जैसे आत्मा परमात्मा आदि का साक्षात्कार कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय दर्शन उस सम्यक दर्शन पर बल प्रदान करता है जिसमें वाह्य नेत्र और दिव्य चक्षु दोनों क़ी आवश्यकता होती है;

परमात्मा की प्राप्ति। अब प्रश्न यह है कि दोनो का समन्वय कैसे है, अब इसी पर विचार किंया जाता है।

साधन काल में साधक जिस प्रकार के भाव और श्रद्धा से भावित होकर परमात्मा की उपासना करता है, उसको उसी भाव के अनुसार परमात्मा की प्राप्ति होती है। जो अभेदरूप से अर्थात अपने को परमात्मा से अभिन्न मानकर परमात्मा की उपासना करते है, उन्हें अभेद रूप से परमात्मा की प्राप्ति होती है और जो भेदरूप से उन्हें भजते हैं, उनहें भेदरूप से ही वे दर्शन देते हैं। साधक के निश्चयानुसार परमात्मा भिन्न–भिन्न रूप से सब लोगो को मिलते हैं। गीता में कहा गया है –

मय्यावेष्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्तमा मताः।।34

श्री कृष्ण जी के अनुसार– मुझ में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन–ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य है। फिर जिज्ञासा यह हो सकती है कि यदि सगुण–साकार उत्तम योगवेत्ता है तो क्या फिर निर्गुण–निराकार ब्रह्म के उपासक उत्तम योगवेत्ता नहीं है। इस पर श्री कृष्ण जी कहते है–

ये त्वक्षरमनिर्देष्यमव्यक्त पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।35
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समवुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।36

निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए प्रभु को भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सब में समान भाव वाले योगी प्रभु को ही प्राप्त होते है। अर्थात

जो उन्हे निगुर्ण समझते है उनके लिये वे निगुर्ण है जो उन्हें सगुण समझते है उनके लिए वे सगुण है। पर जो उन्हें सगुण–निराकार मानते है, उनके लिये वे सगुण निराकार है जो उन्हें सर्वशक्तिमान्, सव प्रकार के उत्तम गुणों से युक्त मानते हैं, उनके लिये वे सर्वसद गुण सम्पन्न है।

उपर्युक्त कथन से मूल शंका का समाधान नहीं हुआ, वह तो ज्यों की त्यों बनी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब भगवान सबको अलग–अलग रूप में मिलते है तब फल में एकता कहाँ होगी। उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रथम परमात्मा साधक को इसके भाव के अनुसार ही मिलते है। उसके बाद जो भगवान के यथार्थ तत्व की उपलब्धि होती है, वह वाणी के द्वारा अकथनीय है, गीता में कहा गया है–

मां च यो व्यमिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्यभूयाय कल्पते।।37

अर्थात जो पुरूष भक्तियोग के द्वारा मुझको निरन्तर भजता है वह भी इन तीनों गुणों को भली भॉति लांघकर सच्चिदानन्द धन ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये योग्य बन जाता है।

उपर्युक्त श्लोक में सगुण परमेश्वर की उपासना का फल निर्गुण निराकार ब्रह्म की प्राप्ति बतलाया गया।

अतः अभेदोपासना तथा भेदोपासना दोनों प्रकार की उपासना का फल एक ही होता है, इसी बात को लक्ष्य कराने के लिये भगवान ने एक ही बात को कई प्रकार से कहा है।

अतः सब साधनों का फलरूप जो परम वस्तु – तत्व है वह एक ही है यही बात युक्ति संगत है।

परमात्मा का यह तात्विक स्वरूप अलौकिक है, परम रहस्यमय हैं, गुह्मतम है। जिन्हे वे प्राप्त है, वे ही उन्हे जानते हैं।

जीव में चेतन – परमात्मा और जड़ प्रकृति का अंश है। चेतन – अंश की मुख्यता से वह परमात्मा की इच्छा करता है और जड़ – अंश की मुख्यता से वह संसार की इच्छा करता है। इन दोनों इच्छाओ में परमात्मा की इच्छा तो पूर्ण होने वाली होती है, पर संसार की इच्छा कभी पूर्ण होती ही नही। कुछ सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति होती हुई दृष्टिगत होती है परन्तु वास्तव में उनकी निवृत्ति नहीं होती, प्रत्युत संसार की आसक्ति के कारण नयी–नयी कामनाएं पैदा होती रहती हैं। वास्तव में सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति इच्छा के अधीन नहीं है, प्रत्युत कर्म के अधीन है, परन्तु परमात्मा की प्राप्ति कर्म के अधीन नहीं है। स्वयं की उत्कट अभिलाषा मात्र से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक कर्म का आदि और अन्त होता है इसलिए उसका फल भी आदि – अन्तवाला ही होता है। अतः आदि अन्तवाले कर्मो से अनादि अनन्त परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है। परन्तु साधकों ने प्रायः ऐसा समझ रखा है कि जैसे क्रिया की प्रधानता से सांसारिक वस्तु की प्राप्ति होती है, ऐसे ही परमात्मा की प्राप्ति भी उसी प्रकार क्रिया की प्रधानता से ही होगी। इसलिये ऐसे साधक शरीरादि की सहायता से अभ्यास करते हुये परमात्मा की तरफ चलते हैं।

वास्तव में परमात्मा को मानने अथवा जानने के विषय में संसार का कोई भी दृष्टान्त पूरा नहीं उतरता क्योकि संसार को मानने अथवा जानने में तो मन–बुद्धि साथ रहते हैं, परमात्मा को मानने अथवा जानने में मन–बुद्धि साथ नही रहते है अर्थात परमात्मा का अनुभव स्वयं से होता है, मन–बुद्धि से नहीं। हम जानते हैं कि संसार को मानने अथवा जानने का तो आरम्भ और अन्त दोनों होता है, परन्तु परमात्मा को मानने अथवा जानने का आरम्भ और अन्त होता ही नही है, क्योंकि वास्तव में संसार के साथ हमारा स्वयं का सम्बन्ध है ही नही, जबकि परमात्मा के साथ सारा सम्बन्ध सदा से ही और सदा ही रहेगा।

श्री कृष्ण जी ने गीता में कहा है कि अज्ञानी मनुष्य शरीर से सम्बन्ध

जोड़कर उससे होने वाली क्रियाओं का कर्ता अपने को मान लेता है –

"अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते" (गीता अ0–3 श्लोक–27) परन्तु ज्ञानी मनुष्य उन क्रियाओं का कर्ता अपने को नहीं मानता।

"नैव किचित्करोमीति युक्तों मन्येत तत्वावित" (गीताक अ0–5 श्लोक–5)

"मैं हिन्दू हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं साधु हूँ आदि मान्यताएं इतनी दृढ़ होती हैं कि जब तक इन मान्यताओं को स्वयं नहीं छोड़ता, तब तक इनको कोई दूसरा नहीं छुड़ा सकता। ऐसे ही "मैं शरीर हूँ" मैं कर्ता हूँ" आदि मान्यताएं भी इतनी दृढ़ हो जाती है कि उनको छोड़ना साधक को कठिन मालूम देता है, परन्तु ये लौकिक मान्यताएं अवास्तविक, असत्य होने के कारण सदा रहने वाली नही है, प्रत्युत उनकी विस्मृति होती रहती है। इसलिये वास्तविक मान्यता दृढ़ होने पर वे बोध (अनुभव) में परिणत हो जाती हैं।

यद्यपि गीता में साधन–सापेक्ष–शैली का उल्लेख किया गया है, क्योंकि परब्रह्म साधकों को शीघ्रता से और सुगमतापूर्वक अपनी प्राप्ति कराना चाहते है। अन्तःकरण को शुद्ध करने की आवश्यकता भी इसी शैली में निहित है, जैसे कलम बढ़िया होने से लिखाई तो बढ़िया हो सकती है, परन्तु बढ़िया लेखक नही हो सकता। इसी प्रकार साधन शुद्ध होने से क्रियाएं तो शुद्ध हो सकती हैं, पर कर्ता शुद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि कर्ता तो शुद्ध होता है– अन्तःकरण से सम्बन्ध ा–विच्छेद होने पर वास्तव में अन्तःकरण से अपना सम्बन्ध मानना ही मूल अशुद्धि है। उपनिषदों को वेदों का ज्ञान काण्ड कहा जाता है। गीता में वेदों, उपनिषदों के ज्ञान का सार समाहित है।

गीता में तप की महिमा को बार–बार निरूपित करने के बाद श्री कृष्ण ने तप के व्यावहारिक रूप का प्रस्तुतीकरण शारीरिक, वाचिक व मानसिक तप के रूप में किया है। गीता महान दर्शन है जो व्यक्ति के जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित है वह केवल जीवन में क्या समस्यायें हैं इस पर ही प्रकाश नहीं डालती

अपितु उसके समाधान का मार्ग भी प्रस्तुत करती है। यह एक मौलिक चिन्तन है जो जीवन की गहराई तक पहुँचाने में हमें समर्थ बनाती है।

(स) <u>गीता दर्शन का आलोचनात्मक विश्लेषण</u> –

गीता दर्शन सत्य के स्वरूप की तार्किक विवेचना है। व्यापक अर्थ में दर्शन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वरूप की खोज करता है। दर्शन वास्तव में मूल तत्व अर्थात अन्तिम सत्य की खोज करने वाला शास्त्र है और इसी के आधार पर दर्शन मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य को निश्चित करने व उसी प्राप्ति हेतु उसके आचार को निश्चित करने वाला शास्त्र है।

दर्शन एवं शिक्षा में धनिष्ठ सम्बन्ध हैं वे एक दूसरे के पूरक हैं। दर्शन में इस ब्रह्माण्ड की व्याख्या के साथ–साथ मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति के साधन मार्गो पर भी विचार किया जाता है। इन उद्देश्यों को कैसे प्राप्त किया जाये ? इस कार्य में शिक्षा हमारी सहायता करती है। शिक्षा हमारे विचार एवं व्यवहार में सामन्जस्य उत्पन्न करती है तथा नये ज्ञान की खोज हेतु अन्वेषण, परीक्षण तथा चिन्तन करने की मानसिक शक्तियों को विकसित करती है। इसी ज्ञान के कौशल के आधार पर हम दर्शन का पुननिर्माण करते हैं। दर्शन शिक्षा को जन्म देता है और शिक्षा दर्शन को जम्न देती है अर्थात उसे क्रिया शील रखती है। अतएव दोनों अन्योन्याश्रित है।

अर्जुन शिष्य रूप में कृष्ण की शरण ग्रहण करते हैं और कृष्ण उससे नश्वर भौतिक शरीर तथा नित्य आत्मा के मूल भूत अन्तर की व्याख्या करते हुऐ अपना उपदेश प्रारम्भ करते है तथा उसे कर्म का मार्ग दिखाते हैं। श्री मदभगवद् गीता वह ग्रन्थ है जो हमें कर्म के मार्ग पर प्रोरित करता है। यह गीता हमारे धर्म ग्रन्थों का एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिण्ड्–ब्रह्माण्ड–ज्ञानसहित आत्माविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्वों को थोड़े में स्पष्टरीति से समझा देने वाला, मनुष्य मात्र के पुरूषार्थ की अर्थात आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला, शक्ति

और ज्ञान का व्यावहार के साथ संयोग कर देने वाला और संसार में त्रस्त मनुष्यों को शांति देकर उसे निष्काम कर्तव्य के आचरण में लगाने वाला गीता के समान बालबोध सुलभ ग्रन्थ, समस्त संसार के साहित्य में अप्राप्त है। इसमें ज्ञानयुक्त भक्ति रस के साथ–साथ समस्त वैदिक धर्म का सार स्वयं श्री कृष्ण जी ने अति प्रोत कर दिया है। उसकी व्याख्या करना मुझ अल्पज्ञ की सामर्थ्य से परे है। मुझे तो मेरा एक लघुप्रयास ही समझना चाहिए।

इस ग्रन्थ में श्री कृष्ण ने अर्जुन को पहले सांख्यज्ञान और कर्मयोग की शिक्षा दे कर अन्त में भक्त्यामृत पिलाकर उसे कृतकृत्य किया है, इसलिए भगवद् भक्ति और विशेषतः निवृत्ति विषयक पुष्टि मार्गीय भक्ति ही गीता का प्रधान विषय है। यही कारण है कि भगवान ने गीता में यह उपदेश दिया है कि–

''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण ब्रज''।।38

''सब धर्मो को छोड़कर केवल मेरी ही शरण ले'' अतः श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश इसलिए दिया कि उसका भ्रम दूर हो जाये और वह कर्तव्य मार्ग पर चल पड़े। अपनी छिपी हुई शक्तियों को पहचान सकें। वह कर्तव्य परामण हो अपने जीवन के लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सका।

गीतोक्त कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीनों ही साधन करण–निरपेक्ष अर्थात स्वयं में साहव हम जानते हैं कि क्रिया और पदार्थ स्वयं अपने लिये नहीं होते हैं, प्रत्युत दूसरों की सेवा के लिये है। मैं शरीर नहीं हूँ और शरीर मेरा नहीं है, मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं। इस प्रकार विवेक पूर्वक किया गया विचार अथवा मान्यता सर्व मान्य है। असली रूप भी दिखना आवश्यक था। इसलिए जब क्या करूँ और क्या न करूँ ? क्या कर्म है ? क्या निकर्म है ? के विकट परिस्थितियों में मानव फंस जाता है तो इससे निवृति पाने के अनेक प्रसंग द्वार मानवीय ग्रन्थ गीता में भरे पड़े हैं। इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार के कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है और ये ही कर्म उसे इस

जगत से बॉधते या मुक्त कराते हैं। निष्काम भाव से परमेश्वर क प्रसन्नता के लिए कर्म करने से मनुष्य कर्म के नियम से छूट सकता है और आत्मा तथा परमेश्वर विषयक दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

आत्मा, ईश्वर तथा इन दोनों से सम्बन्धित दिव्य ज्ञान मानव को मोक्ष प्रदान करने वाला है। ऐसा ज्ञान कर्मयाग का फल है। श्री कृष्ण इस भौतिक जगत में बारम्बार अपने अवतरणकी महत्ता तथा प्रत्येक प्राणी को गुरू अथवा अध्यापक के पास जाने की आवश्यकता का उपदेश देते हैं। गीता के अनुसार ज्ञानी पुरूष दिव्य ज्ञान की अग्नि से शुद्ध होकर वाह्य रूप से सारे कर्म करता है, किन्तु अन्तर में उन कर्मो के फल का परित्याग करता हुआ भक्ति विरक्ति सहिष्णुता, आध्यात्मिक दृष्टि तथा आनन्द की प्राप्ति करता है।

गीता में कहा गया है कि व्यक्ति यदि ध्यानयोग का अभ्यास करता है तो वह अपने मन तथा इन्द्रियों को नियन्त्रित कर अपना ध्यान परम लक्ष्य पर केन्द्रित करके ही अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

गीता में कहा गया है कि बल, सौन्दर्य, ऐश्वर्य या उत्कृष्टता प्रदर्शित करने वाली समस्त उद्भुत घटनाएं चाहें वे इस लोक में हों या आध्यात्मिक जगत में सभी कृष्ण की दैवी शक्तियों एवं ऐश्वर्यो की आंशिक अभिव्यक्तियां है। युद्ध प्रेम की प्राप्ति का सबसे सुगम एवं सर्वोच्च साधन भक्ति योग है जो व्यक्ति शरीर, आत्मा तथा परमात्मा के अन्तर को समझ लेता है उसे इस भौतिक जगत से मोक्ष प्राप्त हो जात है।

अतः गीता में कर्म, विकर्म, निष्काम व सकाम कर्म , ज्ञान, वैराग्य, कौशल, योग आदि के सम्बन्ध में जो मत अभिव्यक्त किये गये हैं वास्तव में हम मानव जीवन में लौकिक, पारालौकिक जीवन की सफलेता के आधार स्तम्भ है। इन्हे जानना, समझना व प्रयोग करना ही जीवन का उद्देश्य एवं लक्ष्य होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ अध्याय द्वितीय।

1. वेद व्यास कृत – महाभारत भीष्मपर्व 43/2
2. वाराहपुराण – पुराण
3. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका गीता प्रेस गोरखपुर – सं0 2057 पृष्ठ – 133
4. तिलक, बालगंगाधर – "श्री मदभगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" गणेश मुद्रणालय, पुणे – 2000 पृष्ठ – 02
5. तिलक, बालगंगाधर – "श्री मदभगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" गणेश मुद्रणालय, पुणे – 2000 पृष्ठ – 607
6. तिलक, बालगंगाधर – "श्री मदभगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र" गणेश मुद्रणालय, पुणे – 2000 पृष्ठ – 03
7. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका गीता प्रेस गोरखपुर – सं0 2057 पृष्ठ – 88
8. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका गीता प्रेस गोरखपुर – सं0 2057 पृष्ठ – 96
9. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका गीता प्रेस गोरखपुर – सं0 2057 पृष्ठ – 13
10. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका गीता प्रेस गोरखपुर – सं0 2057 पृष्ठ – 122
11. वही – पृष्ठ – 113
12. वही – पृष्ठ – 129
13. वही – पृष्ठ – 132
14. रामसुखदास, स्वामी – "श्रीमदभगवद्गीता साधक संजीवनी" 49 वां संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर सं0 2057 पृष्ठ – 02

15. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 154 – 155

16. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 188

17. वही – पृष्ठ – 197

18. वही – पृष्ठ – 199

19. वही – पृष्ठ – 199

20. तिलक बालगंगाधर – पृष्ठ – 704

21. तिलक बालगंगाधर – पृष्ठ – 704

22. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 225

23. वेद व्यास कृत – महाभारत – पृष्ठ – 187/24

24. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 225

25. वही – पृष्ठ – 226

26. वही – पृष्ठ – 261

27. वही – पृष्ठ – 268 – 269

28. वही – पृष्ठ – 269

29. वही – पृष्ठ – 276

30. तैत्तिरीयोपनिषद – पृष्ठ – 217

31. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 288

32. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 289

33. मानस, बाल0 – पृष्ठ – 13/1

34. गोयदन्का, जयदयाल – पृष्ठ – 426

35. तदैव – पृष्ठ – 426

36. तदैव – पृष्ठ – 427

37. तदैव – पृष्ठ – 487

38. तदैव – पृष्ठ – 598

तृतीय अध्याय

इन दिनों हर कोई ज्ञान के पीछे पड़ा हुआ दिखता है एक के बाद दूसरा ज्ञान सीखता चला जाता है। इस तरह चित्त इतने सारे ज्ञान का बोझ ढोता है कि चिन्तन शक्ति क्षीण हो जाती है। गीता में कहा है कि – ''तू श्रुतिविप्रतिपन्नमति'' अर्थात अनेक बातें सुनसुन कर तेरी मति विप्रतिमन्न हुई है। अतः मनुष्य के लिए विद्या अविद्या दोनों आवश्यक हैं।

(विनोवा भावे)

तृतीय अध्याय

गीता का शिक्षा दर्शन एवं उसकी विवेचना

प्राचीन काल में हमारी शिक्षा का मूल आधार हमारा दर्शन ही रहा है। तत्कालीन दार्शनिक चिन्तन ने उस समय के समाज की उपेक्षा नहीं की थी। शिक्षा का प्रारूप तत्कालीन समाज की मांगों के अनुसार संशोधित एवं परिवर्तित होता रहा है। इस प्रकार उस समय शिक्षा के स्वरूप को निश्चित करने के दो ही आधार थे – 'एक धर्म समन्वित दर्शन और दूसरा समाज'। कालान्तर में शिक्षा में राज्यतन्त्र और अर्थतन्त्र के प्रभाव से परिवर्तन एवं संशोधन किये गये।

शिक्षा का कार्य जनमानस को ज्ञानवान बनाना था; इसलिए ज्ञान की सर्वप्रथम ज्योति भारत में प्रज्वलित हुई थी। हमने देखा है कि हमारे मनीषियों ने शिक्षा के विषय में भी बहुत चिन्तन मनन कर एक सुनिश्चित प्रारूप प्रतिपादित किया गया। वेदों पर आधारित समस्त दर्शनों में ज्ञान के स्वरूप और ज्ञान प्राप्त करने के साध नों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया। हमारे षट्दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त और मीमांसा) का मनोविज्ञान तो आज भी पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती है। भारत दर्शन की गुरूस्थली माना जाता है।

दर्शन मनुष्य के चिन्तन की उच्चतम सीमा है। दर्शन में सम्पूर्ण बह्माण्ड एवं मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, सृष्टि–सृष्टा, आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत, ज्ञान–अज्ञान, का ज्ञान प्राप्त करने के साधन और मनुष्य के करणीय तथ अकरणीय कर्मों का तार्किक विवेचन किया गया है। ज्ञान की उस शाखा को जिसमें अन्तिम सत्य की खोज की जाती है, उसे हमने दर्शन शास्त्र की संज्ञा दी है। उपनिषद् काल में दर्शन को इसी रूप मं स्वीकार किया गया था।

'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात जिससे देखा जाए अर्थात सत्य के दर्शन

किये जाए वहीं दर्शन है। दर्शन और शिक्षा में अटूट सम्बन्ध है। ये एक दूसरे पर आश्रित है। दर्शन इस ब्रह्माण्ड और उसमें रहने वाले मानव जीवन की व्याख्या करता है। इसमें मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्देश्य और उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधन मार्गों पर भी विचार किया जाता है। अब ये उद्देश्य कैसे प्राप्त किये जाँय, इस सम्बन्ध में शिक्षा हमारी सहायता करती है। शिक्षा हमारे आचार–विचार में परिवर्तन जाती है और हमें नये ज्ञान की खोज करने के लिए हमारी अवलोकन, परीक्षण, चिन्तन और मनन करने वाली शक्तियों का विकास करती है। इस ज्ञान एवं कौशल के आधार पर हम दर्शन का पुननिर्माण करते हैं। नया दर्शन, नई शिक्षा को जन्म देता है और नयी शिक्षा, नये दर्शन को जन्म देती है। इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। शिक्षा मनुष्य के विकास की आधारशिला है। उचित शिक्षा के अभाव में मनुष्य विकास नहीं कर सकता है। जब तक मनुष्य की अन्तर्दृष्टि सचेष्ट नहीं होती है, तब तक वह कोई कार्य उचित रूप से नहीं कर सकता है। सभी दर्शन श्रीमद् भगवद् गीता के अन्तर्गत है, परन्तु यह किसी दर्शन के अन्तर्गत नहीं है।

गीता प्रत्यक्ष का अनुभव कराती है। दो विरोधी धर्मों की उलझन में फंस जाने के कारण अर्जुन जिस तरह कि कर्तव्यविमूढ़ हो गया था, यह कोई अपूर्व घटना नहीं है। समाज में रहकर सांसारिक कर्तव्यों का पालन, धर्म तथा नीतिपूर्वक जिन कर्मठ पुरूषों को करना पड़ता है, उन पर ऐसी आपत्तियाँ अनेक बार आया करती हैं। यही कारण है कि युद्ध के आरम्भ में ही अर्जुन पर कर्तव्य–जिज्ञासा (वह क्या करैं) तथा मोह व भ्रम हो गया था। युधिष्ठिर भी अपने मृत रिश्तेदारों में श्राद्ध काल में मोह ग्रस्त हुये थे। इस कर्म–अकर्म संशय के ऐसे अनेक प्रसंग हमें देखने को मिलते हैं। "जैसे प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के 'हैमलैट' के राजकुमार के मन में यह संघर्ष पैदा हुआ (What to do and not to do, that is question)1 कि ऐसे पापी चाचा का वध करके पुत्र धर्म के अनुसार अपने पिता के ऋण से मुक्त हो जाऊँ अथवा अपने

सगे चाचा, अपनी माता के पति और गद्दी पर बैठे हुए राजा पर दया करूँ। इस मोह में पड़े हुये कोमल हैमलेट का मार्ग दर्शन करने के लिए श्री कृष्ण जैसे गुरू, मागदर्शक और हितकर्ता के न होने के कारण वह पागल हो गया।"

कहने का तात्पर्य यह है कि इस संसार में कठिनाइयों में पड़े हुये अनेक शिष्यों का मार्गदर्शन करने के लिए सम्भवः समर्थ गुरू का अमाद हो गया है तथा वर्तमान काल में श्री कृष्ण जैसा मार्गदर्शक, पथ प्रदर्शक, शिक्षक मिलना अति कठिन है।

श्रीमद् भगवद् गीता की शिक्षायें हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को संस्पर्श ही नहीं करती है; बल्कि उनका मार्गदर्शन करती है। यह हमें उपदेशित करती है कि इन्द्रियों को वश में रखकर कर्म करने वाला कर्मठ व्यक्ति श्रेष्ठ होता है। जीवन में कर्म का विशेष महत्व है। कर्म ही आन्तरिक चेतना का कारक है।

''यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यायभतेऽर्जुन ।

कर्मेन्द्रियेः कर्मयोगमसक्तः सविशिष्यते ।। 2

इसी प्रकार 12वें अध्याय के 11वें श्लोक में भी यही बात आयी है कि कर्मयोगी के लिए इन्द्रियों को वश में करना आवश्यक है।

''सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरू यतात्मवान्'' ।।3

ज्ञानयोगी और कर्मयोगी दोनों ही इन्द्रिय निग्रह कर फलेच्छा और आसक्ति का त्याग कर कर्म करते है। वास्तव में कर्मो के त्याग करने की आवश्कयता नहीं है। प्रत्युक्त आसक्ति रहित होकर कर्म करने की ही आवश्यकता है।

अतः श्रीमद् भगवद् गीता हमें शिक्षा प्रदान करती है कि सम्पूर्ण कर्तव्यों में आलस्य और फल की इच्छा का सर्वथा त्याग करना ही श्रेष्ठ है। इसके अलावा, चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अमक्ष्य–भोजन और प्रमाद

आदि शास्त्र विरूद्ध नीच कर्मो का मन, वाणी और शरीर से किसी भी प्रकार न करने की शिक्षा प्रदान करती है। यथा –

''बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।

शब्दा दीन्विषयांस्त्यक्त्वा राग द्वेषौ व्युदस्य च ।।

विविक्तसेवी लहवाशी यतवाक्कायमानसः।

ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।

अहकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम ।

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 4

अर्थात् विशुद्ध बुद्धि वाला, सात्विक और नियमित भोजन करने वाला, इन्द्रियों आदि का संयम करने वाला तथा निरन्तर ध्यानयोग परायण पुरूष मोक्ष प्राप्ति के योग्य होता है।

जयदयाल गोयन्दका जी ने भी इसी तथ्य की व्याख्या अपनी तत्वविवेचनीहि ही थी अीका में की है। इसी भाव को बृहदारण्यक में इसी प्रकार अभिव्यक्त किया गया है जिसका हिन्दी रूपान्तर भी किया गया है –

"इन सबका त्याग करके पूर्वोक्त प्रकार से सात्विक धृति के द्वारा मन–इन्द्रियों की क्रियाओं को रोककर नित्य निरन्तर सच्चिदानन्द घन बह्म का अभिन्न भाव से चिन्तन करना तथा उठते –बैठते, सोते–जागते एवं शौच–स्नान एवं खान–पान आदि आवश्यक क्रिया करते समय भी परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करते रहना व परम कर्तव्य समझना ध्यानयोग के परायण होना ही है।"5

ऐसा व्यक्ति अहं ब्रह्मास्मि – "मैं ब्रह्म हूँ" 'सोऽहमस्मि' इन महावाक्यों के अनुपालन में तत्पर रहता है। हमने देखा है कि श्रीमद् भगवद् गीता ने हमे

स्थान–स्थान पर बताया है कि कर्मों में आसक्ति और फलेच्छा ही संसार में बन्धन का कारण है। आसक्ति और फलेच्छा न रहने से कर्मफल त्यागी पुरूष सुगमतापूर्वक संसार–बन्धन से मुक्त हो जाता है। यही कर्मयोग का मूल महामन्त्र है जिसके कारण यह सब साधनों से विलक्षण हो जाता है; इसलिये तो कहा गया है कि 'कर्मयोगों विशिष्यते' ।6

श्रीमद् भगवद् गीता में फलासक्ति के त्याग पर जितना जोर दिया गया है, उतना और किसी साधन पर नहीं। श्री कृष्ण के मतानुसार त्याग वही है, जिसमें निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन हो और फलों में किसी प्रकार की आसक्ति न हो, विहित कर्म करने के भाव का घटित होना तभी सम्भव होता है, जब व्यक्ति यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि उसे किसी परिस्थिति में मन, वाणी अथवाक्रिया से चोरी, झूठ, व्यभिचार, हिंसा, छल, कपट, अभक्ष्य–भक्षण आदि कोई शास्त्र विरूद्ध कर्म नहीं करने हैं।

किसी कार्य की सुगमता या कठिनता व्यक्ति की 'रूचि'और रूझान व उद्देश्य पर निर्भर करता है; जैसे–भूख सबकी एक जैसी ही होती है और भोजन करने पर तृप्ति का अनुभव भी सबको एक ही जैसा होता है; परन्तु भोजन की रूचि सबकी भिन्न–भिन्न होने के कारण भोज्य पदार्थ भी भिन्न–भिन्न होते हैं। इसी तरह व्यक्तियों की रूचि, विश्वास और योग्यता के अनुसार कार्य भी भिन्न–भिन्न होते हैं, इसी प्रकार श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार प्रयोग करने चाहिए जबकि विद्यार्थी की रूचि, विश्वास, योग्यता के अनुसार साधन तथा तरीके भिन्न–भिन्न होते हैं परन्तु विद्या द्वारा ज्ञान अर्जन की भूख सभी में समान ही होती है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसे श्री मद्भगवद् गीता द्वारा शिक्षा जगत में संलग्न प्राणियों के लिए अनुसरणीय है, और आगे शिक्षा के क्षेत्र में इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की अन देखी नहीं की जा रही है।

अविधा के मूल में है अज्ञान तथा अज्ञान के मूल में है आसक्ति। देहासक्ति के कारण ही मनुष्य में विषयों की अनेकानेक कामनाएं उत्पन्न होती हैं जिनकी पूर्ति में ही वह अपनी इति कर्तव्यता समझने लगता है।

इस आसक्ति का कारण 'अहंता' अर्थात 'मैं व ममता है, अहंता और ममता के कारण ही मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन–दौलत, मकान, जमीन, जायदाद, कुटुम्ब, मान–बढ़ाई तथा पद–प्रतिष्ठा की उपलबिध हेतु जीवन भर मारा–मारा फिरता है। मोहासक्ति (राग–द्वेष) की जड़ में मनुष्य की अविद्या (अज्ञान) ही तो निहित है, योगदर्शन में स्पष्टतः बतलाया गया है–

अविधास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ।

अविधाक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।।7

अर्थात अविद्या ही असंख्य कामनाओं की जननी है। कामनाओं की पूर्ति में बाध ा पड़ने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है। यही क्रोध अन्ततोगत्वा मनुष्य के पतन का द्वार खोल देता है। मनुष्य के पतन के क्रमिक सोंपानों का गीता में बड़ा मार्मिक निरूपण करते हुये कहा गया है–

ध्यायतो विषयान्पुसः सग्ङ्स्तेषूपजायते।

सग्ङात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 8

अर्थात विषयों आदि का चिन्तन करने वाले मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है और अन्त में उस का नाश हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को अविधा (अज्ञान) के सर्वषा

त्याग का सतत प्रयत्न करना चाहिए। अविधा को त्याग कर मनुष्य नित्य–निरन्तर विद्या (तत्वज्ञान) की प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होना चाहिये। यथार्थ ज्ञानार्जन के लिए तीन गुण परमावश्यक है – श्रद्धा, संयम तथा समर्पण । इन तीनों गुणों में भी श्रद्धा सर्वोपरि है। श्रद्धा की महत्ता बताते हुए श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है।

श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शन्तिमचिरेणाधिगच्छति।। 9

ऐसे ही श्रद्धावान्, तत्वज्ञानी, सत्पुरूषों को बुद्धियोग प्राप्त होता है। इसी प्रकार बुद्धियोग पर प्रकार डालते हुए श्रीमद् भगवद् गीता का कथन है कि–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयन्ति ते।। 10

अतएव सर्वोत्कृष्ट विद्या (तत्वज्ञान) की उपलब्धि हेतु मनुष्य को स्वाध्यायरूप ज्ञान–यज्ञ करना चाहिये। जैसा श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है – "स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्चयतयः संशितव्रतः।"11 अर्थात व्यक्ति इसी से पूजित होते हैं जैसा कि श्रीमद् भगवद् गीता में आगे कहा गया है कि "ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिण्टः स्यामिति में मतिः" ।12 मानव जीवन में विद्या व शिक्षा की व्यावहारिक उपादेयता का निरूपण हमारे नीतिग्रन्थ में अनेक स्थानों पर किया गया है। यथा–

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।

पात्रत्वाद्धनमान्पोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ।। 13

कठोपनिषद के वैदिक उद्बोधन में मानवमात्र को सचेष्ट, क्रियाशील, कर्तव्य परायण व आत्म–साक्षात्कार –हेतु सावधान करते हुय कहा गया है कि –

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वएन्निवोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग

पथस्तत्कवयो वदन्ति '' ।।14

उठो, जागो तथा श्रेष्ठ पुरूषों के पास जाकर तत्वज्ञान प्राप्त करो, क्योंकि ज्ञानी जन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश अत्यन्त कठिन मानते है।

ऐसे भक्त ईश्वर को सुहृद होते हैं अपने प्रिय भक्त श्रेष्ठ मनुष्य के लक्षण बताते हुए श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है कि–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एवं च ।

निर्ममो निरहंकार समदुःखसुःखः समी ।।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चय ।

मथ्यर्पित मनाबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।15

हमें सभी प्राणियों के लिए मित्रभाव, प्रेम, तथा हेतु रहित दयालुता धारण करनी चाहिए। ममता से रहित, अहंकार से शून्य, सुख–दुःखों की प्राप्ति में सम, सहनशील, निरन्तर सन्तुष्ट, मन इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए ईश्वर में दृढ़निश्चयवाला है – तभी हम उस प्रभु को प्रिय होंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाहे कोई कितना ही किसी प्रकार का प्रतिकूल व्यवहार करे – इष्ट की प्राप्ति में बाधा डाले, किसी प्रकार की आर्थिक और शारीरिक हानि पहुँचायें, किनतु भक्त के हृदय में उसके प्रति कभी किच्चिनमात्र भी द्वेष नहीं होता; क्योंकि वह सभी प्राणियों में एक ही सत्ता को व्याप्त देखता है, ऐसी स्थिति में वह विरोध करे तो किससे करे – इसी भाव को तुलसीदास ने इस प्रकार कहा है–

निज प्रभुमय देखहि जगत केहि सन करहि विरोध ।।16

इसी प्रकार श्री कृष्ण ने आगे कहा है कि प्राणिमात्र स्वरूप से भगवान का ही अंश है। अतः किसी भी प्राणी के प्रति थोड़ा भी द्वेष भाव रखना भगवान के प्रति ही द्वेष रखना है। इसलिए अन्तःकरण में प्राणिमात्र के प्रति केवल द्वेष का अभाव ही नहीं होना चाहिए बल्कि उसे मैत्री और दया का व्यवहार भी धारण करना चाहिए। श्री मद्भागवत में कहा गया है 'सुहृदः सर्वदेहिनाम्।''17 इसलिए हमें सभी प्राणियों के प्रति बिना किसी स्वार्थ के स्वाभाविक मैत्री और दया का भाव रखना चाहिए – मानस में इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

हेतु रहित जग जुग उपकारी।

तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।18

गीता की भांति पतंजलियोग दर्शन में भी मन की शुद्धि के चार हेतु बताये गये है।

''मैत्रीकरूणा मुदितोपेक्षाणं सुखदुःखपुण्यापण्यविषयाणां

भावनातश्चित्त प्रसादनम् ।।''19

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा श्री मद्भगवद् गीता से प्राप्त होती है कि हमें सुख दुख में समभावकरण होना चाहिए। स्वयं नित्य होने के कारण मानव जीव को नित्य परमात्मा की अनुभूति से ही वास्तविक और स्थायी संतोष प्राप्त करना चाहिए जैसे कि गीता में कहा गया है कि

''सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।

सर्कराकण्टकादिभ्यो मथोपानत्पदः शिवम ।।''20

पैरों में जूते पहनकर चलने वाले को कंकड़ और कांटों से कोई भय नहीं होता, उसी प्रकार जिसके मन में संतोष है, उसके लिए सर्वदा सब जगह सुख ही सुख है, दुःख है ही नहीं। संत कबीर दास जी कहते है।

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान ।

जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान ।। 21

गीता हमें दृढ़ निश्चयी बनाने की प्रेरणा देती है। यही वास्तव में लॉकिक एवं पारलौकिक दोनों की उन्नति का कारण है। हमें अपने कार्य में मन बुद्धि को लगाना श्रेयस्कर है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रेम का बहुत महत्व है। बालक प्रेम से ही अध्ययनरत होता है अतः जहाँ प्रेमहोता है वहाँ स्वाभाविक ही मनुष्य का मन लगता है।

'पुरूष नंपुसक नारि व जींव चराचर कोई ।

सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।। 22

कहा गया है कि 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तषैव भजाम्यहम् ।'23 इसमें यह स्पष्ट है कि भक्त जिस भाव से, जिस सम्बन्ध से, जिस प्रकार से शरण लेता है, प्रभु भी उसे उसी भाव से, उसी सम्बन्ध से, उसी प्रकार से आश्रय देते है।

इससे सिद्ध होता है कि शिक्षार्थी जिस भाव व भावना से अपने शिक्षक से सम्बन्ध स्थापित करता है उसी भाव से शिक्षक भी उसे मान्यता देता है।

"एक बानि करूनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आनकी।।"24 वास्तव में यही भाव आत्म–निर्भर व स्वावलम्बन का है। गीता परोक्ष रूप से व्यक्ति को स्वावलम्बी व आत्म निर्भर बनाने पर बल देती है। गीता की इस शिक्षा को व्यक्ति अपने जीवन में उतार कर अपना जीवन श्रेष्ठ बना सकता है। जिस प्रकार भक्त और भगवान का सम्बन्ध होता है वैसे ही गुरू और शिष्य का सम्बन्ध होता है। शिष्य गुरू के प्रति जब समर्पित भाव रखता है तभी वह श्रेष्ठ शिक्षा पाने का अधिकारी होता है। श्रीमद् भगवद् गीता न केवल मानव जीवन के गूढ़ात्मक, बल्कि रहस्यात्मक तथ्य का भी विवेचन करती है। यह जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, जैसे बाल्यावस्था,

किशोरावस्था, युवावस्था, प्रोंढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था तथा विभिन्न पहलूओं को भी यथा, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक तथा सामाजिक पहलूओं को संस्पर्श करती है। यह जीवन को उन्नयन बनाने में सार्थक भूमिका का निर्वहन करती है। श्रीमद् भगवद् गीता में सामाजिक जीवन को आसान बनाने के लिए वर्ण व्यवस्था पर जोर दिया गया है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार सतोगुण, रजोगुण, तथा तमोगुण की प्रधानता व अप्रधानता वर्ण विभाजन का मूल आधार है।

शमो दमस्तपः शौचं शान्ति रार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभाव जम् ।।

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।

कृषि गौरस्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।

परिचयात्मकं कर्म शुद्रस्यापि स्वभावजम् ।।25

यहाँ विभिन्न वर्णो के कार्य की विवेचना की गई है। ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म मन व इन्द्रियों को वश में करना, धर्म के लिए कष्ट सहना, शुद्ध रहना, दूसरों के अपराध को क्षमा करना, सरल बनना, परमात्मा वेद आदि में आस्तिक भाव रखना बताये गये हैं। क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म शूर, वीरता, तेज, धैर्य, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना, और शासन करने का भाव है। खेती करना, गायों की रक्षा करना और व्यापार करना, वैश्य के तथा सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

श्री मद् भगवद् गीता के चौथे अध्याय में कहा गया है कि चारो वर्णो की रचना गुणों तथा कर्मों के अनुसार की गयी है।

'चातुर्षण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ।26

इससे सिद्ध होता है कि गीता, जन्म से जाति की उत्पत्ति मानती है, जो मनुष्य जिस वर्ण के माता–पिता से उत्पन्न हुआ है, उसी से उसकी जाति निर्धारित की जाती है। 'जाति' शब्द ही 'जनी प्रादुर्भावे धातु' से बनता है जो जन्म से जाति को सिद्ध करता है। कर्म से तो 'कृति' शब्द होता है जो 'डुकृञ् करणे' धातु से बनता है; किन्तु जाति की पूर्ण रक्षा उसके कर्तव्य कर्म करने से होती है।

चारो वर्णों में गुणों के अनुसार उस–उस वर्ण के वे–वे कर्म स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जाते हैं और दूसरे कर्म गौण हो जाते है जैसे ब्राह्मण में सत्वगुण की प्रधानता होने से उसमें शम दम, आदि कर्म (गुण) स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाते है और जीविका के कार्य गौण हो जाते हैं परन्तु वर्ण संकरता के कारण उन गुणों की स्वाभाविकता में कमी आ जाती है। स्वभाव बनने में पहले जन्म मुख्य है, फिर जन्म के बाद संग मुख्य है। संग, स्वाध्याय, अभ्यास आदि के कारण स्वभाव बदल जाता है। क्षत्रिय राजपूत बड़े शूरवीर और तेजस्वी होते हैं परन्तु इन शूरवीरों ने ईर्ष्या दोष के कारण अपने अधीन रहने वाले राजपूतों का उत्साह कम करने की चेष्टा की और उनकी उन्नति नहीं होने दी।

इस प्रकार क्षत्रियों में ईर्ष्या, आपसी फूट तथा उत्साह में कमी होने से विधर्मी लोग भारत पर अपना अधिकार करने में समर्थ हो सके।

गीता की वर्ण व्यवस्था में एक प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है कि जाति जन्म से मानी जाये या कर्म से। उच्च एवं निम्न योनियों में गुण और कर्म के अनुसार ही मनुष्य का जन्म होता है अतः मनुष्य की जाति जन्म से ही निर्धारित होती है।

अतः जिसका उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति का है, वह भगवतसम्बन्धी कार्यों को मुख्यता से करते हुए भी वर्ण आश्रम के अनुसार अपने कर्तव्य कर्मों को पूजन बुद्धि से केवल भगवतप्रीत्यर्थ ही करता हे इससे यह सिद्ध होता है कि आपस के व्यावहार

में तो 'जन्म की प्रधानता है और परमात्मा की प्राप्ति में भाव, विवेक और कर्म की प्रधानता है, वर्णों के जो लक्षण बताये गये हैं वे जिन–जिन वर्णों में प्राप्त हो वे उसी वर्ण के माने जायेंगे। अभिप्राय यह है कि जो ब्राह्मण ब्राह्मणोचित कर्मों से रहित है, उसे ब्राह्मण नहीं मानना चाहिये।

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।

न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ।।

चत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।

यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ।।27

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि यहाँ कर्मों की प्रधानता ली गयी है, ज़न्म की नहीं। शास्त्रों में जो ऐसे उदाहरण प्राप्त होते है। उनका तात्पर्य है कि कोई भी नीच वर्णवाला साधारण से साधारण मनुष्य अपनी पारमार्थिक उन्नति कर सकता है, यह संदेह रहित तथ्य है। खान–पान व आचरण से भ्रष्ट ब्राह्मणों का वचनमात्र से भी आदर नहीं करना चाहिए – ऐसा हमारी स्मृति कहती है –

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडाल व्रतिकाच्छठान्।

हैतुकान्वकवृत्तीश्च वाडमात्रेणपि नार्चयेत ।28

श्रेष्ठ आचरण वाले ब्राह्मणों की भागवत आदि पुराणों, महाभारत तथा रामायण आदि इतिहास ग्रन्थों में बहुत महिमा गामी गई है। उक्त आचरण का व्यक्ति चाहे कितनी भी नीची जाति का क्यों न हो वह आचरणहीन, विद्वान ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। जैसा कि पद्मपुराण में कहा गया है–

चाण्डालोऽपि मुनेः श्रेष्ठो विष्णु भक्ति परायणः ।

विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचोऽधमः ।।29

श्री मद्भगवद् गीता के अनुसार मुख्य कार्य पढ़ाना, अच्छी शिक्षा देना और उक्त उपदेश प्रदान करना है, हाथ का कार्य है, देश की शत्रुओं से रक्षा करना। राष्ट्र की संस्कृति के दोष में वृद्धि करना है। पेट में अन्न, जल, औषधि आदि डालने के कारण शरीर के सम्पूर्ण अवयवों को खुराक मिलती है और सभी अवयव पुष्ट होते है, यही हमारे उदर का कार्य है। शरीर की क्रिया शीलता, परिश्रम करना, संचरण करना, चरण का कार्य है। चरण हमारी सम्पूर्ण शरीर को वहनघर हमें क्रियाशील बनाये रखती है इसी तरह आम व्यक्ति की इन्हीं भावनाओं को वर्ण विभाजन द्वारा प्रकट किया गया है अतः यह वर्ण– विभाजन प्रशंसनीय है।

आज जिस समुदाय में जातिगत, कुलपरम्परागत, समाजगत और व्यतिगत जो भी शास्त्र–विपरीत दोष आये हैं उनको अपने विवेक–विचार, सत्संग स्वाध्याय आदि के द्वारा दूर कर अपने में स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता लाना है। जिससे मनुष्यजन्म का ध्येय सिद्ध हो सके।

इस प्रकार गीता सामाजिक जीवन की ही शिक्षा नहीं देती है अपितु मनुष्य के धार्मिक एवं नैतिक जीवन को भी संस्पर्श करती है। हमारे जीवन को उन्नयन बनाने के लिए कुछ यम–नियमादि बताये गये है। श्री मद्भगवद् गीता में भी इन्हीं नियमों के पालन पर बल दिया गया है। ये तत्व हमारे वैदिक शिक्षा में ही नहीं किन्तु अन्य सभी शिक्षा में इसे प्रधान माना गया हे। यथा कहा गया है कि "अहिंसा सत्यास्तेव ब्रह्मचर्या परिग्रहायमाः।"

योग में अष्टांग मार्गो में यम का स्थान प्रथम है। योग की प्राप्ति के लिए प्रथम सोपान 'यम' है। यम के अन्तर्गत–अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रहम्मचर्य और अपरिग्रह के भाव को समाहित किया गया है श्री मद्भगवद् गीता हमें उपर्युक्त गुणों को प्राप्त करने के लिए उपदेशित करती है। मन, वचन, कर्म से अहिंसक बनाना, हिंसा को

धारण न करना, अहिंसक बन कर ही इन यम की प्रक्रिया में हम आगे बढ़ सकते हैं।

श्री मद्भगवद् गीता ही नहीं यहाँ तक कि समस्त वाडमय सत्य की प्राप्ति एवं उसे जीवन में अंगीकार करने की शिक्षा देते हैं। हमें सत्य के आचरण करने के निर्देश दिये जाते है।'' तुलसीदास ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'नहिअसत्य सम पातक पुंजा।'' जिस कार्य से आपकी आत्मा आपको स्वयं धिक्कारने लगे, उससे बड़ा घृणित कार्य कुछ भी नहीं हो सकता, सत्य के आचरण से आत्म बल में वृद्धि होती है। चाणक्य के अनुसार 'सत्य से पृथ्वी टिकी है सत्य से ही सूर्य प्रकाशित होता है' सत्य से ही वायु बहती है यहाँ तक कि 'सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम्''।

अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना, यह यम का तीसरा अंग है। चोरी करने वाला एवं चोर को प्रेरणा देने वाले दोनों इस कार्य के समान फल प्राप्त करने वाले होते हैं। चोरी करने वाले के समस्त पुण्य नष्ट हो जाते है। रावण जो सर्व सम्पदा से सुसम्पन्न था, वह जब चोरी करने के लिए माता सीता के पास गया तो उसने पहला काम स्वरूप चोरी का किया अर्थात साधु वेषधारी बना, दूसरा असत्य, छलयुक्त व्यावहार किया, इस प्रकार अनेक असत्य आचरण से वह अधोगामी हो गया।

ब्रह्मचर्य को यम का चौथा अंग बताया गया है। मानव जीवन को चार अवस्थाओं में बाँटा गया है–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। ब्रह्मचर्य के पालन पर सभी ने बल दिया है ब्रह्मचर्य का सीधा अर्थ है – आचरण गृहस्थ धर्म का पालन एक प्रकार से योगाभ्यास है क्योंकि इसमें सदा सत्य का पालन करना पड़ता है।

मनुष्य के लिए योग कोई नया शब्द नहीं है। राजयोग, ध्यानयोग, लय योग,

नाद योग जैसे योगों में गृहस्थ लेता योग की भी भूमिर्का महत्वपूर्ण है। इसमें सेवा, प्रेम, सहायता, त्याग, उदारता आदि की प्रधानता होती है इसीलिए श्रीमद् भगवद् गीता हमें ज्ञान योग, कर्मयोग, राजयोग भक्तियोग तथा लययोग व ध्यानयोग की शिक्षा प्रदान करने क साथ–साथ जीवन के चारो आश्रमों में विहित कर्मों को करने के निर्देश भी प्रदान करती है; क्योंकि इसी से समाज, मानव समुदाय, राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय स्तर के सभी स्थलों पर अमन चमन का साम्राज्य फैल सकता है। वास्तव में यही गीता की शिक्षा का सार है। गीता हमें शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास के लिए उचित मार्ग दर्शन प्रदान करती है; यही तो शिक्षा के प्रमख उद्देश्य हैं। हम जानते हैं कि सत्य से ही आकाश, पृथ्वी वायु आदि पंचमहाभूत स्थिर है। मनुष्यों के सम्पूर्ण व्यवहार वाणी से हुआ करते हैं। विचार विनिमय के लिए शब्द के समान अन्य काई महत्वपूर्ण साधन नहीं है परन्तु मनुष्य गृहित शब्दों के प्रयास से उसे मलिन कर डालता है वह सत्य की पूंजी की चोरी करता है; इसलिए मनु ने कहा है कि,

''सत्यपूतां वदेद्वाच।''30 जो सत्य से पवित्र किया हो वही बोला जाय। जब वाणों की शय्या पर पड़े भीष्म पितामह ने शान्ति और अनुशासन पर्वो में युधिष्ठिर को सब धर्मों क सार रूप सत्य का उपदेश अर्थात देते हुये कहते हैं ''सत्येषु वर्तितव्यं वः सत्यं हि परमं बलं।''31 इस वचन उन्होंने सत्य के अनुसर वर्ताब करने के लिए सब लोगों को उपदेश दिया है। बौद्ध और ईसाई तथा अन्य धर्म भी इन्हीं नियमों का उपदेश देते हैं।

शान्ति पर्व में नारद जी शुक जी से कहते है कि–

'सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् ।

यद्भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम ।।''32

'सच बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य से भी अधिक अच्छा ऐसा बोलना है, जिससे सब प्राणियों का हित हो। वही हमारे मत में सत्य है।'

सत्य प्रतिज्ञ युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से 'नरो वा कुंजरो वा' उपर्युक्त प्रमाण के आधार पर ही कहा था। ऐसे ही और बातों में भी यही नियम लगाया जाता है। ग्रीन नामक एक अंग्रेज ग्रंथकार ने अपने 'नीतिशास्त्र का उपोद्घात' नामक ग्रन्थ में लिखा है, कि ऐसे अवसरों पर नीतिशास्त्र मूक हो जाते हैं।

"इसी नियम के अनुसार सिजविक नाम के पंडित ने यह निर्णय किया था कि छोटे लड़कों को, पागलों को और इसी प्रकार बीमार आदमियों को (यदि सच बात सुना देने से उसके स्वास्थ्य के बिगड़ जाने का भय हो), तथा शत्रुओं को, चोरों को जो अन्याय पूर्ण प्रश्न करें तो उन्हें झूठ उत्तर देना अनुचित नहीं है। इसी कारण वकीलों को अपने व्यवसाय में, झूठ बोलना अनुचित नहीं है।"33

अस्तेय के सम्बन्ध में यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि न्यायपूर्वक प्राप्त किसी की सम्पत्ति को चुरा ले जाने या लूट लेने की स्वतन्त्रता यदि दूसरों को मिल जाय, तो समाज की रचना बिगड़ जायेगी, चारों तरफ अव्यवस्था हो जायेगी और सभी की हानि होगी। अतः ईमानदारी से जीविकोपार्जन करना श्रेयस्कर है। दुर्भिक्ष के समय अनाज के अभाव में यदि कोई मनुष्य चोरी करके आत्मरक्षा करता है तो वह पाप नहीं है क्योंकि 'मरने से जिंदा रहना श्रेयस्कर है।' मृत्यु तो सत्य है आज नहीं तो कल, अन्त में सौ वर्ष के बाद भी मरना जरूरी है, तो रोने या डरने से क्या लाभ। श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है कि–

जातस्य हिं ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

तस्मादपरिहार्येऽर्थो न त्वं शोचितुमर्हसि ।। 34

जन्म व मृत्यु निश्चित है, इसलिए इस अपरिहार्य बात के सम्बन्ध में शोक करना

उचित नहीं

इस प्रकार अहिंसा, सत्य और अस्तेय के साथ इन्द्रिय निग्रह की भी गणना सामान्य धर्म के रूप में की जाती है। काम, क्रोध लोभ आदि मनुष्य के शत्रु है। इसलिए जब तक मनुष्य इनको जीत नहीं लेगा, तब तक उसका या समाज का कल्याण नहीं होगा। यह शिक्षा सब शास्त्रों ने प्रदान की है। विदुरनीति और श्रीमद् भगवद् गीता में भी कहा गया है –

त्रिविधिं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन :।

कामःक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ।। 35

"काम, क्रोध और लोभ ये तीनों अवनति के द्वार है, इसलिए इसे हमें बचना चाहिए।" श्रीमद् भगवद् गीता में श्री कृष्ण कहते हैं–

"धर्माऽविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ।" 36

हे अर्जुन । प्राणिमात्र में धर्म के अनुकूल जो काम है वही उत्कर्ष है। उत्कर्ष ही प्रभु है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि जो काम धर्म के विरूद्ध है वही पतन का द्वार है। काम और क्रोध मनुष्य के शत्रु उस समय है मनण्य उनके वश में हो जाय।

वास्तव में जिस मनुष्य को अन्याय पर क्रोध आता है, जिसे अपमान सहन न हो वहीं पुरूष कहलाता है। जिस मनुष्य में क्रोध नहीं है, वह नपुंसक के ही समान है। इस जगत के व्यवहार के लिए काम क्रोध व क्षमा में समरक्षता होनी चाहिए।

इस प्रकार शूरता, धैर्य, दया, शील, मित्रता, समता आदि सब सद्गुण अपने अपने विरूद्ध गुणों के अतिरिक्त देश–काल आदि से मर्यादित है। क्योंकि भर्तृहरि जीने इस सम्बन्ध में लिखा है–

'विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधिविक्रमः।37

अर्थात संकट के समय धैर्य, अभ्युदय के समय (अर्थात् जब शासन करने की सामर्थ्य हो तब) क्षमा, सभा से में बोलने की चतुरता और युद्ध में शूरता शोभा देती है।

इस प्रकार गीता की शिक्षा कोई विद्यालयी शिक्षा की तरह नही है; बल्कि किं कर्तव्यविमूढ हुए अर्जुन (शिष्य) को गुरू की तरह श्री कृष्ण जी शिक्षा प्रदान कर उचित मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस ग्रन्थ के दर्शन में कर्तव्य का पालन करते हुए शिक्षा की आवधारणा को परिपुष्ट किया गया है। यह जीवन के प्रत्येक पहलू सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक एवं आर्थिक, तथा बचपन से युवावस्था तथा वृद्धावस्था को संस्पर्श करता हुआ जीवन को उन्नत बनाने में सार्थक भूमिका का निर्वहन करता है।

<u>श्रीमद् भगवद् गीता की शिक्षा की विवेचना :-</u> संसार को 'धर्म क्षेत्र' और 'कर्म क्षेत्र' कहा गया है जहाँ प्राणी अपनी सुरक्षा एवं सुस्थिति के लिए संघर्ष करता है और आगे बढ़ता है। इसका साक्षात् उदाहरण हमें गीता या कर्मयोग शास्त्र के प्रथम श्लोक में मिलता है जिसे धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा – "धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः मामकाः पाण्डवाश्च किमकुर्वत् संजयः।"38 धर्मक्षेत्र में ही कर्तव्य पालन के लिए अवसर मिलता है और मानव उस अवसर का उपयोग करता है; ताकि वह अपने धर्म, कर्तव्य, कर्म और क्रिया में सफल हो। इस सफलता के लिए सभी प्राणी को जन्म लेने के बाद से ही प्रयत्न करना पड़ता है, अपनी परिस्थिति के अनुकूल कर्म करना पड़ता है। इस प्रकार के कर्म के लिए मानव और मानवेत्तर प्राणी को 'सीखना' पड़ता है अथवा शिक्षा लेनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप उसे ज्ञान–अनुभव मिलता है। वह उसे संचित करता है। अपने आपके लिए तथा अपने आगे आने वाली सन्तानों के लिए तथा समूहों के लिए जिनके साथ वह रहता है । यह विशेषता मनुष्य के साथ खासकर पायी जाती है। अतएव 'शिक्षा' मनुष्य के लिए ही होती है।

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यावहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। यह कार्य मनुष्य के जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। बच्चे के जन्म के कुछ दिन बाद ही उसके माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य उसे सुनना और बोलना सिखाने लगते है। जब बच्चा कुछ बड़ा होता है तो उसे उठने–बैठने, चलने–फिरने, खाने–पीने तथा सामाजिक आचरण की विधियाँ सिखायी जाने लगती है। तीन चार वर्ष पश्चात् उसे विद्यालय भेजना प्रारम्भ किया जाता है। विद्यालय में उसकी शिक्षा बड़े सुनियोजित ढंग से चलती है। विद्यालय के साथ–साथ उसे परिवार एवं समुदाय में भी कुछ न कुछ सिखाया जाता रहता है। सीखने सिखाने का यह क्रम विद्यालय छोड़ने के बाद भी चलता रहता और जीवन भर चलता है और विस्तृत रूप में देखें तो किसी समाज में शिक्षा की यह प्रक्रिया सदैव चलती रहती हैअपने वास्तविक अर्थ में किसी समाज में सदैव चलने वाली सीखने–सिखाने की यह सप्रयोजन प्रक्रिया ही शिक्षा है।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ भी यही है। ''शिक्षा'' शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष धातु में उन प्रत्यय लगने से बना है। शिक्ष का अर्थ है सीखना और सिखाना। इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ–सीखने–सिखाने की क्रिया। यदि हम शिक्षा के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द Education पर विचार करें तो भी उसका यही अर्थ निकलता है। Education शब्द लैटिन भाषा के Educatum शब्द से बना है। दूसरे शब्दों मूं यह कहा जा सकता है कि Education शब्द E तथा Duco दो शब्दों से मिलकर बना है। E का अर्थ है अन्दर से और Duco का अर्थ है–आगे बढ़ाना। इसलिए Education का अर्थ हुआ – बच्चे की आन्तरिक शक्तियों को बा2हर की ओर प्रकट करना।

दार्शनिकों का विचार केन्द्र मनुष्य होता है। ये मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को जानने और उसके जीवन का अन्तिम उद्देश्य निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार दार्शनिकों की दृष्टि से शिक्षा मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती है। अध्यात्मवादी दार्शनिक मनुष्य के लौकिक जीवन की अपेक्षा उसके पारलौकिक जीवन को अधिक महत्वशाली मानते है। वेदान्ती तो इस लौकिक जीवन से सदा–सदा के लिए छुटकारा चाहते है, तो इसे ही वे मुक्ति कहते हैं। जगतगुरू शंकराचार्य की दृष्टि से– 'सा विद्या या विमुक्तये'। अर्थात शिक्षा वह है जो मुक्ति दिलाये।

भारतीय मनीषी स्वामी विवेकानन्द मनुष्य को जन्म से पूर्ण मानते थे। शिक्षा के द्वारा उसे अपनी इस पूर्णता की अनुभूति करने योग्य बनाने पर बल देते थे। उनके शब्दों में –

"मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।" (Education is the manifestation of Perfection already present in man) swami vivekanand.

युगपुरूष महात्मा गांधी ने शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के विकास पर समान बल दिया हैं। उनके शब्दों में 'शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर मन तथ आत्मा के सर्वागीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है ?

यूनानी दार्शनिक प्लेटो भी शरीर और आत्मा दोनों के महत्व को स्वीकार करते थे। उनके विचार से –

'शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करन है जिसके कि वे योग्य हैं।' (प्लेटो)

'Education consists in giving to the body and soul all the perfections to which

they are susceptible' (Ploto)

प्लेटो के शिष्य अरस्तु मनुष्य के शारीरिक और मानसिक विकास पर बल देते थे। उनका विश्वास था कि उचित शारीरिक एवं मानसिक विकास होने पर भी मनुष्य आत्मा की अनुभूति कर सकता है। उन्होंने शिक्षा को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है –

'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण ही शिक्षा है ।

"Education is the creation of a sound mind in a sound body." (Aristotle)

भौतिकवादी दार्शनिक मनुष्य के केवल लौकिक जीवन को ही सत्य मानते हैं। इनकी दृष्टि से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है। सुखपूर्वक जीने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य शरीर और मन से स्वस्थ और इन्द्रिय भोग के साधनों से सम्पन्न हो। ये सब कार्य वे शिक्षा द्वारा करना चाहते है। भौतिकवादी चार्वाकों की दृष्टि से –

'शिक्षा वह है जो मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाती है।'

श्रुति का सुनिश्चित मत है कि जो मनुष्य विद्या (ज्ञान) को यथार्थतः जान लेता है, वह ज्ञान के अनुष्ठान से अमृत को भोगता है। तात्पर्य यह है कि विद्या मानव को अमरत्व प्रदान करती है। उसमें अमरता प्रदान करने की शक्ति निहित है। अपने वर्णाश्रमोचित आवश्यक कर्तव्य कर्मों का स्वरूपतः त्याग न करना, अपितु उनमें कर्तापन के अभिमान, राग–द्वेष और फलकामना से रहित होकर आचरण करना ही ज्ञान है। यह तो सर्वविदित ही है कि ज्ञान मानव–जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का एक प्रमुख साधन है तभी तो श्री कृष्ण ने गीता में ज्ञान ही महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है –

न हिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विधते।39

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है।

इस वाक्य से यहाँ यह भाव दिखलाया गया है कि इस जगत में यज्ञ, दान, तप, सेवा, पूजा, व्रत–उपवास, प्राणायाम शम–दम संयम और जप–ध्यान आदि जितने भी साधन तथा गंगा–यमुना त्रिवेणी आदि जितने भी तीर्थ हैं वे मनुष्य के पापों का नाश करके उसे पवित्र करने वाले हैं। उनमें से कोई भी इस यथार्थ ज्ञान की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि वे सब इस तत्व ज्ञान के साधन है और यह ज्ञान उन सबका फल (साध्य) है, इस ज्ञान की उत्पत्ति में सहायक होने के कारण ही इन्हें पवित्र माना गया है। इससे मनुष्य परमात्मा के यथार्थ स्वरूप को भलीभांति जान लेता है।

जन्म लेने के बाद से ही प्राणी अपनी परिस्थितियों का सामना करता है और विकासोन्मुख होता हुआ आगे बढ़ता है। इस प्रतिक्रियामें वह अनुभव ग्रहण करता है, इस अनुभव ग्रहण करने में ही उसकी शिक्षा निहित होती है।

वास्तव में मनुष्य के जीवन में शिक्षा का वही महत्व है जो पेड़–पौधों के लिए कृषि का होता है। मानव एक सामाजिक प्राणी है और समाज के जीवन में उसकी देन बहुत बड़ी होती है। वही समाज का निर्माता और संरक्षक होता है। जन्म के समय शिशु निर्बल और पराश्रित होता है, शिक्षा के कारण उसे बल मिलता है और उसकी पराश्रिता दूर होती है। वह समाज के लिए उपयोगी बनता है। प्राचीन समय में भी शिक्षा की उपादेयता, आवश्यकता एवं महत्ता स्वीकार की गई थी, शिक्षा एक वेदांग थी और जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। यही कारण है कि शिक्षा के ऊपर सभी लोगों का ध्यान था। गीता में ज्ञान यज्ञ के श्रेष्ठता बताते हुए कहा गया है कि–

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतपः ।

सर्वम् कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।40

द्रव्यादि पदार्थों के प्रयोग वाले यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते है।

हम जानते हैं कि द्रव्य यज्ञ भी ममता, आसक्ति और फलेच्छा का त्याग कर ज्ञानपूर्वक किये जाने पर ही मुक्ति का हेतु होता है। अतः श्रीमद् भगवद् गीता में लौकिक न पारलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया गया है।

शिक्षा का सम्बन्ध सर्वप्रथम उस ज्ञान–अनुभव से है जो किसी श्रेणी और वर्ग के लोग प्राप्त करते हैं और उसी आधार पर जीविका कमाते हैं शिक्षा और ज्ञान प्रायः समानार्थी शब्द माने जाते हैं। शिक्षा के लिए प्रत्येक मनुष्य को अपनी परिस्थिति का परिचय पाना जरूरी है। यह परिचय जीवन के आरम्भ से होने लगता है। परिचय जब दृढ़ हो जाता है तो वह जानकारी या ज्ञान में बदलता है और इस प्रकार मनुष्य को अपने चारों और क्या है इसका ज्ञान होता है। इसके अलावा जो कुछ भी चारों ओर है उसकी जानकारी प्राणी की अनुभूति के द्वारा होती है। वास्तव में अनुभूति में मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों से ब्रहम्म जगत की चीजों के साथ तदात्मय स्थापित करता है। तब बाद में उसे अनुभव होता है गीता में कहा गया है कि–

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।41

इसी अनुभव व ज्ञान के आधार पर प्राणी मोह को प्राप्त नहीं होता है बल्कि उसी ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण भूतों को पहले अपने में और बाद में परमात्मा में देखता है।

वास्तव में सच्चा ज्ञान वही हैं जो एक बार उदित होने पर पुनः अस्त नहीं होता है। यह तत्वज्ञान नित्य और अचल है, न तो इसका कभी अभाव होता है न ही मोह की उत्पत्ति होती है। श्रुति कहती है–

''यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।

तंत्र को मोहःकः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।42

तत्वज्ञानी पुरूष के लिए समस्त प्राणी आत्मस्वरूप ही प्रतीत होते है, ऐसे एकत्वदर्शी पुरूष को शोक और मोह हो ही नहीं सकता है।

वास्तव में ज्ञानी महापुरूषों द्वारा परमात्मा के स्वरूप को भलीभांति प्रत्यक्ष कर लेना ही अनुभव कहलाता है। एक बार अनुभव में आ जाने पर वह सदा के लिए हो जाता है।

इस प्रकार मनुष्य यदि यह जानने लगता है कि उसके चारों ओर जल, अग्नि, मिट्टी, वायु, पेड़–पौधे, पशु–मनुष्य पाये जाते हैं। इसकी जानकारी इन चीजों के सम्पर्क से प्राप्त अनुभव के आधार पर ही उसे मिलती है। अस्तु उसे अपने घर, घर से बाहर, प्रकृति के प्रांगण में, समाज की संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के ज्ञान–अनुभव मिलते रहते है और इसके फलस्वरूप उसका व्यवहार समुचित ढंग से शिष्ट, सभ्य और शिक्षित होता है। यदि ऐसा ज्ञान–अनुभव का संचय सुनिश्चित ढंग से विद्यालय जैसी संस्था में मिलता है तो मनुष्य को संसार के विभिन्न विषयों की जानकारी होती है। इसलिए भाषा, गणित, विज्ञान, तकनीकी शास्त्र, कला–कौशल, समाज शास्त्र एवं समाज विज्ञान, दर्शन आदि के ज्ञान अनुभव की प्राप्ति को 'शिक्षा' कहते है।

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। प्रक्रिया का तात्पर्य एक विशेष प्रकार की क्रिया अथवा ऐसी क्रिया जिससे व्यक्ति के भीतर कुछ विशेषताएं आ जाये। व्यक्ति

के भीतर, नैसर्गिक रूप से कुछ शक्तियाँ होती है। ये शक्तियाँ उसे जन्म से प्राप्त होती है। इनके अलावा कुछ वाह्य प्रकृति से भी भौतिक एवं सामाजिक शक्तियाँ उसे प्राप्त होती है। इनका परिचय शिक्षक छात्र को कराता है, छात्र को इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरू के समक्ष विनम्र भाव से व कपट रहित होकर ज्ञान के लिए समर्पण करना होगा । गीता में इसी तथ्य को उद्घटित करते हुये कहा गया है–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ।।43

अतः शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिष्य को ज्ञानी के पास जाकर समझाना चाहिए, उनको भली–भाँति दण्डवत् प्रणम, सेवा और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे तत्वज्ञ ज्ञानी महात्मा तुम्हें शिक्षा प्रदान करेंगे।

उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि ज्ञान की प्राप्ति में श्रद्धा भक्ति और सरलभाव की आवश्यकता प्रतीत होती है। अतः मनुष्य की शिक्षा ग्रहण करने की यह प्रक्रिया आजीवन चलती है। मनुष्य जो ज्ञान–अनुभव प्राप्त करता है वास्तव में वह शिक्षा है। ज्ञान अनुभव प्राप्त करने के लिए ही वह प्रतिक्रिया करता है। अतः इसी प्रतिक्रिया को शिक्षा की प्रक्रिया कहते है।

जॉन डयूवी के विचार में प्राणी जन्मोपरान्त मृत्यु पर्यन्त कुछ न कुछ करता ही रहता है। क्रिया करना उसका स्वभाव है। अतः वह कुछ नए अनुभव नित्य ग्रहण करता रहता है। और नए अनुभव ग्रहण न करें तो भी वह पुराने अनुभवों में सुधार एवं परिष्कार करता रहता है जिससे जीवन की परिस्थितियों में वह अधिक सफलता प्राप्त कर सके। शिक्षा विकास की प्रक्रिया है। प्रत्येक मानव को जन्म से ही दो तत्व प्राप्त होते हैं शरीर और मन।

इन दोनों से सम्बन्धित शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ होती हैं जो उसे जन्म से प्राप्त होती हे। तीसरा तत्व 'वातावरण' होता है जो मानव की आन्तरिक शक्तियों का विकास करता है। अतः शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक (बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं भावात्मक) तथा सामाजिक (नैतिक, चारित्रिक एवं सांस्कृतिक आदि) शक्तियों का विकास वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार होता है। प्राचीन मत के अनुसार 'सा विद्या या विमुक्ततये' के अनुसार शिक्षा मोक्ष प्राप्त करने का साधन है। दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया है। श्रीमद् भागवद् गीता में ज्ञान की प्राप्ति करने वाले पात्र के गुण का वर्णन करते हुए कहा गया है–

''श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शन्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।''44

जितेन्द्रिय, साधन परायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान को प्राप्त करने में सक्षम होता है ज्ञान को प्राप्त कर ऐसा व्यक्ति तत्काल भगवतप्राप्ति रूप परम शन्ति एवं मोक्ष को प्राप्त करता है।

अतएव श्रद्धा एवं विश्वास के साथ कार्य में तत्पर व्यक्ति अपने परम लक्ष्य को चाहे वह लौकिक हो या पारलौकिक प्राप्त कर लेता है।

हार्न महोदय ने इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हुए कहा है– ''शारीरिक और मानसिक दृष्टि से विकसित, स्वतन्त्र और सचेतन मानव की ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट अनुकूलन की चिरन्तन प्रक्रिया ही शिक्षा है जो मनुष्य की बौद्धिक, भावात्मक एवं इच्छा शक्ति सम्बन्धित वातावरण में अभिव्यक्ति होती है।'' इस बात को हमारे देश के धार्मिक नेता स्वामी विवेकानन्द ने कुछ सूक्ष्म एवं दूर–दर्शी ढंग से प्रकट किया है उनका कहना है कि ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा

है। "

"शिक्षा मनुष्य की जन्म से प्राप्त शक्तियों का स्वाभाविक, समरूप और प्रगतिशील विकास है। " ऐसा विचार पेस्टालॉजी ने दिया है।

श्रीमद् भगवद् गीता की सम्पूर्ण शिक्षा द्विधुरीय प्रक्रिया है इसमें एक ओर विद्यार्थी रूपी अर्जुन और दूसरी ओर शिक्षक रूपी कृष्ण है। अतः शिक्षा 'सीखने–सिखाने की प्रक्रिया' भी कही जाती है। सम्भवतः इसी अर्थ से हमारे देश में प्राचीन काल से 'शिक्षा' का प्रयोग होता रहा है और शिक्षा एक वेदांग रही है। जिसके द्वारा वेदों के सम्बन्ध में ज्ञान ग्रहण किया और कराया जाता था।

शिक्षा को समाजीकरण की प्रक्रिया तथा समाज का पुनर्निर्माण करने वाली प्रक्रिया के रूप में मानते हुये डीवी ने लिखा है –"शिक्षा किसी व्यक्ति की उन तमाम शक्तियों के विकास का नाम है जो व्यक्ति को अपने वातावरण पर नियंत्रण करने के लायक बना देता हे और उसका जीवन भली–भाँति व्यतीत करने के योग्य हो जाता है।

शिक्षा अभिक्षमताओं को योग्यताओं में परिणीत करने का एक साधन है, एक मार्ग है, एक रास्ता है। तभी शिक्षा को परिवर्तन कहते हैं। परिवर्तन का नाम ही जन्म और मृत्यु है। परिवर्तन के प्रवाह को ही साधारण लोग जीवन कहते हैं। गर्भ में आते ही मरना शुरू हो जाता है। संसार में अवगुण है ही नहीं। गुणों की कमी ही अवगुण रूप से दिखती है। अवगुण की सत्ता है ही नहीं । नित्यनिवृत्त की ही निवृत्ति होती है। केवल उधर दृष्टि करनी है।

ज्ञान, अज्ञान का नाशक नहीं है, प्रत्युत जिज्ञासापूर्वक जो ज्ञान है, वही अज्ञान का नाशक है। गाय के शरीर में रहने वाले घी की तरह ज्ञान तो सब में रहता ही है।गुरू उसी ज्ञान को जाग्रत करताहै, कोई नया ज्ञान नहीं देता। जिज्ञासा के बिना

आप में रहने वाला ज्ञान आपके काम नहीं आता।

समाज और व्यक्ति दोनों की दृष्टि से ज्ञानी शिक्षक प्रशंसनीय है। गीता में ज्ञानी की प्रशंसा करते हुये कहा गया है –

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।45

वास्तव में सच्चा ज्ञान वही है जो समस्त साधनों के द्वारा क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ के स्वरूप को यथार्थ रूप से जान लेने पर होता है। मानवीय गुणों से विपरीत जो मान बढ़ाई की कामना, दम्भ, हिंसा, कुसंग आदि दोष है– वे सभी जन्म–मृत्यु के कारणभूत अज्ञान को बढ़ाने वाले और मानव का पतन करने वाले है। अतएव उन सबका सर्वथा त्याग करना ही आवश्यक है।

कर्म के अंग–प्रत्यंगों को भलीभांति समझाने के लिए कर्म–प्रेरणा और कर्म–संग्रह का प्रतिपादन करते हुये श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है–

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।

करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।।46

किसी भी पदार्थ के स्वरूप को निश्चय करने वाले को 'ज्ञाता' तथा जिस वृत्ति के द्वारा वस्तु के स्वरूप का निश्चय किया जाता है उसका नाम 'ज्ञान' है। और जिस वस्तु के स्वरूप का निश्चय किया जाता है उसका नाम 'ज्ञेय' है। यह तीन प्रकार की कर्म प्रेरणा है। इन तीनों के संयोग से मनुष्य की कर्म में प्रवृत्ति होती है।

सात्विक ज्ञान के लक्षण के सम्बन्ध में कहा गया है।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।

अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ।।47

'जिस ज्ञान से मनुष्य समस्त प्राणियों में एक 'अविनाशी' को समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को सात्विक ज्ञान कहा गया है। अतः कल्याण कामी मनुष्य को इसे ही प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। राजस ज्ञान में प्रत्येक शरीर में आत्मा अलग-अलग है और वे सभी विलक्षण है ऐसा माना जाता है। जिस विपरीत ज्ञान के द्वारा मनुष्य शरीर में आसक्त रहता है- उसके सुख में सुखी और दुख से दुखी होता है तथा उसके नाश से ही सर्वनाश मानता है, वह ज्ञान वास्तव में तामस ज्ञान है।

इस प्रकार श्रीमद् भगवद् गीता में बुद्धि को तीन प्रकार से विभाजित करके सम्पूर्ण ज्ञान एवं शिक्षा को समाहित कर दिया गया है फिर चाहे वह आध्यात्मिक ज्ञान हो या संसारिक ज्ञान।

आध्यात्मिक विद्या जीवन का सत्य है। समस्त जगत में एक ही आत्मा व्याप्त है इस सत्य का अनुभव हो जाने पर ही मानव की मानवता पूर्णता को प्राप्त होती है और उसकी समताओं का विकास होता है उसमें सकारात्मक परिवर्तन होते है।

आज हिंसा, अधर्म, युद्ध, डकैती, चोरी, भ्रष्टाचार, अनाचार, दुर्गुण-दुराचार मानव जीवन के स्वभाव बन गये है आज का मानव दुर्भाग्यवश इसी पतन की ओर अग्रसर है। शिक्षा में से नीति-धर्म, सदाचार का बहिष्कार करके बालकों, बालिकाओं को धर्म विमुख, स्वेच्छाचारी बनाया जा रहा है। इसे रोकना है। बालकों को नीति का पाठ ही नहीं पढ़ाना है बल्कि उस पर अमल करना भी सिखाया जाना चाहिए। जैसे कि एक विद्वान ने कहा है-

इल्म चंदां कि वेशतर ख्वानी।

चूं अमल दर तो नेस्त नादानी।।48

तू चाहे जितनी विद्या पढ़ जाय यदि उस पर अमल नहीं है तो सिर्फ नादानी है।

आज लोग पढ़ते है, ऊँचा पद पाने के लिए धन कमाने के लिए, लोगों से प्रशंसा पाने के लिए और ऊँचा रूतबा पाने के लिए। जीवन का लक्ष्य हमारी नजरों में भी तो ऊँचा होना है जैसे कि किसी विद्वान ने कहा है–

कुछ का यह हौसला पूरा हो जाता है।

पर यहीं तो जीवन का लक्ष्य है नहीं।

यहीं तो जीवन की प्रगति है नहीं।।49

रस्किन के शब्दों में जीवन की प्रगति की व्याख्या यह है–

"He only is advancing in life, whose heart is getting softer, whose blood warmer, whose brain quicker, whose spirit is entering into living peace"50.

केवल उसी का जीवन प्रगति की ओर जा रहा है जिसका हृदय दिन–प्रतिदिन मुलायम से मुलायम होता जा रहा है, जिसके रक्त की उष्मा बढ़ती जा रही है जिसका मस्तिष्क दिन–प्रतिदिन तीक्ष्ण होता चल रहा है और जिसकी आत्मा स्थायी शान्ति की दिशा में प्रवेश करती आ रही है।

शिक्षा का लक्ष्य वास्तव प्रेम है, मुक्ति है, हमारे यहाँ तो ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय।''51 की उक्ति को महत्व दिया गया है। शिक्षा को मनुष्य मात्र में बन्धुत्व का भाव पैदा करने में समर्थ होना चाहिए। तभी तो विश्वबन्धुत्व का अथवा अन्तर्राष्ट्रीय की भावना का विकास सम्बभव होगा। हमारे यहाँ वसुधेव कुटुम्बकम् का

भाव प्राचीन काल से पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा है। हम सदैव कामना कर रहे हैं कि सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेभवन्तु निरामयः। यही भारतीय शिक्षा का सन्देश रहा है और आगे भी ऐसा ही रहेगा। इसी से जीवन की सार्थकता प्राप्त होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ अध्याय तृतीय।

1. Shakespeare, William - "Hamlet"
2. रामसुख दास, स्वामी – 'श्री मदभगवद्गीता साधक संजीवनी' गीता प्रेस गोरखपुर सं0 2057 पृष्ठ – 154
3. वही पृष्ठ संख्या – 805
4. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेधनी हिन्दी टीका" गीता प्रेस गोरखपुर – पृष्ठ – (अ0 18 – श्लोग नं0 57, 5453)
5. वृहदाख्यक – उ0 1/4/10
6. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 194
7. योग दर्शन – (2/3–4)
8. रामसुख, स्वामी – पृष्ठ – 126
9. तदैव – पृष्ठ – 322
10. तदैव – पृष्ठ – 684
11. तदैव – पृष्ठ – 307
12. तदैव – पृष्ठ – 1223
13. हितोपदेश – प्रस्तावना पृष्ठ सं0 – 6
14. कठोपनिषद – 1/3/14
15. रामसुखदास, स्वामी – पृष्ठ – 812
16. दास, तुलसी – 'रामचरितमानस' (7/112 ख)
17. श्री मदभगवद्गीता – (3/25/21)
18. श्री मदभगवद्गीता – (7/47/3)
19. पातज्जलयोगदर्शन – (1/33)
20. श्री मदभगवद्गीता – (7/15/17)
21. दास कबीर – दोहा
22. रामचरितमानस – उत्तर (87/4,87 क)
23. रामसुखदास, स्वामी – पृष्ठ – 277
24. रामचरितमानस – अरण्य (10/4)
25. रामसुखदास, स्वामी – पृष्ठ – 1149, 50,51

26. तदैव – पृष्ठ – 282
27. महाभारत – वनपर्व (180/25–26)
28. मनृस्मृति – (4/30)
29. पद्मपुराण – (2/15)
30. मनुस्मृति – (6–46)
31. महाभारत – अनु0 6 पृष्ठ – (167/50)
32. महाभारत – शान्तिपर्व – पृष्ठ – 3, 19, 13, 287, 19
33. Sidwick's "Methods of Ethics, Book III chap XI 6, P. No. - 315-317, - 355 (7th Edition)
34. तिलक, बालगंगाधर – 'गीता रहस्य' गणेश मुद्रणालय, पुणे पृष्ठ – 630
35. वही – पृष्ठ – 837
36. वही – पृष्ठ – 733
37. भर्तृहरि – नीतिशतक, पृष्ठ – 63
38. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 29
39. वही – पृष्ठ – 185
40. वही – पृष्ठ – 181
41. वही – पृष्ठ – 183
42. ईशावास्योपनिषद् – पृष्ठ – 7
43. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ सं0 – 182
44. तदैव – पृष्ठ – 186
45. तदैव – पृष्ठ – (अ07 श्लोक नं0 17)
46. तदैव – पृष्ठ – 554
47. तदैव – पृष्ठ – 555
48. भट्ट, कृष्णदत्त, पंडित – 'कल्याण' लेख (पढ़ना और हे गुनना और) पृष्ठ – 815
49. तदैव – पृष्ठ – 815
50. तदैव – पृष्ठ – 815
51. तदैव – पृष्ठ – 815

चतुर्थ अध्याय

''प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के ज्ञान के व्यवस्थित विकास के साथ बुद्धिमत्ता का विकास करना था'' जैसा कि गीता में कहा गया है कि– ''ज्ञानं विज्ञानं सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यते शुभात्''

(ए०एस० अल्तेकर)

चतुर्थ अध्याय

पिछले अध्याय में हमने गीता के शैक्षिक दर्शन के सम्बन्ध में विचार किया है और यह देखा है कि जीवन के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोंण ही उसकी जीवन शैली का निर्माण करते हैं, जिससे दार्शनिक विचार पुष्ट होते हैं और शिक्षा का विकास होता है। 'एफ0डब्ल्यू0 थॉमस' एवं 'ए0आर0 लॉग' ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्ति करते हुए कहा है–

"सामान्य रूप में, शिक्षा दर्शन, जीवन दर्शन ही है, किसी शिक्षा दर्शन का सम्बन्ध प्रमुख रूप से शिक्षा के उद्देश्य, उस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक शिक्षा योजना, पाठ्यक्रम, विधि, अध्यापक, शैक्षिक संगठनों के मूल्यांकन हेतु परीक्षा मापन आदि का आयोजन जीवन के लक्ष्यों व आदर्शों की प्राप्ति के लिए ही होता है।"1

शिक्षा की प्रकृति विकास शील है। समाज की परम्परायें एवं परिस्थितियों दार्शनिकों के चिन्तन को प्रभावित करती है। उसी चिन्तन का प्रतिफल शैक्षिक उद्देश्य होता है। शिक्षा एक प्रकार की चेतना है। यह एक गतिशील विषय है; अतः इसका रूप भी स्थिर नहीं रह सकता। हम जानते हैं कि परम्परायें एवं परिस्थितियाँ गतिशील होती है। इसलिए शैक्षिक उद्देश्य भी स्थिर नहीं होते है। शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों, क्षमताओं व योग्यताओं का विकास करना है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षा जनशक्ति, समाज व राष्ट्र के नव निर्माण एवं पुनर्रचना का आधार स्तम्भ मानी जाती है।

स्वतन्त्र एवं सामाजिक विचारों की वृद्धि, असाम्प्रदायिक एवं जनतन्त्रात्मक भावना एवं आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों के लाभ की आवश्यकताओं ने शिक्षा की प्रक्रिया को और महत्वपूर्ण बना दिया है।

गीता के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :–

भारतीय परम्परा के अनुसार शिक्षा एक गम्भीर संकल्पित व्यवसाय है। गीता के अनुसार शिक्षा शास्त्रियों को अपना कार्य करते हुये भविष्य के लिए एक निश्चित लक्ष्य को भी अपनी दृष्टि में रखना चाहिये; ताकि जीवन की समस्याओं का समाधान करने में हम समर्थ हो सके। श्रीमद् भगवद् गीता के विचारों से प्रभावित होकर महात्मा गांधी जी ने भी अपने भाव इस प्रकार प्रकट किये हैं उनके शब्दों में–

"शिक्षा ही एक मात्र वह मूल्यवान वस्तु है जो विद्यार्थियों की क्षमताओं को इस प्रकार विकसित कर सकती है; ताकि वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली जीवन मस्याओं का ठीक–ठीक समाधान करने में समर्थ हो सके।"2

इस प्रकार शिक्षा उद्देश्य विहीन व निश्चित निर्देशन से वंचित नहीं है; इसलिए अनेक उद्देश्य दृष्टिगत होते है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वतोमुखी विकास अर्थात शरीर, मन और आत्मा के विकास से हैं क्योंकि जिस विद्या से इन सबका विकास हो और पुष्पित होना निश्चय हो वही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सभी गुणों का विकास होना चाहिये। इसी कारण श्रीमद् भगवद् गीता आधुनिक शैक्षिक उद्देश्यों में जो तीन आर–Reading, Writing, Arthemetic अर्थमेटिक हैं इनकी अपेक्षा तीन एच– Hand (शरीर) Head (मन) Heart (आत्मा) की शिक्षा पर विशेष बल देती है। गीता यह मानती है कि इन तीन तत्वों के सामन्जस्यपूर्ण विकास से बालक का सर्वतोमुखी विकास सम्भव होता है। इसी भाव से सम्पृक्त कथन श्रीमद् भगवद् गीता में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

"भुज्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियत मानसः ।

शान्तिं निर्वाण परमां मत्संस्थामधिगच्छति ।।3

कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर, मन तथा कर्म में निरन्तर संयम का आभास करते हुए इस भौतिक अस्तित्व की समतर्पृपर परब्रह्म की अनुभूति करता है अर्थात आत्मानुभूति करने में समर्थ हो जाता है। गीता में कहा गया है कि हमारे जीवन का सम्बन्ध इस भौतिक एवं पारलौकिक दोनों संसार से है। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य भौतिकवादी एवं आध्यात्मवादी दोनों ही होना चाहिए ।

यही कारण है कि इस ग्रन्थ के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य प्रतीत होते हैं –

1. प्रथम – **तात्कालिक उद्देश्य**

   द्वितीय – **अन्तिम उद्देश्य, सर्वोत्तम उद्देश्य**

शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य :–श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार विद्यार्थी की समस्त क्षमताओं को समान रूप से विकसित होने के लिए मस्तिष्क, हृदय तथा हाथ इन तीनों की एकता तथा उनमें सामन्जस्य अवश्य होना चाहिये। "गीता का कर्मयोग हाथ के विकास, ज्ञानयोग मस्तिष्क के विकास तथा भक्तियोग हृदय के विकास से सम्बन्धित है। जब इन तीनों में सामन्जस्य होगा तभी पूर्णमानव की प्रकृति की पूर्णता सम्भव होगी।"4

मानव की मौलिक आवश्यकतायें :– भोजन, वस्त्र तथा निवास है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना व्यक्ति में उच्च आदर्शों के प्रति विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकेगें। अतः यदि शिक्षा हमारी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती तो वह हमारे लिए व्यर्थ है। कुछ लोगों को शिक्षा का यह उद्देश्य तुच्छ तथा भौतिकवादी प्रतीत होता है; परन्तु हमें यह लक्ष्य अंगीकार करना पड़ेगा कि यदि हम भौतिक, नैतिक और मानसिक प्रगति की कामना करते हैं तो हमें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सर्वप्रथम सन्तुष्ट करना चाहिये।

गीता के अनुसार शिक्षा का माध्यम कर्म है :– प्रत्येक व्यक्ति को आत्म निर्भर होना चाहिए। प्रत्येक बालक अपने माता–पिता के कार्यों में सहयोग प्रदान करे। इस प्रकार की भावना की उत्पत्ति करना वास्तव में शिक्षा है। श्रीमद् भगवद् गीता में कर्म करने की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा गया है कि –

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।

न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।।5

अर्थात कर्म से विमुख होकर कोई कर्मफल से छुटकारा नहीं पा सकता है और न केवल सन्यास से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

इसी अध्याय में आगे भी कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति से अर्जित गुणों के अनुसार विवश होकर कर्म करना पड़ता है। अर्जुन को शिक्षा प्रदान करते हुए श्री कृष्ण कहते हैं कि –

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोक संग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।।6

हे अर्जुन, जनक जैसे राजाओं ने केवल नियत कर्मों को करने से ही सिद्धि प्राप्त की थी। अतः सामान्य जनों को शिक्षित करने की दृष्टि से तुम्हें कर्म करना चाहिए।

अर्थात इस प्रकार के कर्म करने चाहिए जो स्वयं के साथ–साथ समाज के लिए भी उपयोगी हो तथा दूसरों के समक्ष उदाहरण स्वरूप हो ताकि मानव उसका अनुशरण कर सके।

सन् 1902 में डॉ0 जाकिर हुसैन ने अखिल भारतीय नई तालीम के द्वितीय अधिवेशन में शिक्षा में " कर्म" अर्थात "श्रम" की व्याख्या इस प्रकार की है।

"हम लोग केवल वर्तमान समय में ही शिक्षा का माध्यम "कर्म" हनीं मानते हैं बल्कि .....प्रत्येक मनुष्य ने यह बात अपने तरीकों से कही है। एक व्यक्ति के लिए "कर्म" सिद्धान्त है .....उसे पाठ्यक्रम के विषय का एक हिस्सा बनाया जाय। दूसरे व्यक्ति के लिए "कर्म" पाठ्यक्रम का एक विषय रहना चाहिये...........तीसरे व्यक्ति के लिये "कर्म" द्वारा उत्पादन होना चाहिए और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो "कर्म" को ईश्वर का वरदान मानते है। उनकी क्रियाशीलता उनकी रचनात्मक शक्तियों का द्योतक है।"7

श्रीमद् भगवद् गीता ने कर्म द्वारा ज्ञान प्राप्ति की ओर संकेत किया है। इस ग्रन्थ के अनुसार शिक्षा उन्हीं कर्मो द्वारा दी जानी चाहिये जिनसे विद्यार्थियों की व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्तिहो सके। उत्पादक कर्म ही उपयोगी कर्म है।

अनेक चिन्तकों ने 'कर्म' द्वार. ज्ञान देने की परिकल्पनाएं की हैं; तथा उनका प्रयोग भी किया है। जब से मानव के व्यक्तित्व के सामंजस्य पूर्ण विकास की बात की गई तभी से मानव व्यक्तित्व के इन चार पक्षों शरीर, हृदय, मन तथा आत्मा के विकास पर जोर दिया जाता रहा है।

कर्म के प्रति इंगलैण्ड की शिक्षा परिषद का विचार है –

"जिस समाज का बालक सदस्य होता है उसकी भलाई को ध्यान में रखते हुये बालक की समग्र क्षमाताओं का विद्यालीय परिवेश में विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।"

श्रीमद् भगवद् गीता में शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण प्रकृति के विकास का लक्ष्य रखा गया था न कि केवल बौद्धिक विकास का। श्रीमद् भगवद् गीता दर्शन से प्रभावित होकर महात्मा गाँधी ने भी पूर्ण मानव विकास हेतु हृदय मस्तिष्क या मन

और हाथ तीनों की एकता पर बल दिया था।

श्रीमद् भगवद् गीता की मान्यता है कि मनुष्य ईश्वर का ही रूप है, जिस प्रकार ईश्वर सृष्टि करता है उसी प्रकार मनुष्य भी निर्माणक है। यदि निर्माण की शक्ति अथवा योग्यता का विकास शिक्षा नहीं कर सकती तो ऐसी शिक्षा व्यर्थ है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार विद्यार्थियों की इस योग्यता का विकास कर्म की शिक्षा अथवा शरीर श्रम की शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। गांधी जी ने भी गीता में कही गयी इस बात को आंगीकार करते हुए महात्मा गाँधी जी ने भी अपने शैक्षिक सिद्धान्त की व्याख्या इस प्रकार की है–

"मैं मानता हूँ कि सच्ची बौद्धिक शिक्षा केवल शारीरिक अवयवों का बुद्धिमता पूर्वक प्रयोग करने से प्राप्त हो सकती है। विद्यार्थियों में श्रेष्ठ एवं तीव्रतम ढंग से बुद्धि का विकास होता है।"8

शिक्षा के इस सिद्धान्त के पक्ष में बाबा साहब कालकेलर ने कहा है कि–

"अनुभव ने हमें बताया है कि विद्यार्थियां के पूर्ण व्यक्तित्व विकास हेतु शरीर श्रम द्वारा शिक्षा नितान्त आवश्यक है। हमने अब तक हृदय व मानसिक विकास हेतु वाणी व कर्ण का प्रयोग करना ही जाना है। नेत्रों का प्रयोग भी निरीक्षण के अतिरिक्त अन्य विषयों को कंठस्थ करने में ही किया है, परन्तु अब हमें यह अनुभव करना चाहिये कि सच्चे अर्थो में हृदय व मन का विकास शरीर श्रम द्वारा ही हो सकता है।"9 अत श्रीमद् भगवद् गीता भी कर्म करने वाले पर बल प्रदान करती है तथा "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"10 की उद्घोषणा करती है।

इस प्रकार हस्त कला अथवा कल्चर ऑफ हेण्ड के ज्ञान से विद्यार्थियों में आत्म सम्मानित नागरिक होने का भाव, भावी जीवन में अपराश्रिता का विचार उत्पन्न होगा जो किसी भी राष्ट्र के नागरिक का प्रमुख गुण है।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार ज्ञानात्मक, सांस्कृतिक अथवा मस्तिष्क की बुद्धि का उद्देश्य ही नालेज कल्चर अथवा कल्ट आफ हैण्ड है –

श्रीमद् भगवद् गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रकृति ने मानव को ज्ञानार्जन हेतु बुद्धि, विचार, स्मरण, कल्पना, ध्यान, प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययीकरण आदि शक्तियाँ प्रदान की है।

कार्य कारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिकथ्यते।

पुरूषः सुख दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरूच्यते ।।11

प्रकृति समस्त भौतिक कारणों तथा कार्यों की हेतु कही जाती है, और जीव इस संसार में विविध सुख–दुख के भोग का करण कहा जाता है।

अर्थात मानव को प्रकृति के नियमानुसार कार्य करना चाहिए इसी अध्याय में आगे पुनः कहा गया है कि–

य एवं वेत्ति पुरूषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।।12

जो व्यक्ति प्रकृति, जीव तथा प्रकृति के गुणों की अन्तः क्रिया से सम्बन्धित इस विचारधारा को समझा लेता है, उसे आत्मानुभूति अथवा मुक्ति की प्राप्ति सुनिश्चित है। उसकी वर्तमान स्थिति चाहे जैसी हो, परन्तु उसका पुर्नजन्म नहीं होगा।

अर्थात व्यक्ति को प्रकृति के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। प्रकृति निरन्तर क्रियाशील है, इसलिए उससे सम्बन्ध रखते हुए कोई भी प्राणी किसी भी अवस्था में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। अपने जीवन के व्यावहार को समयानुकूल अच्छी तरह सम्पादित करने क लिए प्राणी ज्ञान का उपयोग करता है। ज्ञान का अर्थ संकुचित नहीं बल्कि व्यापक है। सांस्कृतिक उद्देश्य के अनुसार

किसी भौतिक उपयोग के अतिरिक्त ज्ञान धारण करना श्रेष्ठ है।

शिक्षा के सांस्कृतिक उद्देश्य को मानने वाले विद्यार्थी को नयी परिस्थितियों में व्यवहार करने के लिए उनके मस्तिष्क को बौद्धिक कार्यों में लगाकर प्रशिक्षित करने की बात करते है, परन्तु यह ध्यान रखना पडेगा कि ज्ञान ही मात्र संस्कृति नहीं है। डॉ0 राधा कृष्णन ने श्रीमद् भगवद् गीता की इस बात का समर्थन करते हुए कहा है कि –

''वह ज्ञान जो उत्सुकता को शान्त करता है, वह संस्कृति से भिन्न है, संस्कृति तो व्यक्तित्व को चमकाती है। संसार के नायकों की जन्मतिथि याद करना, अंटलांटिक महासागर को तीव्रगति से पार करने वाले जहाजों के नाम स्मरण करना तथा हाल के महत्वपूर्ण व्यक्तियों की जानकारी करना संस्कृति नहीं है।''13 उन्होंने पुनः लिखा है कि –

''उपलब्ध संस्कृति की तालिका बद्ध सूचनाओं की मात्रा द्वारा ही संस्कृति को जाँचा नहीं जा सकता, किन्तु जीवन के तथ्यों के प्रति मानसिक गुणों द्वारा ही संस्कृति की पहिचान की जा सकती है।''14

तेषां सततयुक्तामां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति तें।।

''जो प्रेम पूर्वक मेरी सेवा करने में अर्थात कर्म करने में निरन्तर लगे रहते है, उन्हें मैं ज्ञान प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझको प्राप्त होते है।''15

श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है कि ज्ञान, हृदय की संस्कृति को बहुत सहयोग देता है। प्रेम व सत्य का ज्ञान एक दूसरे के पूरक एवं सहयोगी है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार सापेक्षिक सत्य स्थिर नहीं है बल्कि इस सत्य का परीक्षण

व पुनर्सुधार सदैव होता रहा है। महात्मा गांधी जी स्वयं इस ग्रन्थ के दर्शन से प्रभावित होकर लिखते हैं कि वास्तव में सत्य वह है जो–

"तुम्हें तुम्हारी आन्तरिक आवाज बताती है।"16 "इसलिये उनकी सम्मति के अनुसार सत्य का अनुशरण करना किसी भी प्राणी के लिए अहितकर नहीं है।"17

अतः श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार सापेक्षिक सत्य की गम्भीरता को मानते हुये निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिये।

श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति मनुष्य मात्र की सेवा करने का भाव रखता है या करना चाहता है उसे प्रथमतः स्वैच्छिक विपन्नता को स्वीकार करना पड़ेगा। इनकी विपन्नता त्याग है जिसे व्यक्ति प्रसन्नता एवं शान्ति के सुनहरे दरवाजे के रूप में अंगीकार करता है। यही श्रीमद् भगवद् गीता का ज्ञानात्मक एवं सांस्कृतिक पहलू है।

आत्म नियन्त्रण अथवा इन्द्रिय निग्रह के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन की प्रगतिशील पुर्नयोजना सम्भव है। अतः शिक्षा का उद्देश्य यही होना चहिये जिससे सामाजिक बुराईयों को विद्यार्थी दूर करने में समर्थ हो सके।

3. सर्वांगीण तथा सामन्जस्य पूर्ण विकास का उद्देश्य

हमने यह देखा है कि श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार बालक का सर्वतोमुखी विकास करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। यह बालक की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित करना चाहती है ताकि उनका सर्वांगीण विकास हो सके। और वे अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। गीता के अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो हमारी भावनाओं, संवेदनाओं, जन्मजात क्षमताओं, मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक एवं जीवन के सभी पहलुओं को

समान रूप से विकसित करें। श्रीमद् भगवद् गीता के शैक्षिक विचार मस्तिष्क की अपेक्षा अर्न्तआत्मा की पुकार से प्रभावित है।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार हमारा मस्तिष्क द्वेष एवं अभिमान के कुहांसों से इस प्रकार ढक लिया जाता है कि हम वस्तु को उसके वास्तविक रूप में नहीं देख पाते। महात्मा गॉधी के अनुसार शिक्षा का कार्य यह है कि ''वह हमारी आत्मा पर चिपके हुये गंदे विचारों के बोझ को और न बढ़ायें बल्कि उन्हें दूर करें। आत्मा के ऊपर से इस अंधकार मय स्थिति को हटाना चाहिये ताकि विद्यार्थियों की स्वच्छ मूलभूत प्रवृत्तियों को ऊपर उठने का अवसर मिलें।''18

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार संस्कृतिक मानसिक कार्य का परिणाम नहीं है; बल्कि आत्मा का ही गुण है मानव व्यवहार को देखकर ही उसके सुसंस्कृत अथवा कुसंस्कृत होने की परख की जाती है। अतः इस ग्रन्थ के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वांगीण तथ सामन्जस्य पूर्ण विकास करना है । इसलिए गीता पूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए इन तीनों ''एच'' हाथ, हृदय एवं मस्तिष्क का उचित एवं सामन्जस्य पूर्ण मिश्रण आवश्यक बताती है।

शारीरिक विकास का उद्देश्य :– श्रीमद् भगवद् गीता के योग दर्शन के अनुसार मस्तिष्क और हृदय का शिक्षण शरीर के अंगों के उचित व्यायाम, योग और प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शरीर में ही आत्मा, मन, मस्तिष्क का निवास है। इसलिए यदि शारीरिक विकास उचित रूप से नहीं होता है तो अन्य के विकास की यथार्थ कल्पना निराधार है, क्योंकि 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास' करता है। अतः जीवन के आधार रूपी शरीर का पुष्ट, बलवान एवं सुडौल होना आवश्यक है।

शारीरिक शिक्षा की विधि बड़ी रोचक एवं आनन्दप्रद है। संगीत विषय वैसे ही

रोचक एवं आनन्ददायक है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शारीरिक प्रशिक्षण में संगीत की शिक्षा का स्वयं महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत शरीर के आन्तरिक अवयवों को संतुलित एवं पुष्ट करती है। संगीत का और हृदय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संगीत द्वारा शरीर एवं हृदय दोनों शिक्षित एवं प्रशिक्षित होते है। '' संगीत की शिक्षा के माध्यम से अनिवार्य रूप से शारीरिक प्रशिक्षण देना चाहिए –

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं बह्मकर्म स्वभावजम् ।।19

अन्तःकरण की निग्रह करना, इन्द्रियों का दमन करना, धर्मपालन के लिए कष्ट सहना, बाहर भीतर से शुद्ध रहना, दूसरों के अपराधों को क्षमा करना, मन इन्द्रिय और शरीर को सरल रखना, वेद शास्त्रों का अध्ययन–अध्यापन करना और परमात्मा के तत्व का अनुभव करना।

जैसे गुणों के द्वारा एक विद्यार्थी को कर्मनिष्ठ बनना चाहिए।

5. नैतिक, चारित्रिक और हृदय की संसकृति के विकास का उद्‌देश्य –

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य नैतिक विकास चरित्र निर्माण व हृदय की संस्कृति का निर्माण करना है। इसमें चरित्र निर्माण को विशेष महत्व दिया गया है। उसके अनुसार समस्त ज्ञान का लक्ष्य चरित्र निर्माण करना ही है। स्वयं की पवित्रता का महत्व चरित्र निर्माण के लिए है। चरित्र के बिना शिक्षा, और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है। महात्मा गांधी जी इस विचार से बहुत प्रभावित थे। वे चरित्र निर्माण के लिए विद्यालय को मुख्य संस्था मानते है। उन्होंने कहा है कि–

''व्यक्तिगत पवित्रता समस्त चरित्र निर्माण अथवा मजबूत शिक्षा निर्माण का

आधार होना चाहिये।"20

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार बालक गुरू के पास आश्रम में जाकर चरित्रवान, गुणवान, सुन्दर पुरूष बनता है ताकि सामाजिक गतिविधियों में अपना सुष्ठ योगदान दे सके। उसी प्रकार मानव अपने बालक को इसलिए विद्यालय भेजते हैं ताकि वे सदगुणी एवं चरित्रवान बनें।

चरित्र का निर्माण अन्य द्वारा नहीं बल्कि स्वयं द्वारा होता है। पुस्तकों के पृष्ठों से व्यक्ति के चरित्र को नहीं बनाया जा सकता, ऐसी भावना तो व्यक्ति के अन्दर से निकलनी चाहिये। हम जानते हैं कि व्यक्ति विद्वान तो हो सकता है, किन्तु चरित्रवान भी होगा, यह आवश्यक हनीं है। चरित्रवान बनने के लिए व्यक्ति को हृदय वाणी, विचार एवं कार्य तीनों क्षेत्रों में पवित्रता व ईमानदारी धारण करने के लिए योग्य होना होगा। व्यक्ति को अपने व्यवहार के तरीकों को जानना होगा। जहॉ पर भी प्रश्न 'जानने' का उत्पन्न हुआ वहीं व्यक्ति की स्वयं की क्रियाशीलता की उत्पत्ति हो जाती है; यही श्रीमद् भगवद् गीता की प्राथमिकता है क्योंकि जीवन में व्यवहार करने की विधियों को भली भॉति जानने वाला किसान निरक्षर होते हुए भी श्रेष्ठ होता है।

शिक्षा दर्शन की जड़ भारतीय जीवन और संस्कृति में है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में वौद्धिक प्रशिक्षण की अपेक्षा नैतिक प्रशिक्षण का ही विशेष महत्व था।

परन्तु हमें यह नही समझना चाहिए कि गीता का शैक्षिक दर्शन केवल सैद्धान्तिक है; वल्कि यह एक व्यावहारिक दर्शन भी है। एक जगह पटेल जी ने लिखा है कि –

"सच्ची शिक्षा साक्षरता का प्रशिक्षण नहीं है, वल्कि चरित्र निर्माण करना है।"21

अतः गीता के अनुासर शैक्षिक प्रयोग का मुख्य लक्ष्य चरित्र निर्माण व सेवा करना तथा हृदय की संस्कृति को विकसित करना ही रहा है।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार आत्मानुभूति या शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है। –

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति है – "सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही जो मुक्त करती है। मुक्ति के दो अर्थ हो सकते है – वर्तमान जीवन में सव प्रकार की दासता से स्वतन्त्रता, वह दासता चाहे आर्थिक, राजनैतिक या मानसिक हो। जब तक मनुष्य इनमें से किसी भी एक बन्धन में बधॉ हुआ है, तब तक उसकी प्रगति असम्भव है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य सभी प्रकार की दासता के बन्धन से मुक्त करना है। दूसरे अर्थ में मुक्ति का अर्थ है – आध्यात्मिक स्वतन्त्रता। इसका अर्थ है कि शिक्षा द्वारा सांसारिक बन्धनों से आत्मा की मुक्ति। अतः श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षा का उच्चतम उद्देश्य आत्मानुभूति व ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना है। अन्य सभी उद्देश्य इसी उद्देश्य के अधीन है। मनुष्य का सभी प्रयास इसी उद्देश्य हेतु होना चाहिये। महात्मा गॉधी ने कहा है कि "आत्म शिक्षण शिक्षा का एक स्वतन्त्र विषय है आत्मा के विकास करने का अर्थ है चरित्र गठन, ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना, आत्म ज्ञान प्राप्त करना। उसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है और हानिकारक भी हो सकता है।"22 श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार विद्यार्थी को अपने जीवन को आत्म संयम की मजबूत नींव पर आधारित कर लेना चाहिये। कहा गया है कि–

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।

यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यत्यचेतसः।।23

अर्थात आत्मा – साक्षात्कार को प्राप्त प्रयत्नशील व्यक्ति सब कुछ स्पष्ट रूप

से देख सकते हैं। लेकिन जिनके मन विकसित नहीं है और जो आत्मा–साक्षात्कार को प्राप्त नही हैं, वे प्रयन्त करके भी नहीं देख पाते कि क्या हो रहा है। श्रीमद् भगवद् गीता का आत्मानुभव रूपी उद्देश्य सभी तात्कालिक उद्देश्यों को अपने में सम्मिलित कर लेता है और एक पूर्ण रचनात्मक एकता की तस्वीर भी प्रस्तुत करता है। यह उद्देश्य हमरे देश की प्रतिभा, सभी युगों और सभी स्थानों के महान दार्शनिकों की शिक्षा तथा हमारी वंशानुगत संस्कृति के अनुरूप भी है। आत्मानुभव का उद्देश्य काल्पनिक नहीं; वल्कि व्यावहारिक है।

श्रीमद् भगवद् गीता संसार त्यागने की बात नहीं करती; बल्कि सांसारिक कार्यो को करते हुये आत्मानुभूति की ओर बढ़ाने की बात करती है। गीता के अनुसार आत्मानुभूति के आदर्श को सम्मुख रखकर जीवन के समस्त कार्यो को किया जाय तो यह संसार हमारे रहने के लिए उत्तम स्थान हो जायेगा तथा आधुनिक समाज में व्याप्त समस्त मदभेद व संघर्ष समाप्त हो जायेगें और रामराज्य की कल्पना साकार हो जायेगी।

शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य 'आत्मानुभूति' का मानव जाति को उच्च्व नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति हेतु ऊपर उठाता है, जिसे प्राप्त कर वे सदैव आनन्द का अनुभव कर सकेगें।

आत्मानुभूति हेतु स्वयं की पवित्रता आवश्यक है श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार जीवन के लिए नैतिकता का बहुत महत्व है। व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति इसी पर आधारित है।

श्रीमद् भगवद् गीता वौद्धिक शक्ति की अपेक्षा आत्मिक शाक्ति पर विशेष जोर देती है। आत्मिक शक्ति तो ईश्वर कृपा से सभी को मिली है; परन्तु वासनाओं के दास के ऊपर ईश्वरीय कृपा कभी नही वरसती है। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की

पवित्रता हेतु वासना एवं 'स्व' को नियन्त्रण में रखना जरूरी है और हृदय की पवित्रता के लिए मन, वचन तथा कर्म तीनों से पवित्र होना आवश्यक है। श्रीमद् भगवद् गीता का दर्शन, कर्म के दर्शन पर आधारित है, चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण कारक है, क्योंकि कर्म में मन, बुद्धि व शारीरिक अवयवों का सामन्जस्य होता है। प्रेम व सहयोग की भावना स्वयं कर्म से निहित है। जो कार्य से प्रेम करता है वह कर्मशील होता है यह ग्रन्थ स्वयं पवित्रता व निर्भीकता के भाव को अपने विद्यार्थी में उत्पन्न करने के लिए प्रेरित करती है।

आत्मानुभूति हेतु चरित्र आवश्यक है। आत्मानुभूति का लक्ष्य समाज सेवा व आत्मत्याग से ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्तिगत मोक्ष व आत्मानुभूति का तरीका आत्मत्याग और बलिदान का ही तरीका है। यही जीवन व शिक्षा का उद्देश्य है। इस प्रकार गीता के द्वारा प्रतिपादित समस्त उद्देश्य को उनके अन्तिय उद्देश्य आत्मानुभूति में समाहित किया जाना असम्भव नहीं है बल्कि अन्य समस्त उद्देश्यों की पूर्ण संगति की अभिव्यक्ति हुई है।

इस प्रकार श्रीमद् भगवद् गीता के शैक्षिक उद्देश्य मुख्य रूप से हस्त (कर्म), मस्तिष्क (ज्ञान) और हृदय (भक्ति) की संस्कृति के उद्देश्य आत्मानुभूति व सामाजिक तथा अहिंसक लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना के उद्देश्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। संक्षेप में श्रीमद् भगवद् गीता में प्रकरान्तर से जो मुख्य शैक्षिक उद्देश्यों की अभिव्यक्ति हुई है वे निम्नलिखित हैं–

1. हस्त संस्कृति (कर्मयोग)
2. मस्तिष्क की संस्कृति (ज्ञान योग)
3. सर्वांगीण व सामन्जस्य पूर्ण विकास

4. शारीरिक विकास का उद्देश्य

5. नैतिकता, चारित्रिक व हृदय की संस्कृति के विकास का उद्देश्य

6. वैयक्तिकता एवं सामाजिकता के विकास का उद्देश्य

7. लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना व नागरिकता के गुणों के विकास का उद्देश्य

8. आत्मानुभूति अथवा मुक्ति का उद्देश्य (भक्ति योग)

गीता के अनुसार पाठ्यक्रम

गीता एक ऐसा व्यावहारिक ग्रन्थ है जो मानव को मानव ही नहीं बल्कि महामानव बनाना चाहती है। मानवीय मूल्यों को शिक्षा प्रदान करने वाला वास्तव में यही एक ही सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। आज मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है। सभी शिक्षा दार्शनिक आज मूल्य आधरित शिक्षा व उसके पाठ्यक्रम की चर्चा कर रहे है; क्योंकि बिना मूल्य के शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है। मूल्य शिक्षा का प्रबन्धन व आयोजन करने की प्रेरणा हमें श्रीमद् भगवद् गीता से ही प्राप्त होती है।

मूल्य व उनकी शिक्षा – मनुष्य को कर्तव्य परायण होने के लिए मूल्य शिक्षा आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपना व्यावहार पूर्व निश्चित मूल्यों के आधार पर प्रदर्शित करता है। मूल्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कराने वाले साधन व साध्य दोनों हैं। मूल्य प्रमाणिक व्यावहार व सिद्धान्त है। मूल्य का शब्दिक अर्थ है, "वह वस्तु जिसकी कुछ कीमत हो, जिसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति कष्ट उठाने व त्याग करने हेतु तत्पर रहता है।"

समाज जिन मूल्यों को अंगीकार कर लेता है, वे ही सामाजिक मूल्य के प्रतिमान बन जाते हैं क्योंकि पीढ़ी दर पीढ़ी समाज इन मूल्यों को व्यावहार परक बनाता हुआ

आगे बढ़ता है। अतः मूल्य संस्कृति का अविभाज्य अंग है। इन मूल्यों का विकास करना ही वास्तविक शिक्षा है।

मूल्य कई प्रकार के है जैसे—व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक।

व्यक्तिगत मूल्य :- जिसे व्यक्ति अपने सामाजिक सम्बन्धों के बिना भी ध ारण करता है। जैसे—महत्वाकांक्षा, पवित्रता, साहस, सहजता, सृजनात्मकता, ईमानदारी, नियमितता और सादगी आदि।

सामाजिक मूल्य :- वे मूल्य जिनका सम्बन्ध समाज से होता है। जैसे— जिम्मेदारी, दयालुता, स्वतंत्रता न्याय, प्रेम, कृतज्ञता आदि।

नैतिक मूल्य :- वे मूल्य जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के चरित्र व व्यक्तित्व से होता है जैसे—ईमानदारी, उत्तरदायित्व का एहसास आदि।

आध्यात्मिक मूल्य — ये वास्तव में अन्तिम नैतिक मूल्य ही है जैसे — पवित्रता, भक्ति, इष्ट के प्रति समर्पण, स्वानुशासन, ध्यान आदि।

व्यावहार परक मूल्य :- जीवन को सफल बनाने के लिए जिन अच्छे आचरण की आवश्यकता होती है वे व्यावहारिक मूल्य है। जैसे— मित्रता, मित्रवत व्यवहार, सुशीलता एवं क्रमबद्धता मूल्य व्यक्ति व समाज दोनों के लिए फायदे मन्द है। इसलिए श्रीमद् भगवद् गीता मूल्य शिक्षा पर विशेष बल देती है।

प्राचीन काल से मूल्य शिक्षा का सम्बन्ध भारतीय समाज से रहा है । वैदिक शिक्षा को नैतिक मूल्यों की शिक्षा ही समझा जाता था। सत्य, ईमानदारी, भक्ति, कर्तव्यनिष्ठा अनुशासन, सद्भावना आदि मूल्य शिक्षा के ही प्रारूप है।

महात्मा गांधी जी ने भी इसी मूल्य शिक्षा को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता,

शरीर श्रम, निर्भयता, सहनशीलता, साहचर्य, सहिष्णुता, देश भक्ति, अस्पृश्यता निवारण के रूप में अंगीकार किया है। मूल्य शिक्षा को कोई अलग से शिक्षा नहीं मानना चाहिए, वास्तविक शिक्षा की उपज ही मूल्य शिक्षा है। मूल्य शिक्षा पढ़ाई नहीं जा सकती; किन्तु वह पाठ्यक्रम निर्मित किया जा सकता है जो मूल्यों को व्यक्तियों में विकसित कर सकें।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों का सम्पूर्ण विकास हो सके तथा वह जीवन की विकट परिस्थितियों के लिए तैयार हो सके तथा शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हो सकें।

पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों का दर्पण है :– हम देखते हैं कि पाठ्यक्रम ही वह साधन है जो शैक्षिक प्रक्रिया के लिए आधार का निर्माण करता है। पाठ्यक्रम की प्रकृति एवं विषय सूची शिक्षाके उद्देश्यों पर आधारित है; क्योंकि यदि शिक्षा को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया माना जाय तो शिक्षा में इसके लिए एक साधन की आवश्यकता पड़ती ही है– वह होता है पाठ्यक्रम 1 किसी भी शिक्षा योजना में उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में निकट का सम्बन्ध खोजना प्रायः कठिन नहीं है।

उद्देश्यों के आधार पर पाठ्यक्रम में भी विविधता होती है :– शिक्षा के द्वारा समाज के आध्यात्मिक, नैतिक, मानसिक और शारीरिक विकास के उद्देश्य को प्राप्त कियाजाना चाहिए।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार विद्यार्थी की योग्यता, क्षमता एवं अभिरूचि को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए तदनुसार निर्देशन एवं प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

पाठ्यक्रम क्रियाशील एवं जिम्मेदार व्यक्तियों का निर्माण करने वाला होना चाहिए :– गीता के अनुसार पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो कर्मरत

अर्थात कर्मशील व्यक्तियों का निर्माण करें, जो समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अनुभव का निर्माण करें जो समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अनुभव करें। जिससे सत्य का आग्रह करने वाले, शुद्ध अन्तरात्मा वाले ज्ञानी जन बन सके। इस हेतु ही पाठ्यक्रम का निर्धारण होना चाहिए। लाभप्रद शैक्षिक क्रियाशीलन पर हमेशा महत्व दिया जाता है। हम यह जानते हैं कि किसी भी शैक्षिक योजना के पीछे एक उपयोगी लक्ष्य होता है। बहुत पहले अरस्तु ने पाठ्यक्रम निर्माण के लिए यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि–

"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बच्चों को वे ही लाभप्रद वस्तुयें जो आवश्यक हो पढ़ाई जानी चाहिए।"24

हमारी भारतीय शिक्षा प्रणाली भी श्रीमद् भगवद् गीता से प्रभावित है तथा हमारी वर्तमान पीढ़ी को शिक्षा परिषद द्वारा ऐसा ही संकेत दिया गया है–

"....................पाठ्यक्रम को बच्चों की आदत, कुशलता, रूचि और भावनाओं को प्राप्त करने व विकसित करने के लिए प्रभावी होना चाहिये, क्योंकि उन्हें अपनी भलाई तथा जिस समाज में रहते हैं उसकी भलाई के लिए इसकी आवश्यकता होगी।"25

प्रत्येक बालक को अपनी भाषा बोलने, पढ़ने और लिखने की योग्यता अर्जित करनी चाहिये। अतः गीता के अनुसार बालक को एक ओर शारीरिक प्रशिक्षण तथा दूसरी और व्यावहारिक एवं प्रायोगीय निर्देशन के महत्व से परिचित कराया जाता चाहिए ।

पाठ्यक्रम के विषयों का आधार 'उपयोगिता' होनी चाहिए :– गीता के इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को शामिल किया जाना चाहिये जो उपयोगी हो, इसलिए आजकल विद्यालयों में पाठ्यक्रम में ज्ञान व कौशल की वृद्धि

करने वाले विषयों को शामिल किया जा रहा है।

प्रयोजनवादी, उपयोगितावादी सिद्धान्त भी श्रीमद् भगवद् गीता दर्शन से प्रभावित है तथा विद्यालीय अध्ययन की विषय वस्तु को बालक की क्रियाशीलता, रूचि तथा अनुभव पर आधारित करने का पक्ष लेते हैं। श्रीमद् भगवद् गीता दर्शन आदर्शवादियों की प्रेरणा स्त्रोत है। महात्मा गांधी महान आदर्शवादी है परन्तु उनकी शिक्षा योजना का लक्ष्य प्रयोजनवादियों की भांति केवल भौतिक मूल्यों के लिए बालकों को योग्य बनाना ही नहीं है बल्कि पहले से जो मूल्य उनमें अन्तर्निहित है उनकी अनुभूति कराना है। श्री गीता दर्शन की भांति सभी अन्य आदर्शवादियों का लक्ष्य नैतिक व्यक्ति निर्मित करना है जो एक सच्चे अर्थ में सामाजिक जीवन व्यतीत करने के योग्य होता है।

श्रीमद् भगवद् गीता के पाठ्यक्रम में आत्मा का तथा मानव की उन क्रियाओं का जो इस विश्व में स्थायी महत्व के है, प्रतिविम्ब दिखाई देता है; क्योंकि 'मानव आत्मा का शानदार प्रदर्शन' है। इसलिए विद्यालयीय क्रियाओं में दो प्रकार के कार्यो की योजना होनी चाहिये। प्रथम वर्ग की क्रियाओं को विषय के रूप में नही रखा जा सकता बल्कि उसे तो सम्पूर्ण विद्यालयीय पर्यावरण में व्याप्त होना चाहिये ताकि बालकों का चरित्र व व्यावहार उत्तम बनाया जा सके। दूसरे वर्ग की क्रियाओं में मातृभाषा, कला जैसे रचनात्मक कार्यो को तथा विज्ञान गणित, स्थानीय व सामयिक विज्ञान, इतिहास व भूगोल आदि को शामिल किया जाना चाहिए ।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार मानव की आध्यात्मिक क्रियायें बौद्धिक, नैतिक एवं सौन्दर्यात्मक हैं। इन क्रियाओं का प्रयोग सत्यं शिवम् और सुन्दरम् की प्राप्ति के लिये होना चाहिये। बालक के व्यक्तित्व के समन रूप विकास हेतु शरीर रक्षा की क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल करना पड़ेगा। क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य एवं

आध्यात्मिक वृद्धि के शिक्षा व व्यक्ति, दोनों अपाहिज हो जाते है।

पाठ्यक्रम के विषय जीवन से सम्बन्धित होना चाहिये :– गीता हमें बतलाती है कि शिक्षा जीवन के लिये होती है। बालक के सम्पूर्ण जीवन का विकास करना शिक्षा का कार्य है। उसके शरीर, मन व आत्मा तीनों प्रकार की क्षमताओं का विकास ही सम्पूर्ण जीवन का विकास माना जाता है। शिक्षा व पाठ्यक्रम दोनों का जीवन से अभिन्न सम्बन्ध है।

एरिक जेम्स ने भी श्रीमद् भगवद् गीता से प्रभावित होकर लिख है कि:–

"जिन लोगों ने कभी व्यावहारिक क्रियायें नहीं की हैं– वे जीवन से सम्बन्धित तथ्य के प्रति स्पष्ट विश्लेषण करने में असमर्थ होते हैं। परन्तु सत्य तो यह है कि सौन्दर्यात्मक अनुभव दार्शनिक चिन्तन, नैतिक व राजनैतिक समस्याओं से सम्बन्धित वाद विवाद जीवन से किसी भी प्रकार असम्बन्धित नहीं है। यह सत्य है कि हमारे शिक्षा के पाठ्यक्रम का सम्बन्ध हमारे जीवन से होना चाहिये परन्तु "जीवन से सम्बन्धित कथन का गम्भीर अर्थ है। उसका उतना महत्व नहीं है जितना इसे प्रयोग करने वाले अनुमान लगाते हैं। शिक्षा के आर्थिक व सामाजिक पहलू के अर्थ का चिन्तन करते हुये हमें आत्मा व मन के विकास के लक्ष्य को ध्यान से नहीं हटाना चाहिये।"26

उपर्युक्त कथन महत्वपूर्ण है। आज किसी भी पाठ्यक्रम की पुनर्रचना में विषयों का जीवन से सम्बन्धित होने के विचार को अधिक महत्ता प्रदान की जा रही है।

पाठ्यक्रम को व्यवसाय परक बनाने पर बल :– गीता के अनुसार पाठ्यक्रम व्यावसाय परक होना चाहिए। गीता के अनुसार भारतीय समाज को चार वर्गों में विभक्त किया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। सभी वर्ग अपने निर्धारित कर्म के अनुसार व्यावसाय करते थे। परन्तु श्रीमद् भगवद् गीता में यह भी कहा गया

है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता है। अर्जुन को समझाते हुये श्री कृष्ण ने कहा है कि हे अर्जुन –

ब्राह्मण क्षत्रियवैश्वान् शूद्राणां च परंतप ।

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।27

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों तथा शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्नगुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं। उनकार्यों को प्रत्येक को स्वभावतः करना चाहिए।

हम जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका के लिए कार्य करना चाहिए। शिक्षा का प्रथम कार्य यही है कि वह व्यक्ति को अपनी रोजी रोटी कमाने की क्षमता पैदा करने के योग्य बनाये।

वर्तमान युग औद्योगिकी एवं तकनीकी का युग हे। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने लोगों के दृष्टिकोंण को अर्थ परक बना दिया है। इसलिए कार्य को जीवन में प्राथमिकता दी जाने लगी है। शिक्षा के अर्थ का सम्बन्ध वर्तमान जीवन के संदर्भ से लगाया जाने लगा है। शिक्षा व्यक्ति को सम्पूर्ण जीवन के लिए तैयार करती है न कि जीवन के किसी विशेष पक्ष के लिए। देश की एकता, अखण्डता एवं राष्ट्र के निर्माण के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवयकता है जो कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी हो। अतः गीता इस बात पर जोर देती है कि शरीर, मन और आत्मा जिस विद्या से विकसित हो और परिपुष्ट हो वही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा का आधार पाठ्यक्रम है वह ऐसा होना चाहिए जिससे मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक सभी गुणों का विकास हो। बालक अपनी योग्यताओं और क्षमताओं को समक्ष सके। प्रत्येक बालक आत्मानुभूति एवं अभिव्यक्ति की क्षमता को प्राप्त कर सके। इसलिए श्रीमद् भगवद् गीता दर्शन मानव के जीवन में श्रम व क्रिया को विशेष महत्व देती हे ताकि वे स्वावलंबी एवं आत्म निर्भर बन सके।

अतः उत्तम प्रकार के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए –

1. पाठ्यक्रम में शिक्षा के उद्देश्यों की छाप हो ताकि बालक जिस संसार में रहता है उसे समझा सके।

2. विद्यालयीय पाठ्यक्रम की शिक्षा से बालकों को सामुदायिक जीवन का पत्यक्ष अनुभव हो।

3. पाठ्यक्रम के विषयों द्वारा जीवन के महान कार्यों एवं आदर्शों को उद्घटित करने की खोज की जाये।

अतः शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे बालक अच्छे नागरिक बनकर देश हित में सहयोग दे तथा स्पष्ट चिन्तन एवं नये विचारों को ग्रहण करने की योग्यता का विकास करें। विद्यार्थियों में अनुशासन, सहयोग, सामाजिकता, संवेदनशीलता और धैर्य जैसे गुणों का विकास कियाजा सके।

देशभक्ति की भावना के विकास के साथ–साथ उत्पादनशीलता तकनीकी एवं व्यावसायिक दक्षता का विकास करना भी पाठ्यक्रम का उद्देश्य है। गीता के अनुसार शिक्षा का कार्य विद्यार्थियों में क्रियात्मक शक्तियों को उद्घटित करना है ताकि वे अपने पूर्वजों की सांसकृतिक विरासत की प्रशंसा कर सके और अवशिष्ट समय में आनन्द उठा सके।

इसलिए पाठ्यक्रम उद्योग केन्द्रित, समाज केन्द्रित एवं भौतिक परिवेश केन्द्रित होना चाहिए।

इस प्रकार की शिक्षा से मस्तिष्क एवं आत्मा का सर्वोच्च विकास होगा। ज्ञान की अखण्डता को ध्यान में रखकर विषयों को सम्बन्धित करके पढ़ाना ज्ञान की रक्षा करना है तथा सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश में सह सम्बन्ध की अनुभूति कराना

है।

किसी भी योजना का क्रियाशीलन उसके क्रियान्वय तथा प्रगति में निहित है। अपने आप ज्ञान बालक के जीवन की वास्तविक स्थितियों से प्राप्त होता है।

प्राचीन समय में शिक्षा आश्रमों में दी जाती थी एवं बालक को पूर्ण मानव बनाया जाता था।

भारतीय दर्शन के अनुसार बालक 7 वर्ष की अवधि में आश्रम में जाकर निम्न प्रकार से स्वयं को शिक्षित करते थे उन्हें हम पाठ्यक्रम के आधार पर इस प्रकार विभाजित कर सकते है।

1. स्वास्थ्य एवं सफाई के अभ्यास की क्रियायें
2. भोजन रखने से सम्बन्धित क्रियायें
3. पानी पीने व उसके अन्य उपयोग के कार्य का ज्ञान
4. बागवानी का अभ्यास–तत्पश्चात्
5. नागरिक जीवन का अभ्यास
6. स्वावलम्बन का अभ्यास
7. मूल उद्योग का अभ्यास
8. सांस्कृतिक जीवन का अभ्यास
9. धर्म की शिक्षा
10. कर्म की शिक्षा
11. आत्म बोध की शिक्षा ।

इस प्रकार बालक के सर्वतोमुखी विकास के लिए वाल्यवस्था से ही प्रयासरत होना चाहिए।

संक्षेप में श्रीमद भगवद् गीता के अनुसार पाठ्यक्रम की विषय बार सूची अधोलिखित प्रकार से दी जा सकती है :–

1. वेदों का ज्ञान एवं आत्मानुभूति
2. प्राचीन भारतीय संस्कृति का ज्ञान
3. मातृभाषा
4. धर्म की शिक्षा
5. गणित
6. सामाजिक अध्ययन
7. सामान्य विज्ञान – सूर्य चन्द्रमा , आकाश, तारे एवं वर्षा का ज्ञान
8. चित्रकला
9. संगीत
10. योग व शारीरिक शिक्षा
11. इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र
12. शस्त्र ज्ञान

उपर्युक्त सभी विषय अलग–अलग विषय के रूप में नहीं बल्कि मूल लक्ष्य को आधार मानकर उससे ही समस्त विषय सम्बन्धित करके पढ़ाये जाने चाहिए। श्रीमद् भगवद् गीता दर्शन पर आधारित यह पाठ्यक्रम बालक के सम्पूर्ण विकास में सहायक एवं निर्माणक हो सकता है, ऐसा मेरा मन्तव्य है।

शिक्षण विधियाँ :- श्रीमद् भगवद् गीता विश्व भर में भारत की आध्यात्मिक ज्ञान के मणि के रूप में विख्यात है। यह मानव के स्वभाव उसके परिवेश तथा आत्म–साक्षात्कार के विाान के मार्गदर्शक का अचूक कार्य करती है। अतः गीता दर्शन क्रियात्मक विधि–करके सीखने स्वानुभव द्वारा सीखने जैसी विधियों को महत्व देती है। क्रिया द्वारा ज्ञान को विकसित करना ही श्रीमद् भगवद् गीता की शिक्षण विधि का मुख्य आधार है।

भारतीय दर्शन उद्‌देश्य पूर्ण शिक्षण व निर्देशन में विश्वास करता है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि बालक को केवल पढ़ाया जाय और सीखने के लिए अवसर न दिया जाय। रूसों ने भी कहा है –

"अपने विद्यार्थियों को मौखिक शिखण मत दो, उन्हें मात्र अनुभव से सीखने दो।"28

गीता के अनुसार सामाजिक प्राकृतिक सम्पर्क द्वारा बालक को शिक्षित करने के विधिः– गीता के अनुसार बालक सामाजिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण के द्वारा ही अपने स्वास्थ्य का विकास करता है। सामाजिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य की प्रतिक्रिया द्वारा ही बालक के अनुभव का निर्माण होता है। बालक विकट परिस्थितियों में भी अपने अनुभव द्वारा सफलता पूर्वक कार्य करता है। प्रकृतिवादी शिक्षा में वास्तविक वस्तुओं के निरीक्षण, प्रयोग तथा क्रियाशीलन पर बल दिया जाता था।

वास्तव में कुछ क्रियायें प्रकृति के द्वारा ही होती है। उन क्रियाओं से अपना सम्बन्ध मान लेने से कर्म होता है इससे व्यक्ति शिक्षित होता है।

शरीर का बालक से जवान होना, नाड़ियों में रक्त प्रवाह होना, श्वासों का आना जाना, भोजन का पचना आदि क्रियाएं जिस समष्टि प्रकृति से होती हे, उसी प्रकृति से खाना–पीना, चलना, उठना, बैठना, देखना, बोलना सोना, जागना, दान देना,

मारना, लड़ना आदि क्रियाएं भी होती हैं। मानव प्रकृति से ही इनकी शिक्षा ग्रहण करता है।

आधुनिक युग में यही आश्रम व्यवस्था हैं Boarding School के रूप में दिखाई देती है। जिस प्रकार गीताकालीन युग में आश्रम, प्रकृति से चारों ओर से ढका हुआ होता था तथा बालक के सर्वतोमुखी विकास के लिए प्रयास किया जाता था वैसे ही उन के आधार पर Boarding School का रूप प्रकट हुआ है।

बालक की क्षमता, योग्यता एवं रूचि के अनुसार शिक्षा :- श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार बालक की क्षमता, योग्यता एवं रूचि के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। बालकों के समक्ष सर्वाधिक प्रत्यक्ष अनुभव करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

पारम्परिक शिक्षा तथा पुस्तकीय ज्ञान मानव को उपजीवी बनाने वाली सभ्यता है। गीता बालक को शिक्षित एवं ज्ञानी बनाने क लिए जिन विधियों का प्रयोग करती है वे सभी मनोविज्ञान सम्मत है –

(Questioning Method)

1. प्रश्नोत्तर विधि – सर्वप्रथम सम्पूर्ण गीता प्रश्नोत्तर विधि पर आधारित है। अर्जुन एक शिष्य के भांति, श्री कृष्ण रूपी शिक्षक से प्रश्न पूछता है तथा श्री कृष्ण एक शिक्षक की भांति उसके सभी प्रश्नो का उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा शान्त करते है; और उसका मार्गदर्शन करते है। अर्जुन जब अपने कर्तव्य का निर्णय करने में असमर्थता दिखाता है तो वह अपने शिक्षक श्री कृष्ण से प्रश्न पूछता है कि–

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामित्वां धर्म संमूढचेताः।

यच्छ्रैयः स्यान्निश्चिं श्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्।

हे प्रभु जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ और शरणागत हूँ मुझे शिक्षित कीजिए। यहाँ छात्र स्वयं जिज्ञासु बनकर आया है यही एक मनोवैज्ञानिक क्षण है जिसे ज्ञानी शिक्षक श्री कृष्ण ने शिक्षित करने में कोई कसर नहीं रखी। इस तथ्य को प्रत्येक शिक्षक को समझना चाहिए।

उपर्युक्त उदाहरण प्रश्नोत्तर विधि का है जिसमें शिष्य, शिक्षक से प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा को शान्त करता है। प्रश्नोत्तर विधि को सह–शिक्षण विधि के रूप में मान्यता दी गई है।

व्याख्यान विधि (Lecture Matod) – श्री कृष्ण जी एक शिक्षक की भांति अर्जुन रूपी शिष्य को उपदेश देते हैं। अर्जुन द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर व्याख्यान विधि द्वारा देते है। छोटी से छोटी बात को विस्तार पूर्वक, उदाहरणों के साथ बताते हैं। अर्जुन शिष्य रूप में कृष्ण की शरण ग्रहण करता है और कृष्ण उससे नश्वर भौतिक शरीर तथा नित्य आत्म के मूलभूत अन्तर की व्याख्या करते हुए शिक्षा देते हैं।

4. करके सीखना – यह एक प्रकार से प्रयोग विधि है जिसमें छात्र जिज्ञासा को शान्त करने के लिए कोई कार्य करता है तथा उसके परिणाम स्वरूप ज्ञान ग्रहण करता है इस विधि के द्वारा शिष्य को जो ज्ञान प्राप्त होता है वह स्थायी होता है।

5. स्वानुभव द्वारा सीखना – इस शिक्षण विधि में छात्र अपने अनुभव के द्वारा सीखते हैं जैसे आग की तपन से छात्र को पता चलता है कि यह गर्म है। यही स्वानुभव द्वारा सीखना कहलाता है।

6. समवाय विधि – समवाय विधि में बालक के पूर्व अनुभव या ज्ञान को उसके वर्तमान जीवन से सम्बन्धित करके जीवन यहाँ ज्ञान व कर्म में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। समवाय विधि से शिक्षण के अनेक लाभ हैं। रतन

प्राप्त किया जाता है–

1. ज्ञान की समग्रता एवं एकतत्व की अनुभूति
2. विषयों के अध्यापन में रोचकता का विकास
3. विषयों का स्पष्ट होना
4. पाठ्यक्रम का भार कम होना
5. बालकों के व्यावहारिक ज्ञान में वृद्धि
6. विशिष्टीकरण के दोषों का दूर होना
7. अनुभव का सम्बन्धीकरण
8. बालकों के सर्वांगीण विकास में सहायता
9. समय की वचत

7. श्रवण, मनन तथा निदिध्यामन विधि – इसके अतिरिक्त श्रीमद् भगवद् गीता में श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन विधियों को भी बताया गया है। यह गीता में ज्ञानप्राप्ति की प्रचलित प्रक्रिया है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार 'गुरू' के पास निवास करते हुए शास्त्रों को सुनकर तात्पर्य का निर्णय करना तथा उसे धारण करना 'श्रवण' है। श्रवण से प्रमाणगत संशय दूर होता है। परमात्मतत्व का युक्ति–प्रयुक्तियों से चिन्तन करना 'मनन' हे। मनन से पमेयगत संशय दूर होता है। संसार की सत्ता को मानना और परमात्मतत्व की सत्ता को न मानना विपरीत भावना कहलाती है। विपरीत भावना को हटाना 'निदिध्यासन' है। प्राकृत पदार्थ मात्र से सम्बन्ध–विच्छेद हो जाय और केवल एक चिन्मय तत्व शेष रह जाय–यह तत्वपदार्थ संशोधन है। इसे ही तत्व–साक्षात्कार कहते है। स्वामी रामसुखदास जी

ने कहा है–

"जो सांसारिक भोग और संग्रह में लगे हुए है, ऐसे मनुष्यों के द्वारा श्रवण होता है शास्त्रों का। 'मनन' होता है, विषयों का 'निदिध्यासन' होता है 'रूपयों का' और 'साक्षात्कार होता है "दुःखों" का।"29

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में जिन विधियों का वर्णन किया गया है वे सभी मनोविज्ञान सम्मत है। संक्षेप में प्रकरान्तर से जिन शिक्षण विधियों का प्रयोग श्रीमद् भगवद् गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को शिक्षा प्रदान करते हुए प्रयोग किया है वे इस प्रकार हैं–

1. करके सीखना
2. स्वानुभव द्वारा सीखना
3. निरीक्षण विधि
4. क्रियाशीलन विधि
5. आगमन–निगमन विधि
6. समवाय विधि
7. प्रश्नोत्तर विधि
8. व्याख्यान विधि
9. श्रवण मनन तथा निदिध्यासन विधि
10. प्रदर्शन विधि–इसका प्रयोग श्री कृष्ण ने अपने विराट् रूप को दिखाकर अर्जुन क समस्त संशयों का छेदन कर उसे कर्मयोगी बनाया।

अनुशासन – श्री मद्भगवद् गीता दर्शन जीवन में सवानुशासन को विशेष महत्व देती है। साथ ही यह प्रभावात्मक अनुशासन पर भी बल देती है, जिसमें अध्यापक अपने प्रभाव से बालकों में स्वेच्छा से आज्ञा पालन व अनुशासित रहने की प्रवृत्ति को विकसित कर देता है। यही अनुशासन का स्वर्णिम नियम है। महात्मा गांधी भी इसी विचार से सहमत थे। वे कहते हैं कि–

"बालकों को मारपीट कर सिखाने के खिलाफ मैं सदा से रहा हूँ" दूसरों को

आत्मज्ञान देने के प्रयत्न में मैं स्वयं आत्मा के गुणों को अधिक समझाने लगा हूँ।''30 गीता में भी कहा गया है कि–

''अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संश्यात्मा विनश्यति ।''31

अर्थात विवेकहीन, श्रद्धारहित और संशययुक्त मनुष्य से अवश्य नष्ट हो जाता है।

अर्थात जिस मनुष्य का विवेक नष्ट हो गया है, जिसमें श्रद्धा नहीं है और जो हमेशा संशय में रहता है वह शिक्षा रहित है और ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। क्योंकि ज्ञान प्राप्ति के लिए बालक में श्रद्धा तथा अनुशासन आवश्यक है।

अंग्रेजी में भी एक कहावत है–

"Wise men preach discipline, great men practise it, while fools defy it."

अर्थात विद्वान लोग अनुशासन का उपदेश देते है, महान लोग अनुशासन का अभ्यास करते है; जबकि मूर्ख इसकी उपेक्षा करते है।

आज शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन हीनता को हम आसानी से देख सकते हैं। इनकी उच्छृंखलताओं से विश्व विद्यालयीय वातावरण पूर्ण रूप से दूषित एवं विषाक्त हो गया है। इस कारण समाज के रचनात्मक कार्यों की प्रगति अवरूद्ध हो गई है। यहाँ तक कि अनुशासन के अभाव में प्रबन्ध तन्त्र एवं प्रशासन ढीले पडते जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति के विषय में हम सभाओं में, क्लबों में, रेल के डिब्बों में, बसों में, ट्राम गाड़ियों में तथा दैनिक वार्तालाप में साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों में प्रायः आलोचना व प्रत्यालोचना को सुनने के आदी हो गये हैं।

प्रायः विद्यालयों एवं विश्व विद्यालयों में अनुशासन हीनता की कई घटनाएं हम देखते हैं, कहीं विद्यार्थियों की हड़ताल, तोड़फोड़, कक्षा बहिष्कार, अध्यापक, पर्यवेक्षक,

अधीक्षक पर आक्रमण आदि सामान्य अनुशासन हीनता की घटनाएं मानी जाने लगी हैं।

आज हम तेजी से पाश्चात्य संस्कृति की ओर खिंचते चले जा रहे हैं। जो केवल चकाचौंध, फैशन और भोगवाद की संस्कृति है। हमारे युवा ही नहीं प्रौढ़ भी क्लब संस्कृति से पूर्णतया प्रभावित हैं। चार्वक दर्शन अर्थात खाना–पीना, मौज उड़ाना ही जीवन का लक्ष्य बनता जा रहा है। आज हर प्रतिभाशाली ही नहीं, सामान्य युवा भी कैरियर केन्द्रित हो गया है। कैरियर से उसका उद्देश्य आदर्श डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक या वकील बनाना नहीं है, बस वह तो चाहता है अमीर बनाना और वह भी धीरे–धीरे परिश्रम करके नहीं, बस कैसे भी बन जाए, पर जल्दी से बने।

यह धनलिप्सा, भोगलिप्सा उसे शाश्वत जीवन मूल्यों से, चिरंतन सत्य से, माननीय गुणों से और अपनी संस्कृति से दूर ले जा रहा है। आज के बालक के समक्ष घर में, स्कूल में और बाहर समाज में उसे अनुशासन हीनता ही देखने को मिलती है।

आज का बालक दम्मी, घमंण्डी, अज्ञानी, मद में डूबा हुआ, आमोद–प्रमोद करना चाहता है तथा अज्ञान के वश में होकर जो नाना प्रकार के शास्त्र–विरूद्ध सिद्धान्तों की कल्पना करके उनको हठपूर्वक धारण किये रहते हैं। उनके खान–पान, रहन–सहन, बोल–चाल, व्यवसाय–वाणिज्य, देन–लेन, बर्ताव–व्यावहार आदि के सभी नियम शास्त्र विरूद्ध होते है; यही अज्ञानी बालक भ्रष्ट हो जाते हैं अनुशासनहीन हो जाते हैं भ्रष्ट आचरण वाले हो जाते है। ऐसे प्राणियों की ओर इंगित करते हुए श्रीमद् भगवद् गीता मे श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि हे अर्जुन–

कामममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विता ।

मोहादगृहीत्वासदग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।32

दम्भ, मान और मद से युक्त आसानी व अनुशासनहीन मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर, अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके और भ्रष्ट आचरणों को धारण करके संसार में विचरते है।

अब प्रश्न यह उठता है इस प्रकार की अनुशासन हीनता को समाप्त कर बालक को शुद्ध आचरण वाला कैसे बनाया जाय। अनुशासन हमारा नैतिक गुण है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व का, समाज की सामाजिक उन्नति का और राष्ट्र की जीवन शक्ति का मापदण्ड है। शिक्षा पद्धति के मूल में अनुशांसन का भाव निहित है; क्योंकि बिना अनुशासन की शिक्षा बिना पतवार वाले जहाज की तरह है।

संकुचित अर्थ में आज्ञापालन को अनुशासन समझा जाता है किन्तु विस्तृत अर्थ में यह चरित्र के प्रशिक्षण के रूप में मान्य है। अधिगम प्रक्रिया हेतु अनुशासन अनिवार्य है। अनुशासन को नार्मन मैकमन ने अपनी पुस्तक 'द चाइल्डस पास टू फ्रीडम'33 में तीन रूपों में प्रस्तुत किया है।

1. दमनात्क 2. मुक्त्यात्मक 3. प्रभावात्मक

पारम्परिक प्रारम्भिक विद्यालयों में अनुशासन का मूल भय था।

'मुक्त्यात्मक सिद्धान्त' प्रकृतिवादियों को प्रिय है क्योंकि ये आत्म प्रकाशन मं विश्वास करते हैं परन्तु स्वतन्त्रता से आत्म प्रकाशन पर सीमा से परे बल देना बालक को स्वच्छंद बनाना है।

अनुशासन के प्रभावात्मक सिद्धान्त का आधार नैतिकता है। विद्यार्थी शिक्षक के व्यक्तिगत प्रभावों से प्रभावित होकर विनय का पालन करता है। इस प्रकार अध

यापक अपने प्रभाव से बालकों में स्वेच्छा से आज्ञा पालन व अनुशासित रहने की प्रवृत्ति को विकसित कर देता है। इस सिद्धान्त का आन्तरिक भाव तो यह है कि उन दशाओं की उत्पत्ति की जाय जहाँ पर दण्ड को महतव देने की आवश्यकता ही न पड़े।

ये तीनों प्रकार के साधन अनुशासन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार संस्कार, आचरण की पवित्रता एवं परम्पराओं की समझ इसके प्रमुख घटक है। इन सबका सूत्रबद्ध करता है अनुशासन। आज अनुशासन के स्थान पर उच्छृंखलता एवं स्वच्छन्दता बढ़ रही है। सत्ता न परिवार में स्वीकार्य है, न स्कूल में और न समाज में जबकि संस्कार शीलता सभी महापुरूषों एवं श्रीमद् भगवद् गीता जैसे अनेक पवित्र ग्रन्थ अनादि काल से सिखाते आ रहे हैं।

भविष्य सामान्यतः वर्तमान पर ही आधारित होता है। यदि वर्तमान प्रदूषित है तो भविष्य कैसे पवित्र होगा। यदि हम चाहते हैं कि नया भारत सुसंस्कृत होकर विश्व के समक्ष प्राचीन काल की भांति संस्कार का आदर्श प्रस्तुत कर सकें तो यहीं होगी प्रभावी एवं सार्थक संस्कार शिक्षा और तभी होगा अनुशासित बालक, समाज एवं राष्ट्र।

श्रीमद् भगवद् गीता संस्कार शिक्षा पर बल देती है। यदि हम स्वयं सहिष्णुता,सेवाभाव, नम्रता, सत्यता, निर्भयता, अनुशासन, परोपकार, निर्लिप्तिता, करूणा एवं परिश्रम शीलता को अपनायें तो हमारा व्यक्तिगत आचरण बच्चों को वह सब कुछ सीखने को प्रेरित करेगा जो हम चाहते है। श्रीमद् भगवद् गीता बालक को शिक्षित करने तथा ज्ञानी बनाने क लिए तीन प्रकार की शुद्धता बताती है –

1. शरीर सम्बन्धी तप अथवा शुद्धता

2. वाणी सम्बन्धी तप अथवा शुद्धता

3. मन सम्बन्धी तप अथवा शुद्धता

श्रीमद् भगवद् गीता में शरीर तप के सम्बन्ध में कहा गया है कि

देवद्विजगुरूप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।34

देवता, ब्राह्मण, गुरू और ज्ञानी जनों का पूजन, पवित्रता सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है। इसी प्रकार वांणी सम्बन्धि तप के सम्बन्ध में अध्याय 17 श्लोक 15 में कहा गया है –

"जो उद्वेंग न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद–शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम जप का अभ्यास है – वही वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।" तथा अध्याय 17 श्लोक 15 में मन सम्बन्धि तप के विषय में कहा गया है कि–

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मर्विनिग्रहः ।

भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।35

मन की प्रसन्नता, शान्त भाव, भगवद्चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तः करण के भावों की भलीभांति पवित्रता ही मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।

शरीर, मन और वाणी की शुद्धता ज्ञानार्जन के लिए परम आवश्यक है। यही संस्कार शिक्षा है। जो श्रीमद् भगवद् गीता में हमें प्रदान करती है इस संस्कार शिक्षा को कहकर नहीं बल्कि करके दिखाना है। प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करना है। तभी बालक का समुचित विकास होगा।

स्वानुशासन के लिए आवश्यक तत्व अधोलिखित है :–

1. आदर्श गुरू
2. उद्देश्यों की स्पष्टता
3. लक्ष्य को प्राप्त करने की उत्सुकता
4. शान्ति का आयोजन
5. क्रोध पर नियन्त्रण
6. अहम् का त्याग
7. इन्द्रिय निग्रह
8. मन की प्रसन्नता
9. मदुभाषी
10. आत्म–नियन्त्रण

कहने या तात्पर्य यह है कि बालकों के सच्चे अध्यापक को पिता व अभिभावक के रूप में उनके हृदय को अवश्य स्पर्श करना चाहिए। अध्यापक की कमियों और बुराइयों के कारण ही विद्यार्थियों में अनेक कमियाँ और गलतियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार हम जानते हैं कि बालक को अनुशासन में रहते हुए अपने गुरू का आदर करना चाहिए – तथा सच्चे अध्यापक को पिता व अभिभावक के रूप में विद्यार्थी का मार्ग दर्शन करना चाहिए। यही अर्जुन तथा श्री कृष्ण के संवाद से गीता में परिलक्षित होता है।

इस प्रकार अनुशासन की अवधारण, स्वक्रिया स्वानुभूति तथा आत्म नियन्त्रण पर आधारित है।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षक :– अध्यापक समाज का आदर्श व्यक्ति, ज्ञान का पुंज है। अतः उसे सत्य का आचरण करने वाला होना चाहिए। इस व्यावसाय को केवल व्यावसाय के रूप में स्वीकार करने वाला व्यक्ति कभी आदर्श अध्यापक नहीं हो सकता। एक अध्यापक आदर्श अध्यापक तभी हो सकता है जब वह इस व्यावसाय को सेवा–कार्य के रूप में स्वीकार करें। उसे बच्चों के पिता, मित्र, सहयोगी और पथ–प्रदर्शक, अनेक रूपों में कार्य करना होता है, इसलिये उसे सहिष्णु, उदारचेता और धैर्यवान होना चाहिए।

श्रीमद् भगवद् गीता में श्रीकृष्ण एक ऐसे शिक्षक के रूप में है जो अपने जीवन को एक आदर्श के रूप में प्रकट कर सके है! तभी तो उनका शिष्य अर्जुन उनसे विनम्रता पूर्वक कहता है कि हे जनार्दन, हमें क्या करना है। बताइये। मूल्य शिक्षा का प्रभाव व्याख्यान विधि से सर्वाधिक प्रभावी होता है इसी विधि को श्री कृष्ण ने अंगीकार किया है। यहाँ तक कि सहगामी क्रियाओं एवं पुस्तकों के माध्यम से भी इस शिक्षा को प्रदान किया जा सकता है।

श्रीमद् भगवद् गीता आत्म ज्ञान पर विशेष बल प्रदान करती है। गीता के अनुसार अध्यापक द्वारा बालक को व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान दिया जाना चाहिए। ज्ञान दो प्रकार का होता है 1–एक विषयगत ज्ञान तथा दूसरा आत्मगत ज्ञान। श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार कोई व्यक्ति चाहे लाखों चीजे जान लें, चाहें पूरे जगत को जान ले; लेकिन यदिवह स्वयं को नहीं जानता तो वह अज्ञानी ही है। आज विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत से साधन है। यदि अध्यापक प्रज्ञावान नहीं है केवल जानकार है तो सही रूप में शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर सकता।

श्री कृष्ण जैसे अध्यापक जानकार ही नहीं है बल्कि प्रज्ञावान भी है। तभी तो

वह अर्जुन जैसे शिष्य को शिक्षा रूपी उद्देश्य को प्राप्त कराने में सफल हो सकें; क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य बालक के अर्न्तनिहित गुणों व शक्तियों का विकास करना है अर्थात उसे आत्मबोध, आत्मज्ञानी, विवेकशील और चैतन्य बनाना है। कृष्ण ने अर्जुन को ऐसा ही बनाया था।

इस प्रकार अध्यापक को पिता तुल्य होकर बालक के कल्याण को सोचना चाहिए। शिक्षक को ज्ञानी, संयमी और बच्चों के प्रति समर्पित होना चाहिए । शिक्षा की सफलता के लिए शिक्षकों में अधोलिखित गुण होने चाहिये।

एक शिक्षक का सर्वप्रथम गुण उसका सर्वागीण विकसित व्यक्तित्व है। बालक में अनुकरण से सीखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। अनुकरण करके सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण है। परिवार का जिस प्रकार प्रभाव बालक के चरित्र व मन पर पड़ता है उसी प्रकार शिक्षक भी विद्यार्थियों के चरित्र व मस्तिष्क को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। अतः शिक्षक को स्वस्थ, उच्च नैतिक चरित्र वाला, विकसित मन और मस्तिष्क तथा श्रेष्ठ सामाजिक गुणों से युक्त होना चाहिये। चरित्र की सामाजिक लपेट व्यक्तित्व की अपेक्षा कहीं अधिक है। आर0एम0 ओगडन के अनुसार –

"व्यक्तित्व मनुष्य की आन्तरिक जीवन की अभिव्यक्ति है तथा चरित्र उसकी क्रियाओं की सफलताओं की अभिव्यक्ति हैं।"36

विद्यार्थी पर शिक्षक के शुद्ध आचरण, सच्चरित्रता विश्वास, विचार, दैनिक व्यवहार, समय की पाबन्दी आदि का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता हे। गीता के अनुसार शिक्षक के तीन कार्य हैं–

1. शिक्षण 2. निर्देशन 3. शासन

इन कार्यों के लिए चरित्र की प्रधानता की आवश्यकता होती है। शिक्षक को

ज्ञान ग्रहण करने की तीव्र भावना से इस वैज्ञानिक युग में जिज्ञासु होना चाहिए। इसके बिना वह अपने सामयिक कार्य में सफल नहीं हो सकता। रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा है कि–

"एक शिक्षक कभी सच्चाई के साथ नहीं पढ़ा सकता जबकि वह स्वयं नहीं सीखता हो।"

शिक्षक को स्वयं प्रयोगात्मक दृष्टिकोंण के साथ अनुसंधान कार्य में लगे रहना चाहिये। विचारवान बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले अध्यापक ही श्रेष्ठ शिक्षक की कोटि में आते है! अतः धर्य निष्पक्षता एवं न्याय, सहयोगात्मक भाव, प्रेम और सहानुभूति, प्रसन्नता, मिलनसारिता, विनोदप्रियता, मितभाषिता, श्रम व कार्य के प्रति निष्ठा, उच्च विचार, सरल जीवन के प्रति आस्था, उदारता, सन्ह्वता, नेतृत्वशीलता आदि सामाजिक गुणों का होना शिक्षक में परम आवश्यक है। इसके अतिरिक्त शिक्षक को स्थिर एवं अटल बुद्धि वाला होना चाहिए। गीता में स्थिरप्रज्ञ का लक्षण बताते हुए श्री कृष्ण कहते हैं –

वीत रागभय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते ।37

जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये है, ऐस लोग स्थिरबुद्धि के कहा जाते हैं।

इसप्रकार शिक्षक को अचल बुद्धि वाला ज्ञानी होना चाहिए।

इसके अतिरिकत एक शिक्षा को अपनी मातृभाषा पर अधिकार :–

पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों का ज्ञान :–

तथा उसे कलात्मक ज्ञान तथा सृजन शक्ति होनी चाहिए :–

साथ ही शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान तथा अध्यापन का अनुभव :–

शिक्षक को एक मनोवैज्ञानिक के तरह बालक को समझना चाहिए ; क्योंकि बालक–बालिकाओं के स्थायी भाव, संवेगों, स्वभावों, रूचियों, बुद्धि लब्धियों आदि को बिना समझे, शिक्षणकार्य को सफलता पूर्वक सम्पादित करना कठिन होगा। शिक्षक को वैयक्तिक विभिन्नताओं का ज्ञान होना चाहिए। इससे शिक्षाण में शक्ति, साधन व समय तीनों की बचत होती है। उपर्युक्त सभी कार्यों को केवल एक प्रशिक्षित अध्यापक ही कर सकता है अतः उसका प्रशिक्षित होना अनिवार्य हे। आज की बदलती परिस्थितियों में जहाँ नई–नई शिक्षा पद्धतियाँ विकसित हो रही वहाँ अध्यापकों को शिक्षण कला में निपुण बनाना नितान्त अनिवार्य हो गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अध्यापक को प्रशिक्षण द्वारा शिक्षण पद्धतियाँ एवं बाल मनोविज्ञान समझाया जा सकता है; परन्तु मूल्यों की शिक्षा पा सकती है। शिक्षक, माता–पिता नेता और उपदेशक समाज के चार स्तम्भ माने जाते हैं। उनका अनुकरण करके ही शिक्षा ग्रहण की जा सकती है।

आज हमें श्री कृष्ण जेसे शिक्षक की आवश्यकता है। शिक्षक, शिक्षार्थी को अपने व्यावहार से प्रभावित करता है जो स्थायी होता है। मूल्य शिक्षा के माध्यम से ही छात्र सत्य, अहिंसा, एवं सही/गलत का निर्णय करने में समर्थ होता है। यहीकारण है कि अर्जुन श्री कृष्ण जेसे शिक्षक के सानिध्य में मूल्यपरक शिक्षाओं को ग्रहण कर, क्या उचित है? क्या अनुचित है? इसका निर्णय कर युद्ध भूमि में कर्तव्य परायण बन सके।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार शिक्षार्थी :– श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार वही शिक्षार्थी है जिसमें ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है। अपने गुरू के प्रति उसमें श्रद्धा होनी चाहिए। विद्यार्थी को स्वाध्यय में आलस्य नहीं करना चाहिए।

विद्यार्थी को मन, कर्म तथा वचन से शुद्ध होना चाहिए। शिष्य एवं गुरू का

सम्बन्ध लौकिक ही नहीं बल्कि दिव्य होना चाहिए।

"एपिक्यूरियन और स्टोइक पंथो के यूनानी पंडितों को भी गीता का यह कथन ग्राह्म है कि पूर्ण अवस्था में पहुँचे हुए परम ज्ञानी पुरूष का व्यावहार ही नीति दृष्टि से सबके लिए आदर्श के समान प्रमाण है, और इन पंथवालो ने परम ज्ञानी पुरूष का जो वर्णन किया है, वह गीता के स्थित प्रज्ञ के वर्णन के समान ही है। इसी प्रकार मिल, स्पेन्सर और कांट पभृति आधिभौतिक वादियों का यह जो कथन है, कि नीति की पराकाष्ठा अथवा कसौटी यही है कि प्रत्येक मनुष्य को सारी मानव जाति के हितार्थ उद्योग करना चाहिए श्री गीता में वर्णित स्थित प्रज्ञ के 'सर्वभूतहिते रत' में इसका निर्वहन किया गया है।"38

विद्यालय :– श्रीमद् भगवद् गीता दर्शन के अनुसार शिष्य को अपने गुरू के समक्ष रहकर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए; इसलिए प्राचीनकाल में आश्रम व्यवस्था थी। आधुनिक आवासीय विद्यालय (Boarding School) इसी आश्रम व्यवस्था के रूप है। गीता के अनुसार विद्यालय कि निम्न विशेषताएं है।

1. विद्यालयों में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर बल दिया जाता है।

2. ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहिए ताकि वह जीविकोपार्जन की क्षमता का विकास कर सके ।

3. विद्यालय को हमारे सामाजिक जीवन के प्रतिनिधि एवं प्रतिविम्ब होने चाहिए।

4. विद्यालय स्वावलम्बन की शिक्षा का केन्द्र हो। बालकों को अनुभव द्वारा सीखने की शिक्षा प्रदान कर सके।

5. शिष्य के लिए विद्यालय में अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिए ताकि उसे

वह गृह जैसे प्रतीत हों। जिस प्रकार घर का वातावरण स्नेह सहानुभूति एवं प्रेम से ओत–प्रोत होता है, उसी प्रकार विद्यालय का वातावरण भी होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान के आवासीय विद्यालय का स्वरूप गीता के गुरूकुल के समान है। अर्जुन ने भी द्रोणाचार्य के गुरूकुल में तथा श्री कृष्ण ने भी संदीपन मुनि ने गुरूकुल में रहकर ही शिक्षा ग्रहण की थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ अध्याय चतुर्थ।

1. Thomas, F.W. & Long, A.R. - 'Principles of Modern Educatoin,' Boston, Hongton Nickilin - P. No. - 39
2. गॉधी, महात्मा – हरिजन, साप्ताहिक 23–5–36 एन0पी0 नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद।
3. स्वामी, प्रभुपाद, ए0सी0 – 'श्री मदभगवद्गीता यथारूप' भक्ति वेदान्त 'वुक ट्रस्ट प्रकाशन,' पृष्ठ – 213
4. टू इयर्स ऑफ वर्क, सेवा ग्राम वर्धा, पृष्ठ – 165, 166
5. स्वामी, प्रभुपाद – पृष्ठ – 113
6. तदैव – पृष्ठ – 125
7. "Hand book of suggestions for the consideration of Teachers and arts concerned in the work of pullic elementry schools," His Majestis stationary office, landon P.No.12
8. हरिजन – साप्ताहिक – 8–7–37 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद
9. एजूकेशनल–रीकन्सट्रक्शन, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा–1939, पृष्ठ–137
10. स्वामी प्रभुपाद – पृष्ठ – 92
11. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 435
12. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 438
13. डा0 राधाकृष्णन्, एस0–''फीडम एण्ड कल्चर'' मद्रास, नतेसन पृष्ठ सं0–37
14. तदैव – पृष्ठ सं0 – 37
15. स्वामी, प्रभुपाद – पृष्ठ – 341
16. यंग इण्डिया – 31–2–31 बीकली, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

17. गॉधी, एम0के0 – ''हिन्दू धर्म'' द नवजीवन पब्लिकशिंग हाऊस अहमदाबाद 1950, पृष्ठ – 284

18. गॉधी, एम0के0 – ''एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन'' द्वितीय संस्करण, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ सेवाग्राम, वर्धा पृष्ठ – 63

19. गोयन्दका, जयदयाल ''श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका'' गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ – 571

20. गॉधी, महात्मा – टू द स्टूडेन्टस (To the Students) नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद – 1949, पृष्ठ – 106

21. पटेल, आर0एम0–गॉधी जी की साधना, गुजराती, नवजीवन प्रेस, पृष्ठ–111

22. गॉधी, महात्मा – आत्मकथा, अनुवादक हनुमान प्रसाद पौद्दार, स0मा0मं0 नई दिल्ली 1951 दशम्संस्करण, पृष्ठ – 427

23. स्वामी, प्रभुपाद – पृष्ठ सं0 475

24. अरस्तु – पॉलिटिक्स पृष्ठ – 8,2

25. Hand Book of Suggestions - पृष्ठ – 37

26. जेम्स, एरिक – An Essay of the content of Education, जार्ज हैरम लन्दन, 1949, पृष्ठ – 55

27. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 55

28. रूसो – ''एमील'' डेन्ट लन्दन, 1925, पृष्ठ – 56

29. रामसुखदास, स्वामी – पृष्ठ – 314

30. गॉधी, महात्मा – आत्मकथा, पृष्ठ – 429 – 430

31. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 187

32. वही – पृष्ठ – 513

33. नॉर्मन, मैकमन – ''द चाइल्डस पाथ टू फ्रीडम'' फरवेन, लन्दन 1926,

पृष्ठ – 42 – 69.

34. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 530

35. तदैव – पृष्ठ – 531

36. ओगडन, आर०एम० – Psychology and education P. No. - 350

37. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 88

38. तिलक, बालगंगाधर – 'गीता रहस्य' गणेश मुद्रणालय, पुणे पृष्ठ – 20

पंचम अध्याय

शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशलों का प्रशिक्षण देना नहीं है, बल्कि शिक्षा महान पुरूषों एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा जीवन के मूल्यों आदर्शों एवं मान्यताओं का परिचय देना भी है।

(सर्व पल्ली राधाकृष्णन्)

पंचम अध्याय

गीता दर्शन का अन्य भारतीय शिक्षा दार्शनिकों के शैक्षिक विचारों पर प्रभाव व उनके शिक्षा दर्शन का संक्षिप्त विवरणः-

भारत की संस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता व विलक्षणता मानव के सर्वागीण विकास की रही है। भारत मानव के एहिक व पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति का प्राचीन काल से प्रतिपादक रहा है। चार पुरूषार्थों की प्राप्ति प्रत्येक प्राणी के लिए आवश्यक थी। यह है धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इसलिये प्राचीन भारत के मानव न तो धर्म व मोक्ष की उपेक्षा कर सकते थे और न काम व अर्थ को प्रमुखता ही दे सकते थे। जब तक भारतीय संस्कृति में इन चारों पुरूषार्थों में सामन्जस्य बना हुआ था, तब तक भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष एवं संवर्धन होता रहा। जब दोनों के सामन्जस्य समन्वय में संकीर्णता व कमी आई तभी से भारतवासियों का पतन प्रारम्भ हुआ।

मानव को आत्म निर्भर बनाने तथा राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से सबल बनाने के लिए व जीवन की व्यावहारिकता को पूर्ण रूप से महत्व देने के लिए 16वीं शताब्दी से यथार्थवादी दार्शनिकों तथा शिक्षा शास्त्रियों ने विचार करना प्रारम्भ किया, किन्तु भारत में वैदिक ब्राह्मण व बौद्ध तीनों दार्शनिक प्रणालियों में ब्राह्म रूप से व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया गया था, किन्तु इनका आन्तरिक स्वरूप आध्यात्मिक ही था। वे शिक्षा की प्रक्रिया को पूर्ण जीवन की तैयारी मानते थे। वैदिक काल में आध्यात्म के साथ-साथ जीवनोपयोगी तत्वों पर भी बल प्रदान किया जाता था। यजुर्वेद व ऋग्वेद दोनों में इस प्रकार के मन्त्र ऋचायें उपलब्ध होती है -

''इषभूर्जयावद''

त्वया वयं संघातजेष्म ।।

उपर्युक्त ऋचाओं का भावार्थ है कि विद्यार्थियों को इस प्रकार निर्देश देना चाहिये ताकि वे अपने जीवन में 'ईष' अन्नादि पदार्थो की बहुतायत से प्राप्ति कर सकें जिससे वह बलिष्ठ, ओजस्वी होकर अपनी दशा सुदृढ़ कर सके अर्थात् विद्या अर्थकारी अवश्य हो। साथ ही सामाजिक व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिये धन महत्व पूर्ण साधन है। धनाभाव अव्यवस्था उत्पन्न करता है। इसलिये शास्त्रों में कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही मानव के समस्त क्रियाकलाप होने चाहिये।

वर्तमान युग 'भौतिकवादी युग' तथा वर्तमान सभयता 'भौतिक सभ्यता के नाम से कही जाती है। भौतिक वस्तुओं को पाने के लिए हर प्राणी प्रयत्नशील है। आज प्राणियों में धर्म और मोक्ष के वजाय धन प्राप्त करने की प्रबल भावना है। धर्म व मोक्ष की भावना जितनी प्राचीन व मध्य युग में महत्वपूर्ण थी उतनी वर्तमान युग में नहीं है। इसका कारण यूरोप की धार्मिक भावना की संकीर्णता ही थी, जिसके कारण सुकरात का विष पान, ईसा को फांसी का वरण करना पड़ा।

भारत में ऐसी धर्म असहिष्णुता अभाव रहा है, परन्तु वर्तमान काल में वह मंद पड़ गई है, क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान व अन्वेषण ने लोगों के विचारों को विज्ञान परक बना दिया है। तर्क व विचार ही सत्य की कसौटी बन गये हैं। वर्तमान में वे वस्तुएं तथा विचार धाराएं ही वास्तविक व सत्य मानी जाती हैं जो तर्क की कसौटी पर खरी उतरती है।

16वीं सदी ने यथार्थवादी मानव जीवन के आर्थिक, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, धार्मिक यहाँ तक कि सारे क्षेत्र को प्रभावित कर दिया था। नये विचार, नई चेतना, वस्तु की यथार्थता का परिज्ञान तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों की इस

प्रवृत्ति का जागरण हुआ, जिसने हमारे दृष्टिकोण को बल दिया, मानव जीवन की इस भौतिकवादी सभ्यता के प्रतिक्रिया रूप में स्वामी दयानन्द जी ने 'वेदों की ओर लौटो' (Back to Vedas) तथा महात्मा गांधी ने 'गांवों की ओर मुड़ो' (Turn to villages) का नारा लगाया। इन महापुरूषों के इन वाक्यों की मूल भावना यही था कि हमारा जीवन भौतिक वादी हो गया है, हमें इसे सरल बनाना चाहिये। मानव को सक्षम व शक्तिशाली बनाने के लिए व्यावसायिक आदर्श स्वीकार करना पड़ेगा। व्यावसायिक आदर्श अपनाने का यह अर्थ नहीं है कि हम अपने धार्मिक व परलौकिक आदर्श को भूल जाये। मानव के सर्वागीण व्यक्तित्व के विकास का अर्थ होता है। मानव को धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष प्राप्ति के लिए चेष्टा करना।

शिक्षा के विषय में दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीति शास्त्रियों, अर्थ शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोंण हैं आज हम शिक्षा की व्याख्या करते समय इन सभी के दृष्टिकोण से तथ्यों का चयन करते हैं। दार्शनिक विचारों के प्रयोगोपरान्त जो संशोधित व स्वाभाविक विकास होता है, वहीं शिक्षा के रूप में मान्य है। अतः दर्शन शैक्षिक प्रयत्न के रूप में प्रतिकफित होता है। इसी कारण जॉन एडम्स का कथन था कि –

'शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलू है।'3

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा दार्शनिक विश्वासों का क्रियात्मक पहलू तथा जीवन आदर्शों की प्राप्ति का व्यावहारिक साधन है। अतः शिक्षा मौलिक रूप से दर्शन पर आधारित है। इसी कारण महान दार्शनिक महान शिक्षा शास्त्री भी रहे हैं। प्रायः यह देखा गया है कि जो दार्शनिक स्पप्न दृष्टा एवं चिन्तनशील रहे है वे ही आगे चलकर उच्चकोटि के शिक्षाशास्त्री बने। पश्चिमी देशों में सुकरात से लेकर जॉन ड्यूवी तथा पूर्व में शंकराचार्य से लेकर गांधी जी तक के सभी दार्शनिकों की
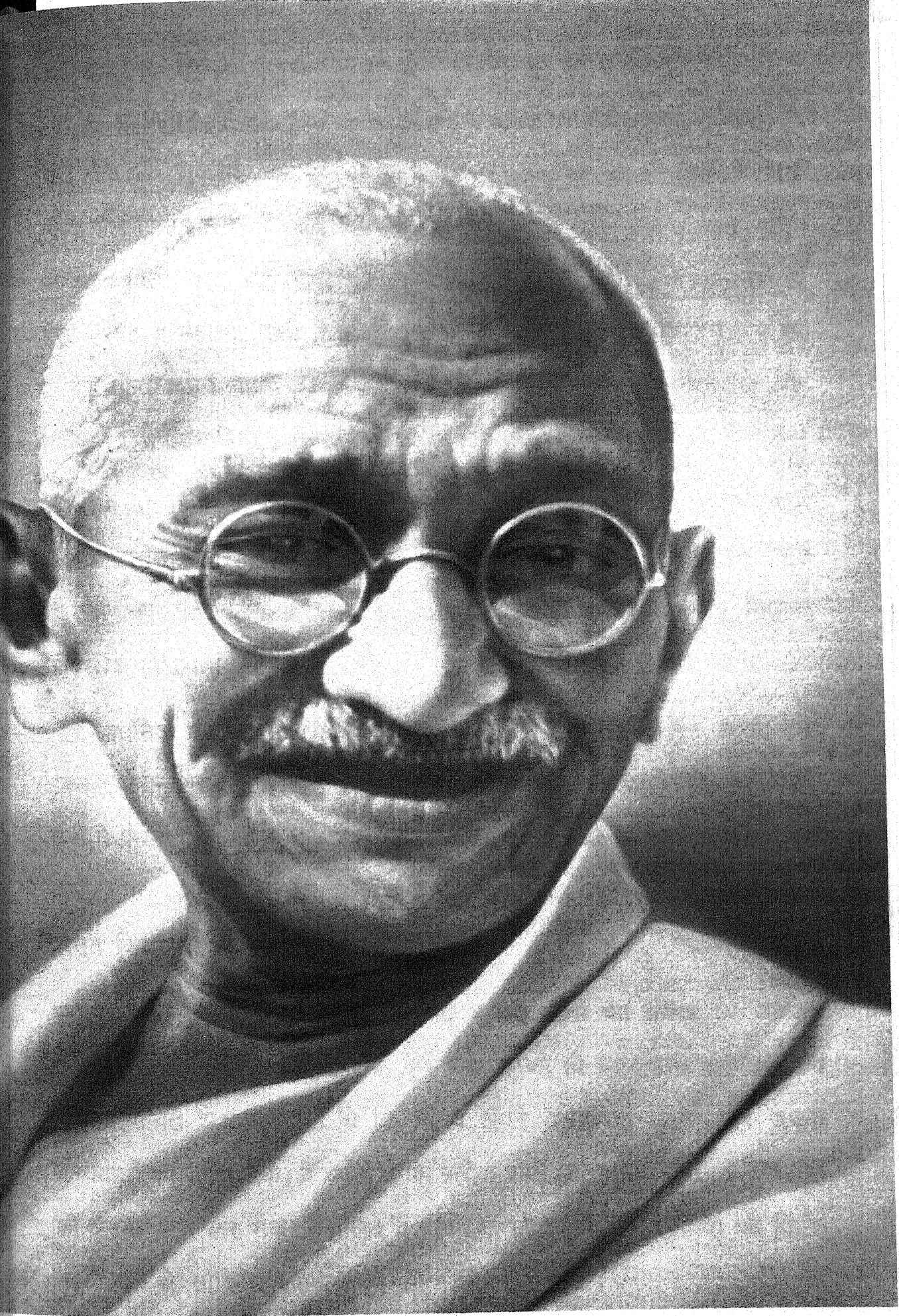
शिक्षाओं व जीवन से हमें यह प्रमाण मिलता है कि शिक्षा दर्शन पर आधारित है। यहाँ तक कि सुकरात जो एक सिद्धान्तवादी दार्शनिक थे, वे कालान्तर में एक क्रियाशील शिक्षाशास्त्री बन गये और सभी काल का उन्हें महान शिक्षक माना गया। जो सत्य गौतम बुद्ध, अद्वैतवादी शंकराचार्य व मुहम्मद साहब के लिये था। उसे ही ईसा मसीह व महात्मा गांधी ने धारण किया और उसी से अपने जीवन दर्शन का निर्माण किया। इन महान दार्शनिकों एवं शिक्षकों की शिक्षाओं से हम आज और भविष्य में भी लाभान्वित होते रहेंगे।

हम यह जानते हैं कि मानव मन समस्त अच्छाइयों व बुराईयों का जन्म स्थल है अतः उत्तम संसार के निर्माण के लिए मानव मन में जो भी अच्छाईयाँ अन्तर्निहित है उसे विकसित करने के लिए शिक्षा रूपी शासन की खोज करना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

आधुनिक युग में जार्ज बर्नाड शा, एच डब्ल्यू, वेल्स, वर्टेण्ड रसेल, आल्डुअस, हक्सले, रवीन्द्र नाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय, जॉन डयूवी व महात्मा गांधी आदि सभी ने प्रथमतः जीवन के तरीकों को जाना पहचाना, अनुभव किया तथा जीवन की कसौटी पर प्रयोग किया। इसके पश्चात् ही अपने शिक्षा दर्शन को जगत के समक्ष प्रस्तुत किया।

महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन पर श्री मद् भगवद् गीता का प्रभाव :– महात्मा गांधी मानव शरीर, मन व आत्मा के पूर्ण विकास को ही व्यक्तिगत का सर्वांगीण विकास मानते थे। वे चाहते थे कि मानव अपने वास्तविक स्वरूप को अपनी योग्यताओं को समझ सके। वे चाहते थे कि प्रत्येक प्राणी आत्मानुभूति व आत्माभिव्यक्ति की क्षमता प्राप्त कर सके। इसलिये वे मानव के जीवन में श्रम व क्रिया को विशेष महत्व देते थे, ताकि वे स्वावलंबी व आत्म निर्भर हो सके।

महात्मा गांधी जी का दर्शन गीता दर्शन पर आधारित है बिना सम्यक कर्म के कोई भी व्यक्ति ज्ञान सम्पन्न नहीं हो सकता है गीता के इस संदेश को–

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन।''4

''योगस्थः कुरू कर्माणि संग त्यक्त्वा धनन्जयः।''5

उपर्युक्त बातों को महात्मा गांधी जी ने जीवन में आत्म सात कर लिया । गांधी के दर्शन में गीता की भांति विश्वास, कर्म व ज्ञान की त्रिवेणी पाई जाती है। इसलिये महात्मा गांधी जी यह कहते हैं कि – ''गीता शास्त्रों का दहन है–सारे उपनिषद का निचोड़ है''

''आज मेरे लिये गीता केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिये माता हो गई है। गीता निराश होने वाले को पुरूषार्थ सिखाती है, आलस्य व व्यभिचार का त्याग बताती है।''6

महात्मा गांधी जी एक समाज सुधारक व उच्चकोटि के दार्शनिक थे। वे विचार को मात्र सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं मान्यता देते थे। बल्कि उसे व्यावहारिकता प्रदान करना चाहते थे। वे तात्कालिक प्रयोजन की महत्ता समझते थे। वे जानते थे कि दीन, हीन, दुखी व दरिद्र भारतीयों की दशा का सुधार तभी संभव होगा जब वे अपनी परम्परागत व्यावसायिक दक्षता को पुनः प्राप्त कर आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी बन सके। वर्तमान अर्थ प्रधान समाज में प्रत्येक सामाजिक प्राणी को अर्थोपार्जन के योग्य होना नितान्त आवश्यक है।

वे मानव की शक्तियों एवं योग्यताओं के विकास के लिए स्वतन्त्रता को आवश्यक मानते थे। वे मनुष्य मात्र की रचनात्मक शक्तियों के भीतर से बेरोजगारी की समस्या को समाप्त करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने लिखा है –

"मैं बच्चों को पहले पहल उपयोगी दस्तकारी सिखाऊँगा ताकि जिस समय से वे शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ करें उसी काल से उत्पादन करना भी शुरू करें।"7

महात्मा गांधी जी ने आगे भी कहा –

"हिन्दुस्तान हमारे हाथों से इसलिये गया, क्योंकि हमने स्वदेशी को छोड़ दिया। सूत कातना कोई अलग धंधा नहीं था। कुछ मर्द भी कातते थे। सूत कातना धर्म अथवा कर्तव्य समझा जाता था। पहले की भांति कातने का काम फिर से हाथ में लेना पड़ेगा और उसी से हिन्दुस्तान का उद्धार होगा।"8

ज्ञान महात्मा गांधी के लिये पूर्ण ईकाई था। चाहे वह सांसारिक ज्ञान हो या परलौकिक। वे दोनों प्रकार के ज्ञान को खण्डान्वित रूप से विभक्त नहीं मानते थे। गांधी जी दोनों प्रकार के ज्ञान में सामान्जस्य चाहते थे। वे जीवन के कर्म में समन्वयात्मक दृष्टिकोंण रखते थे। प्रत्येक प्राणी में सेवा भाव जागरण एवं इसी भाव का स्थायित्व करना ही ईश्वर की सेवा, भक्ति, उपासना मानते थे। इसी लिये उनका रचनात्मक कार्य, सांसारिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के ज्ञान का समन्वयात्मक रूप ही था। गीता के अनुसार सांसारिक मनुष्य भी योग के माध्यम से परम गति को प्राप्त कर सकता है। जैसे कहा गया है–

प्रयत्नाथतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विपः।

अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।9

प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी पिछले अनेक जन्मों के संस्कार एवं सम्पूर्ण पापों से रहित हो तत्काल ही परम गति को प्राप्त कर लेता है।

महात्मा गांधी जी भविष्य दृष्टा थे। वे भारत की गरीबी को दूर करना चाहते थे। भारतीयों में भोजन, वस्त्र व आवास की कमी को दूर करने के लिये कृत संकल्प

थे। इसलिये उन्होंने भारतीय बालक–बालिकाओं के लिए व्यावहारिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की विचारधारा प्रस्तुत की।

गीता में श्री कृष्ण जी कहते है, ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञानी के पास जाना चाहिए–

''तद्धिद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।10

उपर्युक्त श्लोक में श्री कृष्ण जी कहते हैं कि उस ज्ञान को तू तच्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभांति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से, कपट छोड़कर सरलता पूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्यतत्व को भली भांति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे।

गांधी जी का विचार ऐसे नागरिकों के निर्माण में था जो राष्ट्रहित के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की पूंजी भी बटोर सके। उनका दृष्टिकोंण विश्व मानवता का था। वे 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' सिद्धान्त के पोषक थे। गांधी जी मानव की उत्पादन शीलता को बढ़ाने के पक्षपाती थे। इसलिये मानव के चरित्र पर विशेष बल देते थे। चरित्र बल व उत्पादन शीलता के साथ–साथ महात्मा गांधी जी मानव के व्यक्तित्व का व सामाजिक पक्षों के विकास पर भी बल देकर उनमें सामाजिक कुशलता उत्पन्न करने क हिमायती थे। वे ज्ञान को 'प्रयोग करके' 'अनुसंधान करके, 'निरीक्षण करके' व अपनी विवेक शक्ति के विकास से प्राप्त करने पर बल देते थे। स्वानुभव को उन्होंने स्वयं अपने जीवन में अपनाया था। महात्मा गांधी जी परतत्व को भी स्वानुभव का विषय मानते थे।

वे मानव को अहिंसक, प्रेमी, विनम्र, अपरिग्रही, सत्यवादी, कर्मठ, परिश्रमी तथा मनुष्य मात्र से प्रेम करने वाला समाज सेवी बनाना चाहते थे। महात्मा गांधी जी के

जीवन के उद्देश्य आदर्शवाद के निकट तथा उनकी कार्य प्रणाली व्यवहारवाद के निकट पहुँच गई है। उनका दर्शनमध्यम मार्गीय है। पूर्व व पाश्चात्य दर्शन का समन्वयात्मक रूप ही गांधी जी का दर्शन है। सामाजिक कुशलता, हस्तकला, उद्योग व व्यवसाय को अपना कर ही प्राप्त की जा सकती है क्योंकि किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास की यह जड़ है। चिन्तन प्रक्रियाको उन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया, इसलिए वे प्रकृतिवादी भी है। इस सम्बन्ध में एम0एस0 पटेल ने लिखा है –

"गांधी जी का दर्शन अपने स्थापना में प्रकृतिवादी आदर्शों में आदर्शवादी और अपनी विधियों एवं कार्य योजना में प्रयोजनवादी है।"11

शिक्षा की प्रकृति विकास शील है। समाज की परम्पराएं एवं परिस्थितियाँ दार्शनिकों के चिन्तन को प्रभावित करती है। उसी चिन्तन का प्रतिफल शैक्षिक उद्देश्य होता है।

महात्मा गांधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य :– शिक्षा एक प्रकार की चेतना है, यह एक गतिशील विषय है अतः इसका रूप भी स्थिर नहीं रह सकता। शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य की अर्न्तनिहित क्षमताओं व योग्यताओं का विकास करना है। शिक्षा व्यक्ति समाज व राष्ट्र के नव निर्माण का एवं पुर्नरचना का आधार स्तम्भ मानी जाती है। भारतीय

परम्परा के अनुसार महात्मा गांधी जी शिक्षा को आत्मानुभुति के रूप में मानते हैं। महात्मा गांधी जी के शब्दों में –

"शिक्षा ही एक मात्र वह मूल्यवान वस्तु है, जो विद्यार्थियोकी क्षमताओं को इस प्रकार विकसित कर सकती है ताकि वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली जीवन समस्याओं का ठीक–ठीक समाधान करने में समर्थ हो सके।"12

इस प्रकार शिक्षा उद्देश्यविहीन व निश्चित निर्देशन से वंचित नहीं है, परन्तु एक निश्चित लक्ष्य शिक्षण का अनुशासित निर्देशन है। महात्मा गांधी ने भिन्न–भिन्न काल व स्थान के अनुसार शिक्षा को भिन्न–भिन्न बिन्दुओं से देखा है। इसलिये अनेक उद्देश्य दृष्टिगत होते हैं, परन्तु उनके भिन्न–भिन्न उद्देश्य अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पूरक है। महात्मा गांधी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वतोमुखी विकास मानते है। शिक्षा के उद्देश्य को निश्चित करते हुए उन्होंने लिखा है कि–

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मानव के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों के चर्तुमुखी विकास से है।"13

महात्मा गांधी जी का यह मानना था कि शिक्षा ही वह आधार है जो व्यक्ति को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दासता के बन्धन से मुक्त करा सकती है। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि –

"साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न प्रारम्भं यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरूष व स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।"14

शरीर, मन और आत्मा जिस विद्या से विकसित हो और परिपुष्ठ हो वही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक सभी गुणों का विकास होना चाहिए। महात्मा गांधी जी अपने शैक्षिक उद्देश्यों की उपलब्धि हेतु 'तीन एच' (Head, Head, Heart) की शिक्षा पर बल देते हैं गीता के ज्ञान, भक्ति एवं कर्मयोग का गांधी जी के Head, Heart and Hand से सीधा सम्बन्ध है।

इसलिए महात्मा गांधी शिक्षा के उद्देश्यों को भौतिकवादी एवं आध्यात्मवादी दोनो दृष्टिकोंण से सम्बन्धित करते हुए दो प्रकार के उद्देश्य बताये हैं –

1. प्राथमिक उद्देश्य 2. अन्तिम उद्देश्य

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, वैयष्टिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक, व्यावसायिक एवं नैतिक विकास शिक्षा के प्राथमिक उद्देश्य के अन्तर्गत आते हैं तथा मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति, आत्मानुभूति, आत्म–ज्ञान अथवा आत्मबोध है। जो उपर्युक्त विकास है इन सबका अन्तिम उद्देश्य भी मनुष्य को आत्मज्ञान कराने में सहायता करना है। गांधी जी के जो शिक्षा के उद्देश्य है उन पर गीता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

गांधी जी ने शिक्षा के इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्रियात्मक शिक्षण विधियों जैसे– करके सीखने, स्वानुभव द्वारा सीखने जैसी विधियों को महत्व दिया है। क्रिया द्वारा ज्ञान को विकसित करना उनकी शिक्षण विधि का मुख्य आधार है। यद्यपि महात्मा गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे किन्तु मानव व्यवहार क्षेत्र के विशेषज्ञ भी थे, इसलिए उन्होंने जिन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया है वे सभी मनोविज्ञान सम्मत है।

महात्मा गांधी के पाठ्यक्रम की प्रकृति एवं विषय सूची शिक्षा के उद्देश्यों पर आधारित है। उन्होंने कहा है कि उम्र, योग्यता और अभिरूचि को ध्यान में रखकर ही विभिन्न पाठ्यक्रम होने चाहिए। पाठ्यक्रम मातृभाषा में होना चाहिए। इसके लिए योग्य अध्यापकों की आवश्यकता है जो अध्यापन को अपना व्यवसाय समझकर नहीं अपितु अपना कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व मानकर बच्चों को ज्ञान प्रदान करने का कार्य करें।

आज के परिवेश में हमारे देश में गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, तस्करी, विदेशी पूंजी के खतरे आदि आर्थिक समस्याओं से हमारा देश ग्रस्त है। इन विभिन्न आर्थिक समस्याओं को हल करने के

लिए गीता दर्शन से प्रभावित हो गांधी जी के आर्थिक दर्शन का यदि गम्भीर चिन्तन करें तो इन समस्याओं को हल करने में सफल हो सकते हैं। गांधी जी के सिद्धान्तों से आर्थिक समस्याओं का सफलता पूर्वक निराकरण किया जा सकता है। गांधी जी कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर देश में फैली हुई बेरोजगारी को समाप्त करना चाहते थे। मेहनत पूंजी से बड़ी है। गांधी जी नवयुवकों को स्वावलम्बी एवं श्रम के प्रति निष्ठावान बनाना चाहते थे। क्योंकि गीता भी श्रम व कर्म पर बल प्रदान करने वाला एक दार्शनिक ग्रन्थ है।

गांधी जी के जीवन दर्शन के आधार उनके दो मूल्य हैं सत्य और अहिंसा। सर्वव्यापी ईश्वर ही इनका सत्य है। उनके विचार से सत्य ही ईश्वर है। सत्य और अहिंसा में गांधी जी अधिक अन्तर नहीं मानते थे। सत्य तक पहुँचने के लिए वे अहिंसा का मार्ग अपनाते थे। इन दोनों में सत्य–साधन को वे एक ही सिक्के के दो पहलू मानते थे, जिनको अलग नहीं किया जा सकता। गांधी जी की अहिंसा नकारात्मक न होकर सकारात्मक होती थी। उनके विचार में अहिंसा अवशोषण से आती है। शोषण समाज की अनेक बुराईयों की जड़ है।

अतः उसे अहिंसा के माध्यम से ही समाप्त किया जा सकता है। अहिंसा में दो तत्वों के आधार पर उन्होंने अपने जीवन में अहिंसा को प्राप्त करने के प्रयोग किए है। सत्य और अहिंसा के द्वारा उन्होंने देश को विदेशी शक्ति से मुक्त कराया। गांधी जी के शब्दों में निर्भयता से आशय है – समस्त ब्राह्म भयो से मुक्ति, जैसे–रोग का भय, शारीरिक चोट का भय, प्रतिष्ठा खो जाने का भय, मृत्यु का भय आदि। अहिंसा का दूसरा आधार था – सत्याग्रह अर्थात सत्य के लिए आग्रह करना। गांधी जी ने इस सिद्धान्त को इन शब्दों में स्पष्ट किया है – इस सिद्धान्त का अर्थ है विरोधी को कष्ट न देकर सत्य का समर्थन करना।''

गीता भी हमें प्रकारान्तर से यही शिक्षा प्रदान करती है कि दूसरे मनुष्य में सुधार लाने के लिए स्वयं को कष्ट दो। सत्याग्रही कभी नहीं हारता, जिनका साधन पवित्र होता है, जो मन से वचन से और कर्म से पर कल्याण की कामना करता है, वह हार नहीं सकता, क्योंकि आरम्भ से अन्त तक साधनों और सिद्धि में कोई भेद नहीं होता। सत्याग्रही की लड़ाई प्रेम की लड़ाई होती है। जिसे अपने कार्यों और आदर्शों में अखण्ड विश्वास न हो, वह सत्याग्रही नहीं हो सकता। शोषण को मिटाने के लिए गांधी जी ने मानव सेवा एवं जीवन को स्वावलम्बी बनाना माना है। आज देश के बदलते हालातमें हथियारों की प्रासागिकता यह है कि अधिक से अधिक हथियारों की विश्व में होड़ लगी हुई है। यहाँ तक कि गुप–चुप में विश्व युद्ध की तैयारियाँ भी की जा सकती है। ऐसी स्थिति में शक्ति के समर्थक देशों का कर्तव्य है कि वे अहिंसा का प्रचार–प्रसार ही न करें, बल्कि समय आने पर मानवता के रक्षक अहिंसा रूपी हथियार का उपयोग भी करें। इससे विश्व शान्ति स्थापित होगी। गीता के सिद्धान्तों से प्रभावित गांधी जी का शिक्षा दर्शन तनावग्रस्त एवं अशान्त दुनिया को उज्जवल भविष्य की ओर ले जाने में राष्ट्र प्रेम की भावना विकसित करने में, महत्वपूर्ण है, प्रासांगिक है–

''ले ढाल, अहिंसा की कर में।

तलवार प्रेम की लिए हार ।।

आए वह सत्य समर करने ।

ललकार क्षेत्र की लिए हुए ।।15

गांधी जी द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग देश को स्वतन्त्रता की मंजिल तक ले पहुँचा। जिसके राज्य में सूर्यास्त नहीं होता था, वह ब्रिटिश सत्ता गांधी जी के चरणों में नत हो गई। 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता का अमूल्य उपहार प्राप्त किया।

गीता प्रकृति के नियमों के अनुसार मानव को जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्रदान करती है। इसे गांधी जी ने आकाश दर्शन की संज्ञा दी है। विश्व में एक व्यक्ति की स्थिति और उसकी जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से गांधीजी ने आकाश दर्शन की प्रेरणा दी है। सूर्य निश्चित समय पर उदय होकर नियमित प्रकाश देता है। सभी तारे व चन्द्रमा आदि अपना परिभ्रमण मार्ग क्षणभर के लिए भी नहीं छोड़ते है। प्रकृति के अन्य कार्य भी नियमित रूप से होते रहते हैं। इसी तरह प्रकृति के विधान से हमारे द्वारा कर्तव्यनिष्ठा का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए तथा हमें अपने कर्तव्य के प्रति सचेत रहना चाहिए।

आज के परिवेश में देश की एकता और अखण्डता को बनाये रखने के लिए गांधी जी की जीवनोपयोगी शिक्षा सार्थक एवं उपयोगी है। किसी शिल्प को शिक्षा मानकर शिक्षा दी जाय ताकि आगे चलकर विद्यार्थी स्वावलम्बी बने और बेरोजगारी न रहे। गांधीजी ने मस्तिष्क के स्थान पर हाथ को अधिक महत्व दिया है। उन्होंने कहा था, "बुद्धि की वास्तविक शिक्षा शारीरिक अंगों के उचित व्यायाम और प्रशिक्षण की सहायता से ही मिल सकती है। गीता दर्शन का गांधी जी पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे शिक्षा आत्मा, बुद्धि एवं शरीर का विकास करना चाहते थे। सत्य और अहिंसा के आधार पर एक नये समाज की रचना करना चाहते थे। वे प्रत्येक बालक को भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि बनाना चाहते थे। ताकि आने वाली पीढ़ी देश के गौरव की रक्षा को बनाए रखें। गांधी जी भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक होते हुए भी विदेशी संस्कृति की अच्छाइयों को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहते थे।

गांधी जी का धर्म निरपेक्षता में विश्वास था। वे सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे। वे कहते थे कि कोई धर्म आपस में वैरभाव रखना नहीं सिखाता। धर्म का काम जोड़ना है, तोड़ना नहीं गांधी जी ने समाज में निरक्षरता मिटाने के लिए विशेष महत्व दिया, जो आज के परिवेश में राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक

है। महात्मा गांधी साक्षरता को शिक्षा नहीं मानते। शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और व्यस्क के शरीर, मन और आत्मा का पूरा विकास करना है। गांधी जी ने कहा था कि समस्त शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य चरित्र का निर्माण होना चाहिए। धन गया, कुछ नहीं गया। स्वास्थ्य गया, कुछ गया। चरित्र खो दिया तो सब कुछ खो दिया। जैसे आकाश स्वच्छ है वैसे ही हमें अपना चरित्र स्वच्छ रखना चाहिए। इससे हमारा देश महान् बनेगा। गांधी जी के अनुसार जीवन की शैली सादा जीवन व उच्च्व विचार है। गांधी जी आत्म अनुशासन को महत्व देते थे। एकता और अनुशासन किसी राष्ट्र की समृद्धि के दृढ़ स्तम्भ है। गांधी जी को जीवन अत्यधिक सादा है।

उनके हृदय में देश की उन्नति के लिए रामराज्य की परिकल्पना थी। अपने अनेक गुणों के कारण वे भारत में ही नहीं, अपितु सारे विश्व में सम्मानित थे और विश्व शक्ति के लिए उनकी बातों का सभी देश आदर करते थे। वस्तुतः वे नये युग के निर्माता महापुरूष, विश्व मानव आदि नामों से पूजनीय है। आज देश के बदलते हुए हालात में हम सभी गांधी जी के आदर्श चिन्हों पर चल कर एवं सब मिलकर आतंकवाद का मुकाबला कर अपने देश का गौरव बढ़ाये एवं उनके सपनों को साकार करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी जी गीता के अनन्य भक्त थे इसलिए इन्होंने गीता दर्शन को आज के परिपेक्ष्य में देखने–समझने का प्रयत्न किया है और उसे आज की भाषा में लोगों को समझाने और उनके जीवन में उतारने का प्रयास किया है। गांधी जी ने गीता–दर्शन की जो नई व्याख्या थी वह सर्वोदय दर्शन के नाम से विख्यात हुई। हमारे अन्य भारतीय शिक्षाशास्त्रियों पर भी गीता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अब हम महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का चिन्तन करेंगें तथा गीता पर उसका प्रभाव देखने का प्रयास करेंगे।

महामना मदन मोहन मालवीय के शैक्षिक विचार पर गीता का प्रभाव :–

मानव विचार प्रधान प्राणी है। उसकी इस विचार प्रधानता का आधार बौद्धिक शक्ति है। उसकी चिन्तन प्रक्रिया उसे पशु कोटि से अलग करती है। विचार की पूर्णता में ही मानवता निहित है। विचार हीन मानव पशुता से भी एक कोटि आगे बढ़कर दानव बन जाता है। आहार बिहार व व्यवहारों में समानता होते हुए भी मनुष्य पशुओं की अपेक्षा अपनी विवेक बुद्धि के ही द्वारा महान बना है। इस विवेक बुद्धि को स्वयं के विकास हेतु संख्यातीत सम्बत्सरों की सीमाओं को पार करना पड़ा है। ज्यों–ज्यों उसकी इस शक्ति की समृद्धि हुई वह प्रगति शील बना, किन्तु अभी वह अपने विकास की पराकाष्ठा पर नहीं पहुँच सका है। वस्तुतः मानव 'बुद्धि वादी पशु' है। और उसमें यह बुद्धि या विचार का अंश अदृश्य हो जाता है तो उसमें और पशु में कोई तात्विक भेद नहीं रह जाता है।

अतएव विचार का प्रारम्भ ही मानवता का श्रीगणेश है तथा विचार का इतिहास ही मानवता का इतिहास है। महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी मूल रूप से एक सर्वतोमुखी प्रतिभामयी व्यक्तित्व के स्वामी थे। क्रिया कलापों में स्वराज्य प्राप्ति, राष्ट्र उन्नति, देश प्रेम, शिक्षा प्रसार एवं मानवीयता के सम्पोषक के रूप में वे हमें देखने को मिलते हैं। राष्ट्र भक्ति की भावना तो उकने मन में कूट–कूट कर भरी थी। हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक, भारतीय संस्कृति एवं दर्शन के उपासक, भौतिक वाद के उन्नायक, धार्मिक परिप्रेक्षक एवं समाज सुधारक के रूप में उनके अनेक स्वरूप दृष्टिगत होते हैं। मुख्यतः महामना जी एक देशभक्त राजनेता एवं शिक्षाविद् के रूप में हमारे सामने आते हैं। महामना ने कान्ट, दुर्खीम एवं रसेल आदि के समान कोई स्वतन्त्र एवं शास्त्रीय दार्शनिक विचारधारा का प्रणयन तो नहीं किया, किन्तु उन पर भारतीय उपनिषदों, पुराणों गीता एवं धर्म ग्रन्थों तथा वैदिक युग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से महामना के विषय में श्री पदम कान्त मालवीय के

विचार उद्धरणीय है–

"व्यक्तित्व मानव जीवन का दर्पण है। मानव जीवन के शुभ और कलुष बिन्दु इस दर्पण में स्पष्ट रूप से प्रतिविम्बित होते हैं। महान व्यक्तियों के व्यक्तित्व में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा चिन्तन, मनन और साधना की गहराई और अधिक स्पष्ट होती है। तीव्र प्रवाह को रोककर धारा को बदलने की क्षमता बहुत कम लोगों में होती है, और जिसमें यह शक्ति होती है वही युग प्रवर्तक एवं दार्शनिक कहलाता है। इस प्रकार महामना जी युग पुरूष एवं दार्शनिक के रूप में हमारे दृष्टि पथ पर आते है।"16

महमना जी सनातन धर्म के कट्टर समर्थक थे उनका सम्पूण झुकाव अमूर्त एवं अव्यक्त उस अलौकिक शक्ति के प्रति था जिसे वह अनादि अनन्त एवं एक शाश्वत सत्य के रूप में ग्रहण करते है।

ज्ञान :– ज्ञान में ही मानव की पूर्णता निहित है। ज्ञान का वह मार्ग जिसमें मानव की प्रवृत्ति बहिर्मुखी होती है वह उसे लौकिक दर्शन की ओर ले जाती है एवं दूसरा वह मार्ग जो उसे श्रेय प्राप्ति तक पहुँचाता है – आत्म दर्शन कहलाता है। गीता में कहा गया है कि–

न तु मां शक्यसे श्रष्टुमने नैव स्वचक्षुषा।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य में योगमैश्वरम् ।।17

दिव्य दर्शन दिव्य दृष्टि पर निर्भर होता है इसके अभाव में अर्जुन जैसे बलवान व बुद्धिमान को भी वह दिव्य दर्शन प्राप्त नहीं हो सका और उसके सखा श्री कृष्ण को दिव्य दृष्टि प्रदान करनी पड़ी।" महामना पर गीता की स्पष्ट छाप दिखलाई पड़ती है । उनको श्री मद्भगवद् गीता में दृढ़ निष्ठा थी। भगवद् में प्रतिपादित अद्वैतवाद और ईश्वरवाद का तथा भक्ति और निष्काम सेवा का सामंजस्य उन्हें

स्वीकार था। वे ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता नियंता तथा व्यवस्थापक एवं सम्पूर्ण विश्व का कारण समझते थे। महामना के विचार से यह अद्वितीय शक्ति निःसन्देह अविनाशी, सर्वव्यापक, सत्यज्ञान स्वरूप एवं अनन्त है। वे 'एकमेवाद्वितीयम ब्रह्म' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए 'ब्रह्मा' ''विष्णु'', ''महेश'' को इस ब्रह्म की तीन संज्ञाएं मानते थे और सभी देवी देवताओं को उसकी विभूतियाँ समझते थे। वे वेद व्यास जी के इस तथ्य से सहमत थे कि ''ज्योतिरात्मनि नान्यत्र एमं तत्सर्वजन्तुषु।''18 अजीत यह ज्योति अपने भीतर ही है अन्यत्र नहीं, और सभी जीव धारियों के समान है। समत्व के भाव को वे सनातन धर्म का मूलमंत्र स्वीकर करते थे। महामना के अनुसार समदृष्टा ही ज्ञानी, योगी, भक्त और सत्यनिष्ठ हो सकता है। महामना के विचार से आध्यात्मिक कल्पना कोरा सिद्धान्त नहीं है। महामना विश्व बन्धुत्व की भावना को समत्व हेतु धर्मसंगत, नैतिक और सामाजिक साधन स्वीकार करते थे। इस धारणा को शास्त्रों में भी कहा गया है–

''यद्यदात्मिनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत''।19

''जो बात मनष्य अपने लिए चाहता है उसे चाहिए कि वही बात औरों के लिए भी सोचे।''

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलम् यदात्मनः।

एष समासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ।।20

''दूसरों के प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिए जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेप में यही धर्म है इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी अन्य बात की कामना से किए जाते हैं।''

इस प्रकार गीता के विचारों से प्रभावित हो तथा शास्त्रों के प्रमाण के आधार पर महामना कहते हैं कि–

"मनुष्यमात्र को विमल भक्ति के साथ–साथ घर–घर व्यापी उस एक परमात्मा की उपासना करनी चाहिए, और यह ध्यान करके कि वह प्राणीमात्र में व्याप्त है, प्राणीमात्र से प्रीति करनी चाहिए।"21

जिस प्रकार गीता निराकार एवं साकार के होते माप थी विवेचना करती है उसी प्रकार महामना जी का दर्शन आध्यात्मवादसे मुक्त है। वे ईश्वर के निराकार एवं साकार दोनों रूपों को अंगीकृत करते है।

आत्म ज्ञान एवं स्वतंत्रता :– महामना जी का मानना है कि 'मानव एक सामाजिक प्राणी है, समाज सतत परिवर्तन की प्रक्रिया से गतिमान है। मानवीय शारीरिक एवं मानसिक स्थितियाँ सदैव होती रहती है; किन्तु इसी परिवर्तित परिवेश के अन्तर्गत एक तत्व ऐसा है जो हर काल और देश में स्थिर है। यह तत्व आत्मा के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यहाँ महामना जी सष्टहृदय से गीता के विचारों से सहमत आत्मा के स्वरूप का वर्णन गीता में निम्न प्रकार किया गया है–

''न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।''22

आत्मा किसी काल में न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।" आगे कहा है कि–

''देहिनोऽस्मिन् यथा दहे कौमारं योवनं जरा।''23

"शिशु, बालक या किशोर एवं बृद्ध सभी में एक ही आत्मा निवास करती है न आत्मा बूढ़ी होती है न युवा।" आत्मा अजर है अमर है न वह मरती है न हीं मारती है न यह किसी की हत्या करती है, न कोई इसकी हत्या कर सकता है न यह

कमजोर है न इसका कोई रंग रूप, आकार या प्रकार ही है।

महामना जी आत्मा के इसी स्वरूप को मानते थे। वे आत्मा को जगाए रखने की प्रेरणा जन समुदाय को देना चाहते थे इस प्रकार आत्मा के सम्बन्ध में गीता के श्लोकों की व्याख्या महामना जी अपने ढ़ग से इस प्रकार है–

"आत्मा सत् स्वरूप है। उनका न कोई आदि था न अन्त होगा। शरीर नाशवान है, आत्मा शाश्वत। आत्मा को जानो, परमात्मा को जानो। परमात्मा ही ज्योति पुज है, जो हमारे अज्ञान तमस को नष्ट करता हैं।"24

सत्य व निष्काम कर्म इससे स्पष्ट है कि महामना जी के विचार हमारे बौद्धिक दर्शन का प्रतिरूप है। मालवीय जी वैदिक साहित्य उपनिषदों गीता और धार्मिक ग्रन्थों में अटल विश्वास रखते थे। महामना का प्रिय ग्रन्थ 'गीता' थी और उसका प्रस्तुत मन्त्र उनका प्राण था–

कर्मण्येवाधिकारास्ते मां फलेषु कदाचन।25

मात्र कर्तव्य करते जाना और फल के प्रति लगाव न रखना यही था महामना जी का निष्काम कर्मभाव। कर्म के प्रति महामना की उत्कंठा एवं कर्म निष्ठा उनके स्वयं के शब्दों से प्रकट होती है–

"हमारे मार्ग में निःसंदेह अगणित कठिनाइयाँ है; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य को कठिनाइयों का सामना करने से ही बल एवं शक्ति प्राप्त होती है। जिसको कर्म करते हुये कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता उसमें यथार्थ बल उत्पन्न नहीं हो सकता...............क्या राजनीति क्या धर्म, क्या विज्ञान सभी क्षेत्रों में राजनीतिज्ञ, धर्म प्रचारकों, एवं आविष्कर्ताओं और शिक्षा विदो, सभी को अत्यन्त घोर संकटों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। जितना बड़ा काम होता है उतना ही अधिक उसमें स्वार्थ त्याग की संभावना रहती है।"26

गीता के निष्काम रूप की भारी निष्काम कर्म की महिमा बताते हुए महामना जी ने कहा है कि जो लोग निष्काम भाव से काम नहीं करते, उन लोगों में परस्पर ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न हो जाते है और कार्य सफल नहीं हो पाता है, किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है वहाँ लोग एक दूसरे की सफलता को देखकर प्रसन्न होते है और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है और कार्य में शीघ्र सफलता प्राप्त होती है। सकाम भाव से कर्म करने वालों को आपत्तियाँ काम करने से विमुख कर देती है। किन्तु निष्काम भाव से कर्म करने वाले लोग यह समझ कर कि जो कार्य हम कर रहे है वह ईश्वर का कार्य है और इसमें ईश्वर हमारा सहायक है, किसी विघन या वाधा के कारण पीछे नहीं हटते।''27

अतः इस प्रकार गीता से प्रभावित हुए महामना जी निष्काम कर्म पर बल देते हुए मार्ग की बाधाओं से जूझने की प्रेरणा देने के साथ ही सत्य और सदाचार का भाव बनाए रखने का भी प्रयास करते है।

महामना जी के शैक्षिक विचार :– महामना जी के शैक्षिक विचार उनके तात्कालिक परिवेश से प्रभावित थे। वें चूंकि एक पंडित परिवार से सम्बन्धित थे। अतः महामना जी आजीवन शिक्षा से स्नेह करते रहे। उनकी दृष्टि में जनमानस के कल्याण के लिए शिक्षा के अतिरिक्त कोई अन्य विषय नहीं हो सकता। नीतिशतक में कहा गया है–

विद्या ददाति विनयं, विनयाति याति पात्रत्वाम् ।

पात्रम् धनं अणाप्नोति, धनं ते परम सुखम् ।।28

विद्या विनय देती है, विनय से योग्यता मिलती है, योग्यता से धन की प्राप्ति होती है तथा धन से सुख की प्राप्ति होती है।

अतः महामना जी के अनुसार शिक्षा का स्वरूप मानव का सर्वांगीण विकास

करना है।

महामना जी मानते थे कि जीवन का पूर्ण विकास शिक्षा पर आधारित है। शिक्षा का उद्देश्य भी यही है उनके अनुसार–

"शिक्षा ही हमारी खोई चेतना को जाग्रत कर हमें कर्तव्य बोध करा सकती है। हमें भारतीय मस्तिष्क में विद्या के ज्ञान अंकुर का रोपण करना होगा। हमारा स्वयमेव लक्ष्य पूर्ण हो जायेगा।"29

महामना जी की शिक्षा की परिभाषा अत्यन्त सरल एवं व्यावहारिक है। आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के जटिल समाज में मानव की आवश्यकताएं बढ़ कर विकसित हो चुकी है। अतः महामना जी यह चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति में ऐसे गुणो का विकास कर सके कि वह कम से कम अपनी जीविका अर्जित करने की क्षमता शिक्षा द्वारा अवश्य प्राप्त कर सके। उनके अनुसार–

"आधुनिक युग की शिक्षा व्यवस्था में उक्त परिवर्तनवादी मांगों के अनुरूप परिवर्तन और सुधार नितान्त आवश्यक है।"30

समाज परिवर्तनशील है। प्रत्येक देश की परिस्थितियाँ काल के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। शिक्षा समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की क्रिया शिक्षा पर आधारित है। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा को ध्यान में रखते हुए विश्व भारती, जामिया मिलिया, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, अरविन्द आश्रम, गुरूकुल कांगड़ी, वनस्थली विद्यापीठ एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी महत्वपूर्ण शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई। अपने एक वक्तव्य में महामना जी ने कहा है कि–

"हमें शिक्षा के माध्यम से बौद्धिक विकास के साथ सांस्कृतिक विकास एवं स्वावलम्बन की भावना को जगाना चाहिए, जिससे व्यक्ति स्वयं जीवन मूल्यों को

निर्धारित कर उचित–अनुचित का अन्तर करने के लिए क्षमता अर्जित कर सके।''31

महामना जी ने स्पष्ट शब्दों में भारतीय संस्कृति को शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में पहुँचाने का प्रयास किया। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी बुद्धिमता से कठिन से कठिन कार्य को भी सहज कर लिया। एक स्थान पर महामना जी ने लिखा है कि–

''विद्यार्थियों के मन को पवित्र बनाना और उन्हें अथक परिश्रम की ओर प्रवृत्त करना यही गुरूजनों का परम कर्तव्य है। आचार–विचार एवं सत्संग इसकी मूल औषधि है। गुरू चरणों में विद्याध्ययन की बात कही गई है। देश का दुर्भाग्य है कि काल के कुचक्र वश विद्यालय राजनीति के अखाड़े बने हुए है जब तक शिक्षक ''गुरूकुल परंपरा'' को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षक और विद्यार्थी के दायित्वों को जागृत नहीं करते तब तक इस देश के नागरिकों का चारित्रिक, मानसिक तथा शैक्षिक विकास असंभव है।''32 महामना जी आगे कहते हैं कि–

''विद्या के अभाव में किसी देश या जाति की उन्नति असंभव है अन्त्यजों में दोष समझे जाने का सबसे प्रबल कारण उसमें शिक्षा प्रसार की कमी है।''33

महामना जी ने सामाजिक भौतिक विकास की सत्ता प्राचीन धर्म ग्रन्थों से जोड़ कर शिक्षा का एक सुन्दर एवं सत्य घटक तैयार किया। अतः मालवीय जी का मुख्य लक्ष्य आध्यात्म को शिक्षा द्वारा जाग्रत कर उसका प्रयोग सामाजिक उन्नयन एवं भौतिक विकास में करना है। वे विद्वानों का स्वागत करते थे। मनुस्मृति में कहा गया है। कि–

''अधिक आयु से व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं होता वरन जिसने वेद–वेदान्त पढ़ा है, जो बुद्धि समृद्ध है, वही श्रेष्ठ है।''34

इस प्रकार महामना जी के शैक्षिक प्राचीन धर्मग्रन्थों विशेषकर गीता से बहुत

प्रभावित है।

महामना जी की शिक्षा का उद्देश्य :- प्रारम्भ किए गए प्रत्येक कार्य का एक लक्ष्य होता है, हमारा सम्पूर्ण जीवन सोद्देश्य क्रियाओं का समायोजित स्वरूप है। महामना जी की शिक्षा के कुछ निश्चित उद्देश्य थे जो निम्न है-

स्वराज्य प्राप्ति का उद्देश्य :- महामना जी की शैक्षणिक अवधारणा का मूल उनकी स्वराज प्राप्ति की भावना ही थी उन्होंने भारतीय समाज में ज्ञान रूपी अंकुर प्रस्फुटित कर इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग प्राप्त करना चाहा।

2. चारित्रिक विकास का उद्देश्य।
3. प्राचीन संस्कृति की रक्षा एवं भौतिकवाद से समन्वय का उद्देश्य।
4. विश्व बन्धुत्व (लोक कल्याण) का उद्देश्य।
5. उद्योगों के विकास का उद्देश्य।
6. मातृभाषा के प्रयोग का उद्देश्य।
7. भावी पीढ़ी को योग्य नागरिक बनाने का उद्देश्य।
8. शारीरिक विकास।
9. **बौद्धिक एवं नैतिक विकास का उद्देश्य।**
10. स्वावलम्बन की भावना का उद्देश्य।

महामना जी ने मानव के प्रत्येक वर्ग को उन्नत करने के लिए अपनी शिक्षा का पूरा प्रयोग कियां वे विद्या दान को सबसे बड़ा दान मानते थे। शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि विद्या, कुल की, जाति की एवं पुरूष सम्बन्धी पात्रता की परवाह नहीं करती जैसा कि स्पष्ट है –

''विद्या दानम् परम् दानम्, न भूतं न भविष्यति।

येन दन्तेन चाण्नोति, शिवं परम कारणम्।।

विद्या च श्रयूते लोके, सर्व धर्म प्रदीपिका ।35

तस्मात् विद्या सदा देया पण्डितैव धार्मिक द्विजैः।।

आगे कहा गया है कि –

''नहिं विद्याकुलं जाति रूपं पौरूषं पात्रताम् ।

वसते सर्वलोकानां पठिता उपकारिका ।।36

महामना जी शिक्षा के माध्यम से भारत में एक ऐसे व्यक्ति के निर्माण के पक्षधर थे, जो चरित्रवान होने के साथ–साथ आर्थिक, प्राविधिक, राजनैतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त हो और अपनी जीविका अर्जित करने का सामर्थ्य रखता हो।

महामना जी संस्कृत और धर्म की शिक्षा पर विशेष बल दिया। धर्म, दर्शन तथा कला की शिक्षाके साथ ही उन्होंने विज्ञान तथा प्राविधिक की शिक्षा को पाठ्यक्रम में रखने की बात पर ध्यान दिया। गीता में भी विज्ञान सहित ज्ञान की महिमा का वर्णन है–

''राजविद्या राजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।37

यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राज, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है। महामना के अनुसार–
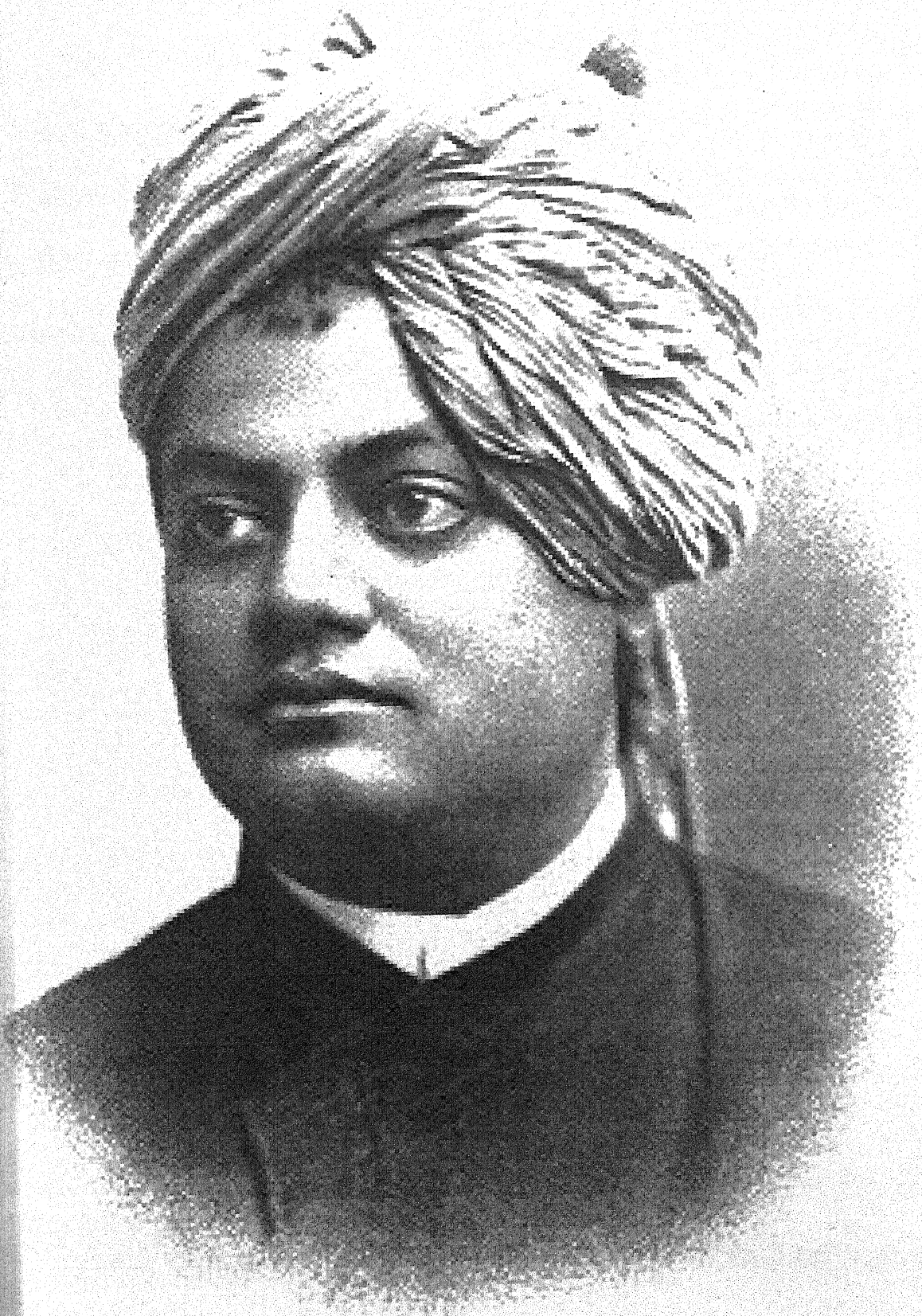
"धर्म दर्शन तथा कला की शिक्षा मनुष्य के सिर की भांति और विज्ञान तथा प्राविधिक की शिखा उनके धड़ के समाज है। शिक्षा के दोनों प्रकार एक दूसरे के पूरक हे। दोनों के शरीर के अवयव धड़ तथा सिर के समान अपना महत्व है। विज्ञान की शिक्षा के अभाव में कला की तथा कला की शिक्षा के बिना विज्ञान की शिक्षा अधूरी है।"38

स्वशासन की शिक्षा, समाजसेवा, खेलकूद, तर्क–वितर्क साहित्यिक विषय, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र आदि के अध्यापन पर बल दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महामना मालवीय जी ने मानवतावादी दर्शन से प्रभावित होकर 'वसुधैव कुटम्बकम्' की भावना का शिक्षा के माध्यम से प्रसारित किया तथा निष्काम कर्म, लोक सेवा तथा भगवान की आराधना गीता का तात्विक चिन्तन, एवं मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म – 'धृति, क्षमां, दमोडस्तेयम् शौचमिन्द्रयनिग्रह धीविर्धा सत्यम् क्रोधों दशकं धर्म लक्षणं आदि को सम्मिलित किया है।

महामना जी द्वारा संस्थापित विश्वविद्यालय स्वयं में समृद्ध एवं सुविधापूर्ण है। इसमें छात्रावासों की भी व्यवस्था की गई है। महामना जी का उद्देश्य था कि इस विश्वविद्यालय द्वारा छात्रों में भौतिक विकास की भावना को जागृत कियाजाये। राष्ट्रीय चेतना एवं जन–जागरण का आधार हिन्दू विश्वविद्यालय महामना जी की एक अपूर्व देन है।

इस प्रकार महामना जी अपने विश्वविद्यालय की प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार ही स्थापित करना चाहते थे जिसमें बच्चे का सम्पूर्ण विकास हो सके। इसलिए महामना जी ने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को आधुनिक चुग का गुरूकुल कहा है।

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों पर गीता का प्रभाव :– भारतीय

चिन्तन धारा का मूल वेद है। स्वामी विवेकानन्द वेदों एवं उपनिषदों के ज्ञाता थे। उन्होंनें राज योग से सत्य ज्ञान की अनुभूति की थी। वे शंकर के अद्वैत वेदान्त के समर्थक थे परन्तु उन्होंने इस वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने—समझने और जीवन में उतारने का स्तुव्य प्रयास किया है।

स्वामी विवेकानन्द ने ब्रह्म एवं जगत के बीच द्वैत नहीं माना है बल्कि दोनों में एकता बनाई है उनके अनुसार ब्रह्म या ईश्वर, जगत या विश्व का कारण संसार और उसकी व्यष्टि।

इस प्रकार ईश्वर एवं जगत में 'कार्य करण सम्बन्ध' (Casual Relationship) है। और इसलिए ईश्वर को जगत—नियन्ता भी कहा जाता है। गीता में भी इस प्रकार की बात कही गयी है कि ईश्वर सम्पूर्ण जगत का नियन्त्रण करने वाला है।

अह्मात्मा गुडाकेश सर्वभूताश्यस्थितः ।

अह्मादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।39

" हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के ह्रदय में स्थित सबकी आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।।"

मानव :— एक सच्चे वेदान्ती की भांति स्वामी विवेकानन्द ने मानव में विश्वास प्रकट कियाहै। चूंकि उनके अनुसार सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय है, अतः जगत के सभी मानव ब्रह्ममय और आत्मावान् है। प्रत्येक मानव मांसपिण्ड मात्र नहीं है बल्कि उसमें भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्व निहित रहते है। इसके अतिरिक्त मानव में आत्म—विश्वास, शुद्धता, पवित्रता, ज्ञान, विवेक, क्रियाशीलता, प्रेम, स्वाधीनता आदि गुण भी देखने को मिलते है।

आध्यात्मिक विश्वेकता :— स्वामी विवेकानन्द आध्यात्मिक विश्वेकता पर विश्वास

करते है और इसके विकास के लिए बल भी देते हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है कि, ''अगर आप ईश्वर को मनुष्य के चेहरे में नहीं देख सकते तो आप उसको बादलों में में कहाँ देख सकेंगे। आप उसे निर्जीव पत्थर की मूर्ति में कैसे देख सकेंगे या आप उसे अपने मस्तिष्क की उपज काल्पनिक कहानियों में कहाँ पा सकेंगे।''

सत्य ज्ञान :– स्वामी विवेकानन्द के अनुसार जो कुछ भी पूर्णता के लिए होता है वह सत्य है। प्रेम सत्य है, घृणा असत्य है क्योंकि घृणा में बहुलता उत्पन्न होती है। घृणा मनुष्य को मनुष्य से अलग करती है, अतएव वह असत्य है। वह विभाजक शक्ति है, वह अलग करती है और नष्ट करती है। ''प्रेम बांधता है और प्रेम एकता लाता है। प्रेम का ही अस्तित्व है, ईश्वर स्वयं है और यह जो कुछ प्रकट है केवल उसी प्रेम का रूप है जो कम या अधिक अभिव्यक्ति होता है।'' इसी प्रकार सत्य ही प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है, अतः ईश्वर ही सत्य है। यदि सत्य ईश्वर है, प्रेम ही ईश्वर है, अतः ईश्वर ही सत्य है। यदि सत्य ईश्वर है, प्रेम है और पूर्णता है तो निश्चित रूप से वह मनुष्य एवं आत्मा को बल देने वाला है।

स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक विचार :– स्वामी विवेकानन्द ने जन–जन में वेदान्त और उसमें अन्तर्निहित सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विचारों का प्रसार करने के लिए एक विस्तृत शिक्षा दर्शन प्रस्तुत किया; जिसके अन्तर्गत उन्होंने शिक्षा के सभी पहलुओं के सम्बन्ध में अति महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए है। उनके शैक्षिक विचारों को अधोलिखित शीर्षकों में प्रस्तुत कियाजा रहा है–

शिक्षा का सम्प्रत्य :– स्वामी विवेकानन्द शिक्षा का तात्पर्य उस ज्ञानार्जन से लगाते हैं जो व्यक्ति के सर्वागीण विकास में सहायक हो तथा जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आर्थिक विकास में सहायक हो सकें। एक वेदान्ती विचारक होने के कारण स्वामी विवेकानन्द मानव में पाई जाने वाली

ईश्वरीय पूर्णता पर अत्याधिक विश्वास करते है जो कि हमारे भीतर चिरकाल से उपस्थित है। विवेकानन्द के अनुसार– "शिक्षा व्यक्ति में निहित पूर्णता का ज्ञान और अनुभूति है अर्थात शिक्षा मनुष्य में पहले से ही उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।"

आगे स्वामीजी कहते हैं कि अज्ञानतावश

"मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति पूर्णरूपेण सचेत नहीं रहता। वह अपना आध्यात्मिक परिचय अपनी आत्मा, जो चित्त् और आनन्द है, से नहीं कर पाता।"40

शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति को अपने इसी वास्तविक स्वरूप का परिचय प्रदान करना है अर्थात् अपनी सत् चित्, आनन्द स्वरूप आत्मा को पहचानना है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में–

"शिक्षा के द्वारा आत्मा में विश्वास उत्पन्न होता है और आत्मा के विश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्म की जाग्रति होती है"41

शिक्षा के उद्देश्य :– वेदान्त के अनुसार माया या अविधा के कारण मनुष्य अपने प्रकृत स्वरूप को पहचान नहीं पाता है। इसलिए हमारे प्राचीन ऋषियों और विद्वानों ने मानव–जीवन का लक्ष्य दर्शन की सहायता से और उसी के आधार पर जीवन को व्यवस्थित करना बतलाया था जो कि अविधा से मुक्त हो "तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सदगमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।"

स्वामी विवेकानन्द ने प्राचीन ऋषियों के आदर्श व विचार को आधार मानते हुए शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्य प्रतिपादित किए है–

1. आन्तरिक पूर्णता की अभिव्यक्ति :– स्वामी विवेकानन्द ने जैसे कि पहले ही

कहा है कि "शिक्षा मनुष्य में पहले से ही उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।" इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिखा का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति की आन्तरिक पूर्णता का बाह्य प्राप्तीकरण है जिससे कि वह अपने आपको अच्छी तरह समझ सके। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार–

"अपने आपको जानने का तात्पर्य मनुष्य का उस परम आत्मा से जिनका कि वह अंश है पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है।" दूसरे शब्दों में– उसे आध्यात्मिक विकास मानव–निर्माण का उद्देश्य भी कहा जा सकता है।

व्यक्तित्व अथवा मनुष्यत्व का विकास :– स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मानव व्यक्तित्व में मनुष्यत्व का विकास करना शिक्षा का कठिनतम उद्देश्य है। स्वामी जी के अनुसार "मनुष्यत्व का तात्पर्य उन लौकिक एवं अलौकिक सदगुणों का जीवन में अंगीकृत है जिससे मानव ज्ञान वान बनता है। ये सदगुण है–

1. आत्म विश्वास 2. आत्म श्रद्धा 3. आत्म नियन्त्रण

4. आत्म–निर्भरता 5. आत्म प्रेम

गीता में भी श्रेष्ठ मनुष्य के इसी प्रकार के गुण बताये गयें है–

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनों गतब्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स में प्रियः।।42

जो पुरूष आकांक्षा से रहित, बाहर–भीतर से शुद्ध (आत्मशुद्ध) चतुर, पक्षपात से रहित (निष्पक्ष) और दुःखों से छूटा है– वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझकों प्रिय है।

मानव व समाज सेवा :– स्वामी जी का मानना था कि उपर्युक्त गुणों की प्राप्ति का वास्तविक लाभ तभी हो सकता है जबकि उनका मानव एव समाज की

सेवा में अभ्यास किया जाय। उनके इस प्रकार के अभ्यास से ही उनकी बुद्धि एवं उनका विकास होता है, क्योंकि सारे प्राणी ब्रह्ममय है ब्रह्म के अंश रूप है। स्वामी जी के अनुसार मनुष्य के अन्दर ईश्वर है और यथार्थ शिक्षा का लक्ष्य मानव सेवा द्वारा ईश्वर की सेवा करना है। इस प्रकार मानव सेवाही समाज सेवा भी उनके विचार में 'व्यक्ति में छिपी हुई दिव्यता' का प्रकाशन समाज सेवा से ही सम्भव है।

शारीरिक विकास :– स्वामी जी का कथन है कि 'संसार में यदि कोई पाप है तो वह है दुर्बलता'। अतः शारीरिक विकास पर ध्यान देना चाहिए और दुर्बलता का परित्याग करना चाहिए। उपनिषद् की भी यही शिक्षा है। आज ऐसे बलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है जिनकी पेशियां लोहे के समान दृढ़ एवं फौलाद के समान कठोर हो। अतः मानव को यौगिक क्रिया से योग विद्या में निष्णात होना चाहिए।

जीविकोपार्जन का उद्देश्य :– स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक लाभ भी होना चाहिए। तभी भारत के जो करोड़ो लोग भूखे रहते है उनके भोजन की व्यवस्था हो सकेगा और करोड़ों लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी। इस प्रकार की विद्या की महती आवश्यकता है।

विश्वबन्धुत्व व विश्वचेतना का विकास :– स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य विश्व बन्धुत्व एवं विश्व चेतना का विकास करना है। विश्व के समस्त प्राणी समान है। अतः वही व्यक्ति शिक्षित है, जो गीता द्वारा बताये हुये मार्ग पर चलता है कि सभी मनुष्य समान है। गीता में समग्र जड़ चेतन को ईश्वर से उत्पन्न माना है अतः सम्पूर्ण जगत के प्राणी एक ही है–

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनन्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।43

"मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में

मणियों के सदृश मुझमें गुथा हुआ है।''

अतः विवेकानन्द की विश्व बन्धुत्व की भावना गीता दर्शन पर ही आधारित है। स्वामी जी आध्यात्मवादी पहले है और बाद में शिक्षाशास्त्री, अतः उनके विचारों में आध्यात्मिकता की झलक मिलना स्वाभाविक है। फिर भी उन्होंनें 'लौकिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यों की उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उद्देश्यों को प्राप्त करने पर बल दिया है। गीता भी दोनों प्रकार के तत्वों की प्राप्ति की ओर संकेत करती हुई कहती है कि–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।44

युद्ध जीतोगे तो सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग करोगे तथा लौकिक उद्देश्य की पूर्ति करोगे और यदि मृत्यु होगी तो स्वर्ग प्राप्त करोगे, यह आध्यात्मिक उद्देश्य की ओर संकेत है। तुलसी दास जी ने भी लिखा है कि–

''समर मरण और सुसठितीरा।

राम काज यह धरा शरीरा।।45

इसी भाव की पुष्टि यहाँ भी की गयी है। लौकिक क्रियाओं में भाषा, विज्ञान, मनोविज्ञान, तकनीकी शास्त्र (कल–यन्त्रो), उद्योग–कौशल, कृषि, व्यवसायों की शिक्षा, गणित व जीवन के उपयोगी विषयें तथा खेल–कूद, व्यायाम घ राष्ट्र सेवा को शामिल किया गया है।

आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति में धर्म एवं दर्शन, विशेषकर हिन्दू धर्म, वेद–वेदान्त एवं उपनिषदों का ज्ञान, पुराण, उपदेश श्रवण, कीर्तन, धर्मगीत (भजन) तथा साधु–संगति आदि की प्राप्ति हेतु उपदेश दिया गया है।

स्वामी विवेकानन्द ने लौकिक एवं आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु गीता में समाहित विधियों जैसे– "(1.) धर्म या योग विधि (Boga Method) (2) केन्द्रीयकरण विधि (Method of concentration) (3) उपदेश विधि (Method of Preaching) (4) अनुकरण विधि (Imetation Method) (5) व्यक्तिगत निर्देशन एवं परामर्श विधि (Personal Guidence and Counselling Method) (6) क्रियात्मक एवं व्यावहारिक विधियाँ (Activity and Practical method)" आदि पर बल दिया गया है। मोह जनित अर्जुन को क्या करना चाहिए इस पर कृष्ण रूपी शिक्षक ने उपदेश विधि के माध्यम से परामर्श देकर, निर्देशित किया और अर्जुन एकाग्र होकर उनका अनुकरण करते है।

विवेकानन्द जी शिक्षार्थी के गुण बताते हुए कहते है कि शिक्षार्थी को धर्म परायण, कर्तव्यनिष्ठ एवं जिज्ञासु होना चाहिए। स्वामी जी के अनुसार विद्यार्थी के गुण निम्नलिखित होना चाहिए–

1. विद्यार्थी को शरीर से बलवान होना चाहिए तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

2. विद्यार्थी में सत्य को जाग्रत करने की क्षमता, इच्छा शक्ति एवं चित्र को एकाग्र करने की क्षमता होनी चाहिए।

3. विद्यार्थी में विद्या प्रेम, विवेक शीलता, विचारशीलता, स्वप्रयत्न शीलता गुरू के लिए श्रद्धा एवं भक्ति, सुखों एवं भोगों का त्याग आदि चारित्रिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण होना जरूरी है।

4. विद्यार्थी के धर्म एवं धार्मिक क्रियाओं में सही विश्वास होना अति आवश्यक है।

श्रीमद् भगवद् गीता में विद्यार्थी के गुण बताते हुए कहा गयाहै कि–

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्प्रहः।

वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिच्यते।।46

दुःखों की प्राप्ति होने पर भी जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, अर्थात (स्थिर मन वाला) सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये है ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।

इस प्रकार स्वामी जी विद्यार्थियों को ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने, साथ ही शुद्ध सरलतम एवं रागरहित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते है। यह ही गीता का उपदेश भी है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर के जीवन दर्शन पर गीता का प्रभाव :– टैगोर जी विश्व बोध दर्शन के प्रतिपादक माने जाते है इनके विचार से अपने एवं संसार के समस्त प्राणियों में उस परम सत्ता की व्याप्ति का अनुभव करना है, विश्व के समस्त प्राणियों में एकात्म भाव उत्पन्न करना ही वास्तव में टैगोर के अनुसार आत्मानुभूति है वास्तव में आत्मानुभूति एवं आत्मसाक्षरता ही सर्वोत्तम मार्ग है। टैगोर के इसी सिद्धान्त को मनीषीगण विश्वबोध दर्शन के नाम से जानते है।

टैगोर का विश्व बोध दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्राह्मण को ईश्वर द्वारा बनाई मानता है ईश्वर एवं पदार्थ जन्य संसार दोनों इस दर्शन के अनुरूप सत्य है आत्मा को ईश्वर का अंश स्वीकार करते है। जीवन का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति है, इस की प्राप्ति मानव मात्र की सेवा करके ही प्राप्य है।

टैगोर मुख्यतः एक कवि थे। अतः उन्होंने कॉन्ट, हीगेल और अन्य लोगों की भांति परम्परागत दार्शनिक रूप में पूर्ण तौर से शास्त्रीय प्रकार का दर्शन नहीं विकसित किया है, किन्तु उन पर भारतीय उपनिषदों, गीतादि ग्रन्थों तथा पाश्चात्य विद्वानों की कृतियों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वे कवि के साथ–साथ एक महान विचारक व चिन्तक भी हो गये। एक दार्शनिक के रूप में टैगोर के विचार को समझने के लिए हमें उनके जीवन–दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों व तत्वों को

जानना व समझना आवश्यक है जो निम्न प्रकार है –

1. ईश्वर या ब्रह्म – गुरूदेव टैगोर जी इस सृष्टि को ईश्वर के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानते थे। इनके अनुसार ईश्वर निर्मित यह जगत उतना ही सत्य है जितना ईश्वर अपने आप में सत्य है। उनका मत है –

"हमें ईश्वर को उसी प्रकार अनुभव करना चाहिए। जिस प्रकार हम प्रकाश का अनुभव करते हैं वे ईश्वर को सर्वोच्च मानव के रूप में मानते हैं।"

टैगोर जी ईश्वर को निराकार तथा साकार दोनों रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार बीज रूप में वह निराकार तथा सृष्टि (प्रकृति) रूप में साकार ब्रह्म है। गुरूदेव प्रकृति के कण–कण में ईश्वर के दर्शन करते हैं। ईश्वर साक्षात्कार करने से ही मनुष्य को वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है।

2. आत्मा या जीव :– टैगोर ने "गीतांजली में ईश्वर एवं मनुष्य को दो सत्य" के रूप में माना है। वे व्यक्ति की आत्मा को ब्रह्म से पृथक मानते हैं। उनका विश्वास है कि ईश्वर ने आत्मा को स्वतन्त्रता प्रदान की है। यह स्वतन्त्र आत्मा इस बात का प्रयास करती है कि वह ईश्वर में लीन हो जाय, क्योंकि एक स्वतन्त्र वस्तु दूसरी स्वतन्त्र वस्तु से सम्बन्ध रखती है। टैगोर का विचार है कि 'मनुष्य की आत्मा का लक्ष्य ब्रह्म में लीन होकर आनन्दानुभूति करना है क्योंकि ईश्वर आनन्द एवं पूर्णता का अनन्त आदर्श है। टैगोर का विचार है कि अपने उच्चस्तरीय स्वरूप में एक व्यक्ति की आत्मा दूसरे की आत्मा का अनुभव करती है इस दृष्टि से ही टैगोर ने मानवतावादी दृष्टिकोंण तथा अन्तर्राष्ट्रीय दर्शन का सृजन किया है।

सत्य ज्ञान :– हमारे भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों पक्षों को महत्व देना है। इस सन्दर्भ में ईशोपनिषद् का अग्रलिखित सूक्त उद्धरणीय है –

अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रतः।।47

अविद्या अर्थात संसार की ही उपासना करने वाले कठिन अन्ध तमस में प्रवेश करते हैं। गुरूदेव जी के अनुसार भौतिक और आध्यातिमक, दोनों प्रकारके ज्ञान का जीवन में महत्व है। ये भौतिक जगत के ज्ञान को उपयोगी ज्ञान और आध्यात्मिक जगत के ज्ञान को विशुद्ध ज्ञान कहते थे।

सत्य क्या है इस सम्बन्ध में टैगोर का विचार है कि संसार का सत्य उसके अनेक जड़ पदार्थों में नहीं है, बल्कि उसके माध्यम से अभिव्यक्ति होने वाली एकता में निहित है। वस्तुओं का ज्ञान तो हमें उस परम सत्य को जानने का एक माध्यम है।

जगत एवं प्रकृति :– टैगोर का विचार है कि मनुष्य सत्य के निकट होते हुये भी उसे सत्य का ज्ञान नहीं हो पा रहा है क्योंकि एक यह माया है जो सत्य एवं असत्य दो रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। माया का प्रसार इस सर्म्पूण जगत में है। इस प्रकार जगत वास्तविक है और "आत्म–वोध" एवं "आत्म विकास" का एक साधन है।

टैगोर के अनुसार संसार का नाना स्वरूप ही प्रकृति है। टैगोर का विचार है मनुष्य का प्रकृति के साथ अटूट सम्बन्ध है अतः "जो मनुष्य प्रकृति के साथ सम्बन्ध का अनुभव नहीं करती है, वह कारागार में बन्द ऐसे बन्दी की भांति है जो कारागार की दीवारों से अपरिचित है।"

मनुष्य का स्थान :– टैगोर ने मानवतावादी भावना के अन्तर्गत मनुष्य को 'सर्वोच्च स्थान' दिया है। वे मनुष्य में ईश्वर को तथा ईश्वर में मानव मात्र को देखने का प्रयत्न करते है। उन्होंने 'मनुष्यत्व में ईश्वरत्व' को ही नहीं देखा है, बल्कि उसे

व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। ईश्वर सृष्टि में प्रकृति और मानव दोनों ही ईश्वर के रूप है। गीता में भी कहा गया है कि–

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।48

नाना प्रकार की योनियों में शरीर धारी प्राणी में प्रकृति तो गर्भ धारण रूपी माता है और प्रभु बीज को स्थापना करने वाला पिता है।

मानव अपूर्व है क्योंकि उसमें ईश्वर विशेष रूप से व्याप्त है। इस दृष्टिकोंण को सामने रखते हुए टैगोर ने लिखा है –

"अनन्त का ज्ञान और शक्ति आकाश के तारों की अपेक्षा मनुष्य की आत्मा में अधिक मिलती है मानव ईश्वर के सितार का स्वर्णतार है।"

प्रेम व भक्ति :– टैगोर के अनुसार भक्ति एक ऐसा साधन है जो साधारण पुरूषके लिए भी सम्भव है। उन्होंने भक्ति की आधारशिला प्रेम को माना है या यों कहें कि भक्ति और प्रेम एक ही है। प्रेम का मार्ग एवं साधन ज्ञान के मार्ग एवं साधन से ऊँचा है। गीता में भी निष्काम प्रेम करने वाला भक्त ईश्वर को अतिप्रिय है–

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।

श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव में प्रियाः ।।49

जो श्रद्धायुक्त पुरूश प्रभु परायण होकर उपर्युक्त वर्णित धर्ममय अमृत को निष्काम प्रेम भाव से सेवन करते है, वे भक्त प्रभु को अतिशय प्रिय है।

टैगोर ने अपने काव्यों में भी प्रेम और भक्ति की साधना की है।

धर्म :– टैगोर ने धर्म को परिभाषित करते हुये लिखा है कि – "मेरा धर्म मानव का

धर्म है जिसमें आनन्द की परिभाषा मानवता है।"

उनका विचार है कि धर्म केवल नेताओं के संदेशों में नहीं है वरन् वह तो कला एवं प्रकृति से प्राप्त आनन्द में है, संस्कृति एवं समाज की प्राप्ति है, समाज के निर्धन, निरक्षर एवं निम्न लोगों की सेवा में है, विभिन्न देशों के प्रति सद्भावना में है, शान्ति, स्थिरता एवं उच्च आदर्शों एवं मूल्यों की स्थापना एवं उनके पालन में है तथा अन्तिम आध्यात्मिक सत्य की खोज प्राप्ति एवं प्रसार में है। इस प्रकार स्पष्ट है कि टैगोर ने धर्म का बहुत ही विस्तृत, व्यावहारिक एवं मानवीय अर्थ लगाया है।

नैतिकता :– टैगोर ने नैतिकता एवं धर्म में घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुए कहा है कि उच्च धर्म, नैतिक चेतना को ऊँचा उठाता है।

टैगोर का शिक्षा दर्शन :– टैगोर का जीवन के प्रति जो दृष्टिकोंण था वही उनका जीवन दर्शन कहलाया। उसी से प्रभावित हो उन्होंने अपने विकास के शिक्षा दर्शन का भी विकास किया था। अतः उनके जीवन दर्शन के विकास में जिन तत्वों का प्रभाव पड़ा उन्हीं तत्वों का प्रभाव उनके शिक्षा दर्शन के विकास में भी पड़ा।

शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुये टैगोर ने लिखा है कि – "सर्वोच्च शिक्षा वही है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।"50

सम्पूर्ण सृष्टि से टैगोर का तात्पर्य संसार की चर एवं अचर जड़ तथा चेतन, सजीव एवं निर्जीव सभी वस्तुओं से है। इनमें सामंजस्य स्थापित करते हुय समस्त शक्तियों को पूर्णरूप से विकसित करके उन्हें उच्चतम बिन्दू पर पहुंचाना टैगोर का लक्ष्य था। यही टैगोर का "पूर्ण मनुष्यत्व' है।

इस प्रकार टैगोर के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य 'पूर्ण मनुष्यत्व के विकास की प्रक्रिया' से है। टैगोर के अनुसार मनुष्य के विकास की प्रक्रिया का अभिप्राय

व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं यथा–शारीरिक, संवेगात्मक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक विकास से है। इस प्रकार टैगोर के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है ''जो बालक या व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं अर्थात् उसके पूर्ण मनुष्यत्व का विकास कर उसे सम्पूर्ण सृष्टि के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग देती है।''51

शिक्षा के उद्देश्य :– टैगोर ने रूसों एवं स्पेन्सर के समान शिक्षा पर कोई पुस्तक नहीं लिखी थी जिसके अनुसार हम टैगोर द्वारा शिक्षा के उद्देश्य प्रस्तुत कर सके। उनके लेखों, साहित्यिक रचनाओं और व्याख्यानों द्वारा इनके शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में हमें जो विचार मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर उनके शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित है। –

1. शारीरिक विकास :– टैगोर के अनुसार बालकों का शारीरिक विकास तभी सम्भव है जबकि उन्हें सुखद वातावरण में स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने–कूदने, उठने–बैठने का अवसर दिया जाए और शरीर के विभिन्न अंगों तथा इन्द्रियों को प्रशिक्षित किया जाए। टैगोर का कथन है कि –

''पेड़ों पर चढ़ने, तालाबों में डुबकियां लगाने, फूलों को तोड़ने और बिखेरने और प्रकृति माता के साथ नाना प्रकार की शैतानियां करने से बालकों के शरीर का विकास, मस्तिष्क का आनन्द और बचपन के स्वाभाविक आवेगों को संतुष्टि प्राप्त होती है।''52

2. मानसिक या बौद्धिक विकास :– टैगोर पुस्तकों से विचार प्राप्त करना मानसिक विकास का केवल एक अंग मानते थे। उन्होंने पुस्तकों की बजाय प्रकृति एवं जीवन से प्रेम एवं वास्तविक परिस्थितियों से प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त करने पर अधिक बल दिया है। इसी प्रकार का एक विचार कबीर दास के दोहे में मिलता है–

पौथी पढ़ि–पढ़ि जग मुए, पंडित भया न कोए।

ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होए ।।53

टैगोर आगे कहते हैं कि –

"पुस्तकों की बजाय प्रत्यक्ष रूप से जीवित व्यक्ति को जानने का प्रयास करना शिक्षा है। इससे न केवल कुछ ज्ञान प्राप्त हो, बल्कि इससे जानने की शक्ति का विकास होता है, यह कक्षा में सुने जाने वाले व्याख्यानों से होना असम्भव है। यदि हमारे मस्तिष्क को संवेगों और कल्पना की वास्तविकता से पृथक कर दिया जाय तो वे निर्बल तथा विकृत हो जाते हैं।"54

3. संवेगात्मक विकास :– टैगोर बालक के शरीर, मन तथा संवेगों तीनो का सर्वांगीण विकास चाहते थे। अतः उन्होंने शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ–साथ संवेगात्मक विकास पर भी बल दिया है। उनके अनुसार कविता, संगीत, चित्रकला नृत्यकला इत्यादि के द्वारा बालकों को संवेगात्मक प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए जिससे उनमें सौन्दर्य, प्रेम, सहानुभूति इत्यादि भावनाओं का विकास हो।

4. सामंजस्य की क्षमता का विकास :– टैगोर का विचार था कि बालकों को जीवन की वास्तविक परिस्थितयों, विभिन्न सामाजिक स्थितियों तथा पर्यावरण की जानकारी करायी जाए और उनसे सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास किया जाए। टैगोर का कहना था कि – "इस समय हमारा ध्यान चाहने वाली प्रथम और महत्वपूर्ण समस्या है हमारी शिक्षा और हमारे जीवन में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या।"55

5. सामाजिक विकास :– यद्यपि टैगोर ने प्राकृतिक शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया किन्तु उन्होंने बालक के सामाजिक विकास पर भी बल दिया। उनका विचार था कि बालकों में सामाजिक विकास करना शिक्षा का एक अति महत्वपूर्ण उद्देश्य

है तभी वे स्वयं तथा समाज की प्रगति में हाथ बंटा सकेंगे।

6. **नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास** :– बालक के पूर्ण विकास के लिए टैगोर ने अनेक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों या आदर्शों को बताया है जैसे – अनुशासन, शान्ति, धैर्य व मनुष्य के आन्तरिक विकास के मूल्य आदि। अनुशासन के मूल्य से टैगोर का तात्पर्य बालकों में 'आत्म–अनुशासन' का विकास करना है शान्ति और धैर्य के मूल्यों को प्राप्त करना अनुशासन का अन्तिम लक्ष्य है आन्तरिक विकास के मूल्य से टैगोर का तात्पर्य है – ''आन्तरिक स्वतन्त्रता के इस आदर्श को सब प्रकार की दासता से मुक्ति के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इसका उद्देश्य मस्तिष्क को पुस्तकीय ज्ञान के आधिपत्य से स्वतन्त्र करना है।''56

टैगोर ने प्रचलित भारतीय विद्यालयों के दोषों का निराकरण करने तथा बालकों के उत्तम विकास को दृष्टि में रखकर कुछ क्रियाओं को करने पर बल दिया है। इसी कारण से टैगोर ने अपने 'शान्ति निकेतन' और बाद में 'विश्व भारती' में विषयों के साथ–साथ विभिन्न क्रियाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इसके अतिरिक्त टैगोर ने बालकों के पूर्ण विकास के लिए कछ 'पाठान्तर क्रियाओं' को भी स्थान दिया। यथा–

1. विषयों में – इतिहास, भूगोल, विज्ञान, प्रकृति–विज्ञान, साहित्य आदि।

2. क्रियाओं में – बागवानी, भ्रमण, अभिनय, ड्रॉइंग, क्षेत्रीय अध्ययन, 'प्रयोगशाला कार्य' अजायबघर के लिए वस्तुओं का संग्रह आदि।

3. पाठान्तर क्रियाएं – समाज सेवा, छात्र–स्वशासन, खेल–कूद आदि।

इस प्रकार टैगोर का पाठ्यक्रम विषय प्रधान न होकर क्रिया प्रधान रहा है। डा0 एच0वी0 मुखर्जी ने ठीक ही कहा है, ''इस दृष्टि से टैगोर की शिक्षा संस्थाओं में लागू किया जाने वाला पाठ्यक्रम क्रिया – प्रधान पाठ्यक्रम रहा है।

अतः बालकों को क्रिया द्वारा सीखने का अवसर देना चाहिए। 'भ्रमण द्वारा सीखना' भी शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है। 'वाद–विवाद एवं प्रश्नोत्तर विधि' का शिक्षण विधियों में महत्वपूर्ण स्थान है।

टैगोर जी विद्यालयों को प्राचीन गुरू–आश्रमों के समान रखने पर बल देते हैं। विद्यालय इस प्रकार होना चाहिए कि वह सम्पूर्ण जीवन व उसके विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित हो। इस सम्बन्ध में टैगोर जी विद्यालय के दायित्व को ओर अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि विद्यालय राष्ट्र की संस्कृति को सुरक्षित रखने और उसे विभिन्न ढंग से कला, संगीत, साहित्य एवं अन्य विषयों के द्वारा प्रदान करें। अतः विद्यालय के सम्बन्ध में टैगोर जी की धारणा अति व्यापक एवं व्यावहारिक है। तथा हमारी प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित है।

इस प्रकार रवीन्द्र नाथ टैगोर अपनी विचार–धारा से तो प्रकृतिवादी थे परन्तु उन पर प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं धैर्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। चाहे विद्यालय के गुरूकुलीय स्वरूप की बात हो, अनुशासन की अथवा शिक्षण विधियों की बात हो गीता का स्पष्ट प्रभाव टैगोर जी पर दिखाई देता है। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा है –

Dr. R.N. Tagore was not only the poet and artist of modern India but also a great sentinal of India whose high moral principles stood out uncompromisingly on all occasions. For fifty years and more he was great teacher the gurudev as he was lovingly called of India.

महायोगी श्री अरविन्द घोष के दर्शन पर गीता का प्रभाव :– श्री अरविन्द के अनुसार इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है। वही इस जगत का निर्माण करता है। उनके जीवन दर्शन को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत देखेंगे।

1. अत्युत्तम मानव :– गीता ने जिसे पुरूषोत्तम एवं अन्य दर्शनों में जिसे परमतत्व या ईश्वर या भगवान कहकर सम्बोधित किया गया है उसे ही अरविन्द अत्युत्तम मानव की संज्ञा प्रदान करते हैं। अरविन्द के अनुसार अत्युत्तम मानव में सत्–चित् एवं आनन्द का एकी भूत रूप होता है और रूप सार्वभौमिक स्तर पर विद्यमान रहता है। इसका एक अत्युत्तम मन एवं अत्युत्तम चेतना होती है। उनका कथन है कि एक साधारण मानव, मन, प्राण, आत्मा, देह आदि के आवरण को दूर करके अपने में स्थित वास्तविकता को पहचान सकता है और सत्–चित् आनन्द स्वरूप इस अत्युत्तम मानव का साक्षात्कार कर सकता है तथा ज्ञान, प्रेम, क्रिया द्वारा उस तक पहुँच सकता है।

2. पुरूष :– पुरूष का तात्पर्य अन्य प्राणियों एवं विश्व मानवों से है। अरविन्द का विचार है कि प्रत्येक मनुष्य को एक अजर व अमर प्रकृतिवासी आत्मा होती है। इस पुरूष की रचना प्रकृति, बुद्धि, सूक्ष्म एवं स्थूल मनस, अहंकार, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, सूक्ष्म एवं स्थूल तत्वों से हुई है। पुरूष की वास्तविक स्थिति और उसके वास्तविक स्थिति और उसके वास्तविक स्वरूप को हम तर्क द्वारा नहीं जान सकते; बल्कि इसके लिए आत्म समर्पण यह रहस्मय कुंजी है। इस प्रकार अरविन्द के विचार से पुरूष समाज की एकता का ध्यान रखने वाला व्यक्ति है।

गीता में कहा गया है कि

''सर्वान् धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण ब्रज'' आदि यहाँ शरणागत का भाव ही व्यक्त है जिसे अरविन्द जी मानते हैं

योगः– श्री अरविन्द ने अपनी पुस्तक Life Divine में कहा है कि 'योग में छिपी हुई शक्तियों द्वारा नियमानुसार आत्म पूर्णता की ओर प्रयास कर संसार की सीमा से ऊँचे उठकर जीवन से ऐक्य स्थापित करना मनुष्य का कर्म है। स्पष्ट है कि

अरविन्द के अनुसार सम्पूर्ण जीवन ही योग है। अरविन्द ने योग अष्टांग का अभ्यास आवश्यक बताया है। तभी उच्चतर तत्व का अवतरण होता है इसके लिए उन्होंने प्रेम, भक्ति, आत्म समर्पण विवेक एवं चेतना, कर्म करना आवश्यक है। अरविन्द के अनुसार योग संसार से बाहर नहीं है बल्कि उसमें रहने में है, कर्म करने में है तभी दैवीय जीवन की अनुभूति होती है और पूर्ण योग ही मुक्ति है जिसमें दिव्य जीवन समस्त मानव में फैलता है। अरविन्द जी के उपर्युक्त सभी विचार गीता से प्रभावित प्रतीत होते है। गीता की भांति ये भी योग, ज्ञान, कर्म, भक्ति, समर्पण आदि की चर्चा करते हैं वास्तव में गीता से परे किंचित भी तथ्य नहीं शेष है।

सृष्टि :– अरविन्द के अनुसार सृष्टि को समस्त तत्वों में अत्युत्तम सत्ता और चेतना विद्यमान है। इस चेतना की अभिव्यक्ति सभी वस्तुओं में होती है। जिनमें चेतना नहीं होती है उन्हें चेतना युक्त बनाया भी जा सकता है। इस प्रकार अरविन्द के अनुसार सृष्टि का अस्तित्व सत्य है। और मानव के उच्चतर उठने का स्थल है। जिसमें कर्म की अति महानता है।

महान संश्लेषण :– अरविन्द जी ने अपने दर्शन में भारतीय योग दर्शन, वेद, उपनिषद शक्ति दर्शन एवं गीता दर्शन का महान संश्लेषण कर उन्हें नवीन रूप में प्रकट किया है। उन्होंने शंकर के मायावाद का खण्डन कर सृष्टि व पदार्थ को वास्तविक माना और इस प्रकार यथार्थवादी, बुद्धि को आत्मा का प्रकटीकरण बताया तो प्रयोजनवादी दर्शन का समर्थन किया। इसके अलावा समाजवादी दर्शन को अपने जीवन दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

महायोगी श्री अरविन्द घोष का शिक्षा दर्शन एवं उस पर गीता का प्रभाव :– अरविन्द ने अपने दार्शनिक विचारों एवं शिक्षा दर्शन के आधार भूत सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा के विभिन्न अंगों व पहलुओं पर प्रकाश डाला है।

अरविन्द ने शिक्षा के प्रति व्यापक दृष्टिकोंण अपनाया है। उनके अनुसार केवल सूचनायें देना अथवा सूचनाएं एकत्र करना शिक्षा नहीं है। उन्हीं के शब्दों में "सूचनाएं ज्ञान की नींव नहीं हो सकती है। वे अधिक से अधिक वह सामग्री हो कसती है जिसके द्वारा जानने वाला अपने ज्ञान अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकें, अथवा वे बिन्दू है जहाँ से प्रारम्भ किया जाए या नई खोजों का निकलना प्रारम्भ किया जाए। वह शिक्षा जो अपने को ज्ञान देने तक सीमित रखती है वह शिक्षा नहीं है।"57

इस दृष्टि से अरविन्द ने शिक्षा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि

"सच्ची एवं जीवित शिक्षा केवल वह है जिसके द्वारा बच्चे की छिपी हुई शक्तियों का विकास होता है और उसे जीवन मस्तिष्क, राष्ट्र की आत्मा एवं मानवता की आत्मा और मस्तिष्क से उचित सम्बन्ध जोड़ने में सहयोग प्राप्त होता है। वास्तविक शिक्षा व्यक्ति के मस्तिष्क आत्मा विवेक तथा बुद्धि को उचित मार्ग प्रदर्शन करती है। प्रशिक्षित करती है तथा विकसित करती है।"58

"शिक्षा मानव के मस्तिष्क एवं आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है और इसमें ज्ञान, चरित्र एवं संस्कृति की जागृति करती है।'"59

शिक्षा के उद्देश्य –

1. **शारीरिक विकास एवं शुद्धता –** श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का पहला उद्देश्य बालको का शारीरिक विकास करना है। शारीरिक विकास के साथ–साथ शारीरिक शुद्धता पर भी बल देते है। अरविन्द का विचार है कि बिना शारीरिक शुद्धता एवं विकास के साधना नहीं की जा सकती है। बिना साधना के व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास सम्भव नहीं है। इसलिए कहा गया है कि –

''शरीर माद्य खलु धर्म साधनम्।''

2. **ज्ञानेन्द्रियो का प्रशिक्षण** – मनुष्य पॉच इन्द्रियों द्वारा ज्ञान ग्रहण करता है। श्री अरविन्द ने मन को भी ज्ञानेन्द्रिय माना है।

इस प्रकार उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने की छः इन्द्रियां मानी है – (1) नेत्र (2) कर्ण (3) नाक (4) जीभ (5) त्वचा (6) मन।

अरविन्द का विचार है कि शुद्ध चित्त द्वारा मन की बाधाओं को रोका जा सकता है। ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण उनके उचित प्रयोग पर निर्भरहै। श्री अरविन्द अनुसार तीन साधन अपनाये जा सकते है।

1. बालको के अवधान को विषय की ओर केन्द्रित करना।
2. तामसी भावको दूर करना तथा
3. अभ्यास

3. **अन्तःकरण का विकास** – अरविन्द ने अन्तःकरण के चार स्तर बतलाये है – (1) चित्त (2) मनस (3) बुद्धि तथा (4) विलक्षण प्रतिभा या ज्ञान उनका विचार है कि इन चारों स्तरों के विकास से ही मनुष्य पूर्व मानव बन सकता है। अतः बालकों को ऐसी शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जो कि अंतःकरण के इन चारों स्तरों का भली भॉति विकास कर सके।

4. **नैतिकता का विकास** – उन्होने मनुष्य के नैतिक विकास के लिये तीन मुख्य बातें बताई है। 1. मनुष्य का संवेग 2. आदतें और साहचर्य 3. स्वभाव। उनका कथन है कि मनुष्य के नैतिक विकास के लिए इन तीनों का रूपान्तर करना अति आवश्यक है। इसके लिए निर्देश सत्संग और धार्मिक शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इन तीनों का परिष्कार करके मानव हृदय को विशुद्ध करते है।

5. **आध्यात्मिकता का विकास** – यह शिक्षा का सर्वोच्च उद्‌देश्य है क्योंकि

आध्यात्मिक विकास ही मनुष्य को पूर्ण मानव बना सकता है। आध्यात्मिक विकास के लिए उन्होनें योग, साधन तथा ब्रह्मचर्य पर बड़ा वल दिया है। उनका विचार है कि ऐसी शिक्षा दी जाय कि व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास हो और वह सुख पा सकें। यह सुख भौतिक सुख नही अपितु दिव्य सुख है।

6. <u>विशिष्ट क्षमताओं का विकास –</u> प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशिष्ट क्षमताऐं पाई जाती है। शिक्षा का उद्देश्य इन क्षमताओं का वांछित दिशा की ओर विकास करना होना चाहिए।

संक्षेप में हम कह सकते है कि श्री अरविन्द ने शिक्षा के पॉच उद्देश्य – भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक और आध्यात्मिक विकास बताए है।

इनकी प्राप्ति के लिये वे उपदेश, प्रवचन, व्याख्यान और अन्य मौखिक विधियां के प्रयोग की स्वीकृति तो देते थे लेकिन इस शर्त के साथ कि किसी भी स्थिति में बच्चों को रटाया नही जायेगा। बल्कि उन्हें स्वयं के प्रयत्नों से आत्मासात कराया जायेगा। स्वाध्याय विधि को अपनाते समय वे इस बात पर ध्यान देते है कि योग की क्रिया सीखने की उत्तम विधि है।

श्री अरविन्द का विचार था कि शिक्षक को बालकों के मनोभावों एवं रूचियों को ध्यान में रखकर अध्यापन करना चाहिए।

बालकों की शक्तियों के अनुसार विषयों की प्रकृति का अध्यापन होना चाहिए। बालक को स्व–प्रयत्न तथा स्व–अनुभव द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना। अरविन्द जी शिक्षण में बालक की स्वतन्त्रता पर अत्यधिक बल देते थे। उनका मानना था कि बालकों को सदैव प्रेम एवं सहानुभूति के साथ पढ़ाना चाहिए। वे क्रिया द्वारा सीखने पर जोर देते थे इसलिए उन्होने चित्रकला, वास्तुकला आदि क्रिया प्रधान विषयों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मातृभाषा आदि को शिक्षण का

माध्यम बनाने पर बल दिया है।

इस प्रकार अरविन्द घोष पर भी गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। गीता का कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा सत–चित्त–आनन्द इन तीनों तत्वो का प्रभाव अरविन्द के जीवन एवं शिक्षा दर्शन पर स्पष्ट दिखायी देता है।

उक्त आधुनिक भारतीय शिक्षाशस्त्रियों के अलावा प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों यथा शंकराचार्य, दयानन्द सरस्वती तथा विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन पर भी गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

शंकराचार्य का वेदान्त दर्शन एवं गीता का उस पर प्रभाव

शंकर का अद्वैत वेदान्त भारतीय चिन्तन धारा का चरमोत्कर्ष है। इसने हमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एकता (ब्रह्म तत्व) और अनेकता (ब्रह्म के माया तत्व) का स्पष्ट ज्ञान कराकर हमे अपनी अनन्त शक्ति से परिचित कराया है इस ब्रह्माण्ड एवं उसमें मानव जीवन के वास्तविक स्परूप का स्पष्ट ज्ञान होने के कारण यह दर्शन मानव की सार्वभौतिक एवं सार्वकालिक शिक्षा के स्वरूप को निश्चित करने में भी सफल रहा है।

शंकर का वेदान्त दर्शन की वह विचार धारा है जो इस ब्रह्माण्ड को ब्रह्म ही सत्य है और यह जगत असत्य है। यह आत्मा को ब्रह्म का अंश और परमात्मा को ब्रह्म का रूप मानती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है जो ज्ञान योग द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। उपर्युक्त विचार गीता में भी प्रस्तुत किये गये है।

शंकर की दृष्टि से ज्ञान दो प्रकार का होता है – अपरा (व्यावहारिक) और परा (आध्यात्मिक) और इन दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने की एक ही विधि है– श्रवण, मनन, निदिध्यासन। शंकर के अनुसार अनादि और अनन्त ब्रह्म को साक्षात

करने के लिए जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह वेद, ब्रह्मण, आरण्यक, उपनिषद और गीता के श्रवण अथवा अध्ययन, उस पर मनन और उससे प्राप्त ज्ञान का नित्य प्रयोग करने पर ही प्राप्त हो सकता है। बिना अनुभूति के, केवल तर्कों के आधार पर वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है।

शंकर ने शिक्षा प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न तो नहीं किया परन्तु उन्होंने उसके उद्देश्य निश्चित करने में भारी भूमिका अदा की हैं। उनकी दृष्टि से मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य भेद दृष्टि की समाप्ति और अभेद दृष्टि की प्राप्ति होता है। इसे ही उन्होनें मुक्ति कहा है। उनकी दृष्टि से शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य भी यही होना चाहिए। परन्तु इसके साथ–साथ उन्होने इस जगत और मानव शरीर की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार कर उसके ऐहिक जीवन सम्बन्धी उद्देश्यों का भी प्रतिपादन किया है। उन्होनें शिक्षा द्वारा मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक, नैतिक एवं चारित्रिक, इन्द्रिय निग्रह एवं चित्तशुद्धि तथा आध्यात्मिक विकास सभी पर बल दिया है।

शिक्षा की पाठ्यचर्या के विषय में शंकर का भी यही दृष्टिकोण है कि मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के लिए व्यावहारिक विषय एवं क्रियायें तथ आध्यात्मिक जीवन के लिए आध्यात्मिक विषय एवं क्रियायें सम्मिलित करने की बात कही है। गीता की भांति शंकर भी लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान को आवश्यक मानते है।

शिक्षण विधियों के विषय में शंकर पर गीता का अत्यन्त गहर प्रभाव है वे गीता की भांति केवल श्रवण अथवा स्वाध्याय में विश्वास नहीं करते, वे उसके वाद मनन (चिन्तन) और निदिध्यासन (नित्य) प्रयोग पर भी बल देते है। हमारी दृष्टि से श्रवण अथवा स्वाध्याय, मनन अर्थात चिन्तन और निदिध्यासन अर्थात नित्य प्रयोग द्वारा

अनुभूति ज्ञान ही सच्चा ज्ञान होता है और यही शिक्षण की सर्वोत्तम विधि है।

अनुशासन के लिए शंकर इन्द्रिय निग्रह अर्थात इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने की बात पर जोर देते है उनकी दृष्टि से आत्म–नियन्त्रण अनुशासन की उच्चतम सीमा है।

शंकराचार्य जी शिक्षक के दो कार्य बताते है –

1. शिष्य को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करना और उसे आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति कराना। तथा शिक्षार्थी को साधन चतुष्टय में इन्द्रिय निग्रह, मन की एकाग्रता, भोग से विरक्ति और गुरू में श्रद्धा। इन गुणों का होना आवश्यक है।

भारत में शंकर के बाद जितना भी चिन्तन हुआ है, वह उनके वेदान्त दर्शन के इधर–उधर ही हुआ है। यदि हम आधुनिक युग के भारतीय चिन्तको दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, गॉधी, टैगोर और अरविन्द के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का विश्लेषण करे तो हम पायेगे कि वे शंकर के वेदान्त दर्शन के निकट है तथा वेदान्त दर्शन गीता दर्शन के निकट है।

दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारो पर गीता का प्रभाव –

महर्षि दयानन्द सरस्वती धर्म मर्मज्ञ, आर्य समाज के संस्थापक, समाज सुधारक और राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचारक के रूप में अधिक प्रसिद्ध है। दयानन्द जी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के सबसे बड़े समर्थक थे।

दयानन्द शिक्षा को ज्ञान अथवा विद्या प्राप्त करने का साधन मानते थे। उनके अनुसार वह ज्ञान जिसने ब्रह्म, जीवात्मा और पदार्थो के वास्तविक स्वरूप का वोध होता है और मनुष्य का लौकिक एवं पारलौकिक दृष्टि से शुभ एवं कल्याण होता है, वही शिक्षा है। उन्होने कहा है –

''विद्या विलास मनसो धृतशील शिक्षा।''60

'विद्या में बिलास करने वाले मन का निर्माण करना ही शिक्षा है। दयानन्द जी मनुष्य जीवन के चारो पुरूषार्थी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के समर्थक थे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य – शारीरिक एवं मानसिक बिकास, यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति, समाज सुधार की शाक्ति का विकास, सद्ज्ञान का विकास एवं सद्गुणों को विकास है इस प्रकार उन्होने सभी प्रकार के विकास पर वल दिया है।

पाठ्यचर्या में दयानन्द जी ने प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन पर बल दिया। गीता की भांति इन्होने भी उपदेश तथा व्याख्यान विधि, स्वाध्याय विधि, प्रत्यक्षानुभव विधि एवं तर्क विधि अपनाने की बात कही है।

शिक्षार्थी को मन, वचन तथा कर्म से शुद्ध होना चाहिए एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। दयानन्द जी कठोर अनुशासन के पक्षपाती है तथाा दण्ड व्यवस्था स्वीकार करते है। इनके अनुसार अध्यापक सत्य ज्ञान का दृष्टा होता है उसे शिक्षार्थीयों के साथ पिता तुल्य व्यवहार करना चाहिए।

इस प्रकार भारतीय शिक्षा को भारतीय बनाने, मातृभाषा को माध्यम बनाने तथा प्राचीन ग्रन्थो गीतादि के पठन्–पाठन् को बढ़ावा देने का प्रयास किया सर यदुनाथ के शब्दों में ''जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा तो नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायेगा।

उपर्युक्त सभी भारतीय शिक्षा शस्त्रियों पर गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखलायी पड़ता। गॉधी जी ने गीता में बतायी गयी मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक दोनो जीवन के विकास की बात बुलन्द की है। स्वामी विवेकानन्द ने तो गीता दर्शन को जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया है। शंकर ने तथा अरविन्द ने शिक्षा में योग की क्रियाओं को महत्व दिया है। वास्तव में गीता दर्शन सर्वधर्म एवं दर्शनों का

मूल, यदि उसे सार्वभौतिक एवं सर्वकालिक दर्शन कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। आज हम जिस वर्ग हीन, धर्म निरपेक्ष, एवं समाजवादी व्यवस्था की बात करते है वह गीता दर्शन की ही अभेद दृष्टि के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ अध्याय पंचम।

1. यजुर्वेद – 1/16
2. ऋृगवेद – 3/11/3
3. एडम्स, सर जॉन – Evolution of educational theory, London, Mackmilan chepter.
4. गोयन्दका, जयदयाल – "श्री मदभगवद्गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका" गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ – 80
5. वही – पृष्ठ ' 82
6. गॉधी, महात्मा – एजूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन पृष्ठ – 4
7. गॉधी, महात्मा–"गुजरात महाविद्यालय के व्याख्यान" से दिनांकः13.01.921
8. गॉधी, महात्मा – "बापू की सीख" स0स0म0 नई दिल्ली 1949, पृष्ठ – 85–86–87
9. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 261
10. तदैव – पृष्ठ – 182
11. पटेल, एम0एस0 – "The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi." नवजीवन प्रेस अहमदाबाद, पृष्ठ – 176
12. गॉधी, महात्मा – "हरिजन" साप्ताहिक 23.05.1936 नवजीवन प्रेस अहमदाबाद
13. गॉधी, महात्मा – "हरिजन" साप्ताहिक 31.07.1937 एन0पी0, अहमदाबाद
14. गॉधी, महात्मा – "हरिजन" साप्ताहिक 31.07.1937 एन0पी0, अहमदाबाद
15. अग्रवाल, प्रेमलता – युग पुरूष महात्मा गॉधी मेरठ 1972 पृ0सं0 18
16. मालवीय, पद्मकान्त, संख्या – 117, "मालवीय जी के झलकियां," पृष्ठ–290
17. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 394
18. महाभारत – शान्ति पर्व
19. महाभारत – शान्ति पर्व

20. महाभारत – अनुशासन पर्व
21. चतुर्वेदी, सीताराम–महामना पं0 मदन मोहन मालवीय खण्ड तीन पृ0–10
22. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 63
23. वही – पृ0 59
24. मालवीय, मदनमोहन – हिन्दू धर्मोपदेश, संवत 1989 – पृ0 28
25. मालवीय, मदनमोहन – हिन्दू धर्मोपदेश, संवत 1989 – पृ0 29
26. मालवीय, पी0के0–मालवीय जी के लेख नेशनल पब्लिशिंग हाऊस – 1962
27. अभ्युदय – महामना मदन मोहन मालवीय, जीवन और नेतृत्व, मुकुट बिहारी लाल 26 मार्च 1909
28. भर्तृहरि – नीतिशतक
29. चतुर्वेदी, सीताराम – आधुनिक भारत के निर्माता पं0 मदन मोहन मालवीय (सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकर – 1970
30. द्विवेदी, के0डी0–''भारतीय पुर्नजागरण और मदन मोहन मालवीय'' पृष्ठ–143
31. तदैव – पृष्ठ – 36
32. वासुदेव, शरण – महामना मदन मोहन मालवीय जी के लेख और भाषण (संकलन) पृ0 68
33. तदैव – पृष्ठ – 55
34. मनुस्मृति – स्मृति ग्रन्थ
35. भर्तृहरि – नीतिशतक
36. भर्तृहरि – नीतिशतक
37. गोयन्दका, जयदयाल – पृ0 314
38. वर्मा, ईश्वरी प्रसाद – मालवीय जी के सपनो का भारत किताब घर, दिल्ली, 1967
39. गोयन्दका, जयदयाल – पृष्ठ – 371
40. लाल, रमनबिहारी–शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त–पृ0–2
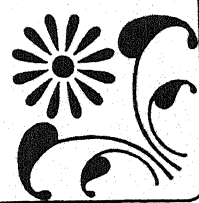
41. तदैव – पृष्ठ – 125–134

42. तिलक बाल गंगाधर – गीता रहस्य – पृ0 798

43. तदैव – पृष्ठ – 731

44. तदैव – पृष्ठ – 634

45. तुलसी दास – रामचरित मानस

46. तिलक बाल गंगाधर – गीता रहस्य – पृ0 645

47. ईशोपमिषद् – उपनिषद्

48. तिलक, बाल गंगाधर – गीता रहस्य – पृ0 815

49. वही – पृष्ठ – 800

50. टैगोर, रवीन्द्र नाथ – "Religion of Man" (संकलन) "Fundamental Principles of Education" (शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त) रामबाबू गुप्ता अलका प्रकाशन कानपुर – पृष्ठ – 229

51. टैगोर, रवीन्द्र नाथ – "Personality" संकलन – शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त' रामबाबू गुप्ता

52. टैगोर, रवीन्द्र नाथ – "Personality" संकलन, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद

53. कबीर दास – साखी

54. टैगोर, रवीन्द्र नाथ – "Personality" संकलन – शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त' रामबाबू गुप्ता – पृ0 232

55. वही – पृ0 240

56. वही – पृ0 241

57. वही – पृ0 250

58. वही – पृ0 258

59. वही – पृ0 258

60. लाल, रमन बिहारी – पृ0 117

षष्ठम अध्याय

अतीत हमारा आधार है, और वर्तमान हमारी साधन सामग्री है। भविष्य हमारा लक्ष्य और शिखर है। राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में इनमें से प्रत्येक को उसका उचित और स्वाभाविक स्थान मिलना चाहिए।

(श्री अरविन्दो घोष)

अध्याय षष्ठम्

श्री मद्भगवद् गीता के शैक्षिक निहितार्थ का भारतीय लोकतांत्रिक, परिवेश में संगति–

इस अध्याय में यह प्रकट करने का प्रयास किया गया है कि श्रीमद् भगवद गीता के शैक्षिक निहितार्थ का भारतीय लोकतान्त्रिक परिवेश में किस सीमा तक संगति है। श्री गीता के आधार पर भारत के लिए जिन तीन क्षेत्रों में विशेष संगति है वे तीन क्षेत्र हैं–

1. प्रजातांत्रिक व्यवस्था 2. मूल्यों का ढांचा 3. शिक्षा

यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो ये विशिष्टि क्षेत्र वस्तुतः हमारे भारतीय राष्ट्रीय जीवन से भिन्न नहीं हैं; बल्कि हमारे सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक और आर्थिक ढांचे हेतु समवेत होकर एक आधार का निर्माण करते हैं। प्रजातन्त्र, मूल्य एवं शिक्षा आपस में पूर्णतः सम्बन्धित है। इसी संगति को प्रकट करने का हम यहाँ प्रयास करेंगे।

भारत में जनतांत्रिक व्यवस्था हेतु इसके विचारों की – श्री गीता दर्शन भारत के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय है। श्री गीतां हमें यह सिखाती है कि अपनी प्रत्येक सांस हम कैसे जिए, जिससे हमारा जीवन सार्थक हो जाए।

आज चारों ओर भ्रष्टाचार, मक्कारी, बेइमानी, चोरी चकारी, निराशा, घृणा आदि जितनी भी बुराईयां देखने को मिलती हैं; उसका सीधा सा कारण है व्यक्ति का अपने जीवन के लक्ष्य को न पहचानना। श्री गीता शिक्षा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो मानव को आत्मबोध की ओर ले जाती है। आत्मबोध व्यक्ति को कलुषता से ऊपर

उठाता है और उसे उदार बनाता है।

आप हमारे बालकों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा है। यहीं बालक हमारे देश के भावी नागरिक है। ये केवल फैशन की चकाचौंध तथा भोगवादी संस्कृति में डूब रहे हैं। आज के युवक टेलीविजन, पत्र–पत्रिकाऐं एवं मुख्य रूप से फैशन, सेक्स और उपभोक्तावाद को ही प्रोत्साहन देते हैं। इंटरनेट और सायवर कैफे, डिस्को थियेटर आदि युवाओं के नये मंदिर हैं। इंटरनेट ज्ञान की बजाय घटिया ही नहीं, बल्कि अश्लील मनोरंजन के विशेष केन्द्र बन गये हैं। व्यापार में मिलावट, बेईमानी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, रिश्वत इत्यादि के वातावरण में बालक पलता–बढ़ता है। विद्यालयों में ट्यूशन की बढ़ती प्रवृत्ति ने गुरू शिष्य के पवित्र रिश्ते पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

संस्कार, आचरण की पवित्रता एवं परम्पराओं की समझ इसके प्रमुख घटक हैं। इन सबको सूत्रबद्ध करता है अनुशासन। आज अनुशासन के स्थान पर उच्छृंखलता एवं स्वच्छन्दता बढ़ रही है। सत्ता न परिवार में स्वीकार्य है, न स्कूल में और न समाज में। सत्ता की अस्वीकृति एवं सहिष्णुता का अभाव ही तो परिवारिक विघटन का मुख्य कारण है। रिश्तों की गहराई आज भाव–भावना से नहीं, आर्थिक स्तर से प्रभावित है। जो महंगा उपहार दे उसे नजदीकी माना जाता है और साधारण उपहार की उपेक्षा की जाती है।

नैतिकता एवं संस्कार तो किन्ही विशिष्ट, पत्रिकाओं विशिष्ट चैनल या विशिष्ट सुधीजनों के प्रवचनों तक ही सीमित रह गई है। अपने चारों और के आचरण एवं वातावरण से बालकों, किशोरों एवं युवाओं को गलत दिशा ही मिल रही हे। वे अपना ही हित नहीं कर पा रहे हैं तो राष्ट्रहित के बारे मे क्या सोचेगें।

संस्कार शीलता सभी महापुरूषों एवं श्रीमद् भागवद् गीता जैसे अनेक पवित्र

ग्रन्थ सिखातें आ रहे हैं। वर्तमान में भी युगपुरूष आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ, आचार्य श्री रामशर्मा ने अहिंसा एवं संस्कारों की शिक्षा की अलख जगाई है, और ये सब अभी तक अनथक जगा रहे है।

जब तक बच्चे अपना रोल माडल फिल्मों एवं टी0वी0 सीरियल के अभिनेता–अभिनेत्रियों अथवा क्रिकेट के सितारों में ढूंढते रहेंगे तब तक विद्यालयों में सुसंस्कृत आदर्श आचरण देखने को नही मिलेगा। एक नदी सामान्यतः अपने उद्गम से ऊपर नहीं बढ़ सकती । गंगा यदि गंगोत्री पर ही गंदी हो तो फिर आगे क्या होगा।

भविष्य सामान्यतः वर्तमान पर ही आधारित होता है। यदि वर्तमान प्रदूषित है तो भविष्य पवित्र कैसे होगा। यदि हम चाहते हैं कि नया भारत सुसंस्कृत होकर विश्व के समक्ष प्राचीन काल की भांति संस्कार का आदर्श प्रस्तुत कर सके तो प्रभावी एवं संस्कार शिक्षा के लिए रीमाद् भगवद् गीता की शिक्षाओं को जीवन में आत्म ज्ञात करना पड़ेगा।

गीता भी संस्कार शिक्षा पर बल देती है। गीता के अनुसार हम स्वयं सहिष्णुता, सेवाभाव, नम्रता, सत्यता, निर्भयता, अनुशासन, परोपकार, निर्लिप्तता, करूणा एवं परिश्रम शीलता को अपनायें तो हमारा व्यक्तिगत आचरण बच्चों को वह सब कुछ सीखने को प्रेरित करेगा जो हम चाहते है। हमें कह के नहीं वरन् करके सिखाना हैं। सद् साहित्य का अध्ययन महापुरूषों की वाणी एवं ईश्वर आराधना का प्रभाव भी अपनी शक्ति रखता है जो मानव की जीवन शैली को प्रभावित करते है।

श्री गीता दर्शन के अनुसार सत्पात्र ही ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी है। यह बात बिल्कुल सही है; क्योंकि कुपात्र को यदि ज्ञान दिया गया तो उसका दुरूपयोग ही करेगा।

जैसे – वर्तमान में मानव की अनुकृति बनाने की होड़ चल रही है, यदि कुपात्रों के हाथों यह ज्ञान लग गया तो वे समाज में अनाचार के ही बीज बोएंगे।

श्री गीता दर्शन में यह भी वर्णन किया गया है कि छात्रों को सुविधाएं उनकी योग्यता के अनुरूप दी जानी चाहिए। यदि हमारे देश में गीता दर्शन के इस बिन्दु को अपना लिया जाय तो निश्चित ही देश का स्थान विश्व में प्रथम होगा। आज हमारे राष्ट्र को इसकी महती आवश्यकता है।

श्री गीता में कर्म को महत्वपूर्ण माना गया है तथा यह बात कही गई है कि व्यक्ति को अपना पैतृक कर्म ही अपनाना चाहिए; क्योंकि उसी में वह पूर्ण दक्षता प्राप्त कर सकता है। जाहिर है डॉक्टर का बेटा यदि डॉक्टर बनता है तो वह ज्यादा सफल होगा अपेक्षाकृत किसान के बेटे के उसी प्रकार उत्तम कृषक का बेटा सफल किसान ही होगा, न कि डॉक्टर का बेटा उतना सफल किसान हो पायेगा। अतः शिक्षा प्रदान करते समय बालक के अनुवांशिक गुणों को ध्यान में रखत हुए उनका मार्ग दर्शन करें तो निश्चित ही हम उनकी क्षमता व योग्यता को उत्कृष्टता तक ले जाने में सफल होंगे।

श्री गीता में व्यक्तिगत कर्तव्यों को सामाजिक कर्तव्य से श्रेष्ठ माना गया है। जबकि वर्तमान परिस्थितियों में यह बिल्कुल विपरीत है। बच्चे को प्रारम्भ से ही समाज की मान्यताएं, आदर्श मूल्य कर्तव्य आदि की शिक्षा दी जाती है जिससे वह अपने व्यक्तिगत कर्तव्य को भूल जाता है और सामाजिक भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करता है। ऐसा नहीं है कि सामाजिक कर्तव्य का कोई महत्व नहीं है वह भी आवश्यक है। व्यक्तिगत कर्तव्य, व्यक्ति के स्वनिर्णय लेने तथा उसके स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक है हम जानते हैं कि व्यक्ति से ही समाज बनता है। व्यक्ति समाज की इकाई है। इकाई का विश्वास ही समाज का निकास है। गीता

के अनुसार प्रत्येक के अन्दर ईश्वर निवास करता है और व्यक्ति जब अन्तःकरण की प्रेरणा से कोई कार्य करता है तो उसके पीछे ईश्वरीय प्रेरणा छिपी रहती है। सहज प्रवृत्ति से प्रेरित मनुष्य का कर्म सामाजिक अहित का कारण नहीं बन सकता हे। जब व्यक्ति सामाजिक कर्तव्य की भावना से कोई कार्य करता है, तो उससे न केवल उसका व्यक्तित्व अविकसित रहता है, अपितु उसमें अहंकार भाव प्रविष्ट हो जाता है।

इस प्रकार गीता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना ही नहीं सिखाना है, अपितु अन्तरात्मा की आवाज को सुनने, समझने एवं उसका अनुसरण करने की योग्यता भी प्रदान करना है। गीता का यह उद्देश्य भी वर्तमान समाज के लिए अति आवश्यक है।

गीता दर्शन में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती है। गीता के अनुसार प्रत्येक बालक अपनी प्रकृति के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है। अतः प्रत्येक बालक की प्रकृति को समझना शिक्षक का दायित्व बनता है।

संयम या इन्द्रियनिग्रह प्रकृति की प्रबल शक्ति को रोक नहीं पाती। ज्ञानी व्यक्ति भी अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करता है। आत्मा भौतिक प्रकृति के सम्पर्क से विभिन्न प्रकारके शरीर धारण करता है। श्री गीता में कहा गया है कि—

'प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणनि सर्वशः ।

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ।।1

जो यह देखता है कि सारे कार्य शरीर द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, जिसकी उत्पत्ति प्रकृति से हुई है, और जो देखता है कि आत्मा कुछ भी नहीं करता, वही यथार्थ में देखता है।

तात्पर्य यह है कि यह शरीर परमात्मा के निर्देशानुसार प्रकृति द्वारा बनााय गया है और मनुष्य के शरीर के जितने भी कार्य सम्पन्न होते हैं वे उसके द्वारा नहीं किये जाते। मनुष्य जो भी करता है चाहे सुख के लिये करे, या दुख के लिए, वह शारीरिक रचना के कारण उसे करने क लिए बाध्य होता है; लेकिन आत्मा इन शारीरिक कार्यों से विलग रहता है। यह शरीर मनुष्य को पूर्व इच्छाओं के अनुसार प्राप्त होता है। इच्छाओं की पूर्ति के लिए शरीर मिलता है, जिससे वह इच्छानुसार कार्य करता है।

प्रकृति से तात्पर्य बालक की जन्मजात शक्तियों से है। यह प्रकृति दोषयुक्त होने पर भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए, जिससे बालक का स्वाभाविक व प्राकृतिक विकास हो।

श्री गीता में अभिप्रेरणा को भी बहुत आवश्यक माना गया है नये ज्ञान को देने से पूर्व बालक में उस ज्ञान को प्राप्त करने की अभिप्रेरणा होना आवश्यक है। यह अभिप्रेरणा कभी–कभी परिस्थितिवश उत्पन्न होती है, कभी सहज प्रकृति के फलस्वरूप, तो कभी अध्यापक के प्रयास द्वारा जाग्रत होती है।

युद्ध भूमि में अर्जुन परिस्थितियों के कुचक्र में फंसकर मोहासक्त हो जाते है। श्री कृष्ण उसके सहज स्वभाव के अनुरूप उसे कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं; किन्तु परिस्थितियाँ इतनी उग्र होती है कि वह युद्ध करने के लिए तत्पर नहीं होता। एक तरफ उसका क्षत्रिय धर्म, दूसरी तरफ उसके अपने लोग। वह क्या करें ? और क्या न करें ? ऐसी स्थिति में अर्जुन, श्री कृष्ण से ज्ञान प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता है। अतः शिक्षक का दायित्व बनता है कि वह नये ज्ञान को देने से पूर्व बच्चों को अभिप्रेरित करें, ताकि बच्चे स्वयं सीखने के लिए तत्पर है।

श्री गीता का शिक्षा दर्शन किसी समय विशेष के लिए नहीं अपितु सार्वकालिक

है। यह हमें संघर्षों से पलायन नहीं, वरन् उनका सामना करना सिखाती है।

यदि शिक्षा को हमारे देश में केवल साक्षरता के रूप में जाना जाय और एक ऐसे साधन के रूप में जिससे हम अपने जीवन का प्रबन्ध कर सके तथा धन कमा सकें तो ऐसी शिखा का लक्ष्य केवल सूचना देना होगा। ऐसी शिक्षा हमारे समाज को कहीं का न रख छोड़ेंगी क्योंकि–

"जो शिक्षा मनुष्य के अपर्याप्त ज्ञान से प्रारम्भ होती है। वह सोचती है कि उसने संतोषजनक आधार प्रदान किया है। इसने विभिन्न विषयों की चुनी हुई बहुत सी सूचनायें विस्तार से विद्यार्थियों को प्रदान कर दी हैं जो तत्कालीन समाज व मानव संस्कृति के सर्वोत्तम भाग है। विद्यालय विषय वस्तु रूपी पदार्थ विद्यार्थियों को प्रदान करता है, वे उसे प्रयोग करते है।

यही विद्यालय का फार्मूला है; परन्तु त्रुटि तो मौलिक ही है। सूचनायें बुद्धि का आधार नहीं हो सकती है। यह तो उस पदार्थ का एक भाग होती है। जिससे अध्येता ज्ञान के प्रारम्भिक बिन्दु का, नयी खोज के केन्द्र का और विस्तृत नव–निर्माण की रचना करता है। वह शिक्षा जो स्वयं अपने को ज्ञान प्रदान करने तक सीमित रखती है वह शिक्षा नहीं है।"2

श्री गीता दर्शन के अनुसार प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था में शिक्षा की संगति इस प्रकार होनी चाहिए ताकि राष्ट्र का समाज तथा परिवार का कल्याण हो सके।

1. भारत को समर्पित सेवाभावी नागरिकों की आवश्यकता है :–

भारत जैसे वृहद देश में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो देश के प्रति समर्पित एवं सेवा भावना वाले हों। देश को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं है जो जीवन शैली में तेजी से होने वाले परिवर्तनों से अपनी आंखें मूंद लें अथवा इन

परिवर्तनों से सम्बन्धित समस्याओं को राष्ट्र या राज्य के ऊपर छोड़ दे। स्वेच्छिक हिस्सेदारी, सामुदायिक भावना, वास्तव में जनतांत्रिक समाज की मौलिक आवश्यकता है।

यदि विद्यार्थियों को सामुदायिक लक्ष्य से अवगत कराया जाय और उन्हें उनके प्रारम्भिक सूत्रपात एवं प्रयत्न के लिए उत्साहित किया जाय तो वे स्वेच्छा से सामाजिक भावना तथा देश प्रेम की सेवा भावना से ओत–प्रोत हो सकेंगे। उपनिपदों में भी कहा गया है–

''जननी जनमभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।''

2. राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक :– श्री गीता के अनुसार शिक्षा वह मन्त्र है जिससे राष्ट्र का अधिकतम हित किया जाता है। शिक्षा व्यक्ति को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने तथा नेतृत्व करने का विकास करती है। गीता के अनुसार व्यक्ति की उच्चतम योग्यताओं का रात्ट्रहित में अधिकतम् प्रयोग करना चाहिए। व्यक्ति में यदिसामाजिकता की भावना पैदा होगी तभी राष्ट्रीय एकता सम्भव होगी।

3. नागरिकों में सामाजिकता की भावना हो :– सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज की संरचना अर्थात् अन्तः क्रियाओं में परिवर्तन है। इसका तात्पर्य है मान्यताओं, विश्वासों, आदर्शों और मूल्यों में परिवर्तन है। शिक्षा वही है जो इन परिवर्तनों के साथ नागरिकों में सामाजिकता की भावना पैदा करें। शिक्षा और समाज का गहरा सम्बन्ध है। कोई भी समाज अपनी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा द्वारा ही करता है।

प्राचीनकाल की शिक्षा धर्म प्रधान थी, उसके पाठ्यक्रम में भी धर्म और नैतिकता मुख्य विषय थे। इनकी शिक्षा पर ही सबसे अधिक बल दिया जाता था। अतः व्यक्तियों में समाज के प्रति सामुदायिक भावना थी। वे स्वेच्छा से समाज के कार्यों

में हिस्सेदारी करते थे। जी0 रागनाथन के शब्दों में –

"प्रजातन्त्र के प्रमुख तत्वों का अन्तिम रूप में विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि सभी अन्य सदस्यों के साथ समाज के प्रत्येक सदस्य को सामाजिक कार्यों में स्वेच्छा से भाग लेना ही सच्चा प्रजातन्त्र है।"3

4. सांस्कृतिक चेतनता का प्रश्न :– एक सुन्दर चित्रकारी सुन्दर श्रेष्ठ मूल्यों से युक्त व्यक्तित्व तथा सौन्दर्य युक्त प्राकृतिक दृश्य निःसन्देह हमारी संस्कृति के चिन्ह है यद्यपि ये सामान्य तात्कालिक उपयोगिता के रूप में लाभप्रद नहीं है; फिर भी वे निरन्तर हमारी प्रसन्नता के प्रतीक है। ये संस्कृति की वस्तुयें महत्वपूर्ण है, क्योंकि इनमें समुदाय की संस्कृति का अर्थ निहित है इसमें समाज का उद्देश्य है। इस सांस्कृतिक चेतनता की गम्भीरता का तात्पर्य मानव जीवन के श्रेष्ठ गुणात्मक स्वर से है। मूल्यों की गहन प्रशंसा और सुन्दर योग्यता से है व्यक्ति न्याय और अन्याय, सत्य और असत्य में अन्तर करना सिखाता है। गीता के अनुसार जब हम सांस्कृतिक चेतनता को मूल्य रूप में ग्रहण करते है तो इसका तात्पर्य संकुचित स्थानीय संस्कृति से नहीं होता बल्कि विस्तृत रूप से सम्पूर्ण मानवता के ज्ञानात्मक पहलुओं से होता है।

5. सौन्दर्यात्मक अनुभव की चेतना :– श्री गीता ने जीवन के समस्त क्षेत्रों को प्रभावित करने के लिए सौन्दर्यातमक अनुभव के विकास पर सार्वधिक जोर दिया है। भारत के निवासी केवल रोजी–रोटी की ही व्यवस्था नहीं करते; बल्कि उनमें सौन्दर्यानुभूति के भाव भी पाये जाते है। उनमें सुन्दर जीवन के लिए भाव है जिसका अस्तित्व हम अभौतिक स्तर पर देखते है। किसी देश के लिए जिस प्रकार शहर, नगर, नहर और विद्यालय व चिकित्सालय आवश्यक होते हैं उसी प्रकार सौन्दर्यानुभूति है।

विद्यालय एवं समाज को नजदीक लाने की आवश्यकता :— श्री गीता के अनुसार विद्यालय शिक्षा का सशक्त माध्यम तथा सुधार हेतु महत्वपूर्ण अभिकरण है। विद्यालय व्यकित को जीवन के लिए तैयार करता है और विद्यालय स्वयं सबसे उत्तम जीवन है। व्यक्ति को समाज के लिए तैयार करना विद्यालयों का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। बच्चों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास के लिए विद्यालयों में भिन्न—भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों के विकल्प खुले हैं। उसमें छात्रों की योग्यता,क्षमता एवं रूचि के अनुसार निष्ठापूर्वक समाज की सेवा करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं । आज के विद्यालय इस क्षेत्र में अपनी भूमिका ठीक से नहीं निभा पा रहे हैं। अतः विद्यालयों को नए समाज के निर्माण का बीड़ा उठाना चाहिए; क्योंकि विद्यालय ही नए समाज के निर्माता होते है।

जन सामान्य की खुशहाली के लिए प्रयत्न करना :—श्री गीता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य सामाजिक जीवन में खुशहाली बहाल करना है; परन्तु यह भी सत्य है कि हमें जीवन की कठोर सत्यता से अपनी आखों को बन्द नहीं करना चाहिये। हम यह जानते है कि व्यक्तिगत खुशहाली व्यक्ति को इतना आकर्षित करती है कि वह समाज की भलाई को बिल्कुल भूल जाता है। अतः व्यक्तिगत खुशहाली वास्तव में तभी सम्भव हो कसती है जब मानव समस्त प्राणियों के सामान्य खुशहाली के विकास में योगदान करें। गीता भी परम लक्ष्य, मोक्ष अर्थात परम आनन्द पर विश्वास करती है।

मूल्यों के ढाँचों से गीता के विचारों की संगति :— जीवन के प्रति एक जनतांत्रिक समाज एक निश्चित दृष्टिकोंण रखता है। वह दृष्टिकोंण मूल्यों पर आध ारित होता है और उन्हीं मूल्यों को अनुभव करने हेतु हम शिक्षा को अपनाते हैं; क्योंकि शिक्षा द्वारा ही मूल्यों की अनुभूति की जाती है। समाज का जनतांत्रिक ढांचा

मूल्यों के अनुभव पर ही कायम रहता है।

वे मूल्य जिन पर हमें बल देना चाहिये :– वे मूल्य जिन पर हमें बल देना चाहिए। वे हैं– भौतिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य। आध्यात्मिक मूल्य, भौतिक मूल्य से उच्च स्थान रखता है तथा आध्यात्मिक मूल्यो से ओत प्रोत व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक अच्छा व्यक्ति सिद्ध हो जाता है। बौद्धिक गुणवत्ता व्यावहारिक स्तर में गुणात्मक परिवर्तन लाती है। अतः ये मूल्य ही शिक्षा के आधार हैं।

धर्म शास्त्र में नैतिक नियमों को मूल्य माना जाता है। मानव शास्त्री मूल्यों को सांस्कृतिक लक्षणों के रूप में स्वीकार करते है। इस युग के मूल्यों पर सबसे अधिक चिन्तन मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने किया है। मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यों को मनुष्य की रूचियों पसन्दों और अभिवृत्तियों के रूप में लिया है।

प्रत्येक समाज के अपने कुछ विश्वास आदर्श, सिद्धान्त और व्यावहार के मानदण्ड होते हैं। वे ही हमारे जीवन मूल्य है जिसे हम अपने आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरिक करते हैं । जिससे बच्चों में मूल्यों का विकास हो और व परिवार और समुदाय की क्रियाओं में भाग लेने के लिएस्वाभाविक रूप से तैयार रह सके।

श्री गीता एक ऐसा व्यावहारिक ग्रन्थ है जो मानव को मानव ही नहीं बल्कि महामानव बनाना चाहती है। मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने वाला वास्तव में यही एक सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। आज मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है। सभी शिक्षा दार्शनिक आज मूल्य आधारित शिक्षा व उसके पाठ्यक्रम की चर्चा कर रहे है क्योंकि बिना मूल्य के शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है। मूल्य शिक्षा का प्रबन्धन व आयोजन करने की प्रेरणा हमें गीता से ही प्राप्त होती है।

मूल्य व उसकी शिक्षा–मनुष्य को कर्तव्यपरायण होने के लिए मूल्य आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपना व्यावहार पूर्व निश्चित मूल्यों के आधार पर प्रदर्शित करता

है। मूल्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कराने वाले साधन व साध्य दोनों हैं। मूल्य प्रमाणिक व्यावहार व सिद्धान्त हैं। मूल्य का शब्दिक अर्थ है वह वस्तु जिसकी कुछ कीमत हो जिसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति कष्ट उठाने व त्याग करने हेतु तत्पर रहता है।

समाज जिन मूल्यों को अंगीकार कर लेता है, वे ही सामाजिक मूल्य के प्रतिमान बन जाते है; क्योंकि पीढ़ी दर पीढ़ी समाज इन मूल्यों को व्यावहार परक बनाता हुआ आगे बढ़ता है। अतः मूल्य संस्कृति का अविभाज्य अंग है। इन मूल्यों का विकास करना ही वास्तविक शिक्षा है।

मूल्य कई प्रकार के है जैसे व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक।

व्यक्तिगत मूल्य :–जिसे व्यक्ति अपने सामाजिक सम्बन्धों के बिना भी धारण करता है। जैसे – महत्वाकांक्षा, पवित्रता, साहस सहजता, सृजनात्मकता, ईमानदारी, नियमितता और सादगी आदि।

सामाजिक मूल्य :– वे मूल्य जिनका सम्बन्ध समाज से होता है उन्हें सामाजिक कहते हैं। मूल्य जैसे जिम्मेदारी, दयालुता, स्वतंत्रता न्याय, प्रेम, कृतज्ञता आदि।

नैतिक मूल्य :– वे मूल्य जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के चरित्र व व्यक्तित्व से होता है जैसे–ईमानदारी, उत्तरदायित्व का एहसास आदि।

आध्यात्मिक मूल्य :– ये वास्तव में अन्तिम नैतिक मूल्य है। जैसे – पवित्रता, भक्ति, इष्ट के प्रति समर्पण, स्वानुशासन, ध्यान आदि।

व्यावहार परक मूल्य :– जीवन को सफल बनाने के लिए जिन अच्छे आचरणों की आवश्यकता होती है वे ही व्यावहारिक मूल्य हैं। जैसे– मित्रता, मित्रवत व्यवहार,

मूल्य व्यक्ति व समाज दोनों के लिए फायदे मन्द है। इसलिए गीता मूल्य शिक्षा पर विशेष बल देती है।

प्राचीन काल से मूल्य शिक्षा का सम्बन्ध भारतीय समाज से रहा है । वैदिक शिक्षा को नैतिक मूल्यों की शिक्षा ही समझाा जाता था। सत्य, ईमानदारी, भक्ति, कर्तव्यनिष्ठा अनुशासन, सहभावना आदि मूल्य शिक्षा के ही प्रारूप है। महात्मा गांध ी जी ने भी इसी मूल्य शिक्षा को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता, शरीर श्रम, निर्भयता, सहनशीलता, सहचर्य, सहिष्णुता, देश भक्ति, अस्पृश्यता निवारण के रूप में अंगीकार किया है। मूल्य शिक्षा को कोई अलग शिक्षा नहीं मानना चाहिए। वास्तविक शिक्षा की उपज ही मूल्य शिक्षा है। मूल्य शिक्षा पढ़ाई नही जा सकती; किन्तु वह पाठ्यक्रम निर्मित किया जा सकता है जो मूल्यों को व्यक्तियों में विकसित कर सकें।

सहयोगी कार्य और कार्य को सूत्रपात करने के मूल्यों से विद्यार्थियों को परिचित कराने की आवश्यकता है :– इसका तात्पर्य यह है कि बालक को प्रारम्भ से सहयोगी कार्य और कार्य को प्रारम्भ करने के मूल्यों से परिचित कराना चाहिए। बच्चों का प्रशिक्षण, व्यायाम, स्वानुशासन, आत्म निर्देशन व स्व–मूल्यांकन के लिए होना चाहिए। ये बच्चे बड़े होकर पूर्ण नागरिक हो जायेंगे तो सामाजिक कार्यों में इनके सक्रिय योगदान और कार्य करने के प्रशिक्षण से बड़ा सहयोग मिलेगा।

आधुनिक औद्योगिक समाज व्यक्ति की क्रियाशीलता के लिए कोई क्षेत्र नहीं प्रदान करता है; बल्कि इसके विपरीत यह मानव जीवन को यान्त्रिक एवं बनावटी बनाता है। व्यक्ति मशीन का आदी हो जाता है। अतः हमें जिस वस्तु का अनुभव करना है वह यह है कि एक व्यक्ति प्रधान समाज की सलफता केवल मशीनों को

प्राप्त कर लेने पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि उसकी निर्भरता

"संगठित व्यक्तियों को मिलकर कार्य करने के सामान्य सिद्धान्त पर आधारित है।"4

इस प्रकार सहयोगी भावना रूपी गुण समाज में निहित रहता है और हमें अपने बच्चों में इस भावना को उत्पन्न करना चाहिये।

मूल्य का ढाँचा संगठित है :– समाज के मूल्य का ढाँचा सदैव संगठित होता है। श्री गीता के अनुसार जिन मूल्यों को व्यक्ति खोजता है और समाज अनुभूति करने की आकांक्षा करता है, उनमें पूर्ण एकता होनी चाहिये।

श्री गीता के अनुसार मूल्यों को सामाजिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और अन्य बहुत से रूपों में मानते हैं और इन मूल्यों का अलग से अस्तित्व नहीं है; बल्कि इनमें सकता व संगठन है।

मूल्य जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु साधन है :– मूल्य की अधिकता व न्यूनता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इसे किस रूप में देखते व समझते हैं मूल्य समस्त प्राणियों को सामान्य खुशहाली की ओर ले जाते हैं और एक प्रभावी साधन के रूप में जीवन की समस्याओं के समाधान में प्रयोग किये जाते हैं । भारत में जब हम युवकों के आचरण, व्यावहार तथा रूख के विषय में बात करते हैं तो हमारे पास इसे मापन करने के लिए एक पूर्व निश्चित शब्द 'आदर्श' उपलबध होता है। जान डयूवी 'आदर्श' को परिभाषित करते हुएकहते हैं कि –

'किसी कार्य के विस्तृत एवं दूरवर्ती मूल्यों को सामान्य रूप से आदर्श कहा जाता है।"5

जीवन के आदर्श के लिए अध्यापक द्वारा छात्रों को उपदेश देने से पूर्व

वास्तविकताओं, एवं स्थानीय परिस्थितियों को देखना एवं समझना चाहिए ताकि उन की समस्याओं के समाधान में छात्र अपना ध्यान लगा सके।

हम जानते हैं कि मूल्य शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा छात्रों को जनहित, राष्ट्र एवं समाज के लिए तैयार करने वाली है।

आजकल भारतीय चिंतन की प्रकाश ज्योति जलाने का प्रयास किया जा रहा है। भारतीय चिन्तन सदैव आन्तरिक यात्रा पर बल देता रहा है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्द भरा हुआ है। भारतीय शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मानुभूति अर्थात स्व की पहचान कराना है।

जीवन का सत्य कर्म से प्राप्त होता है या ज्ञान से ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये श्री गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि "संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला वास्तव में कुछ भी नहीं है।" ज्ञान प्राप्त हुआ व्यक्ति आत्मा में प्रवेश कर जाता है। अर्जुन ने प्रश्न किया कि " हे जनार्दन यदि कर्मों की अपेक्षा ज्ञान आपको श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव, मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हो?" अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए कृष्ण कहते हैं 'ज्ञान ही पर्याप्त है; क्योंकि यदि ज्ञान प्राप्त हो जाये या घटित हो जाए तो फिर ज्ञान के विपरीत कुछ भी करना संभव नहीं है।" अतः श्री कृष्ण भी यह समझते हैं कि यदि अर्जुन को ज्ञान हो जाए तो उस के लिए युद्ध कोई झंझट न रहेगा।

स्वामी महावीर ने भी इसी तथ्य को कहा था कि अज्ञानियों की क्रिया व्यर्थ है, क्योंकि जो क्रिया ज्ञान में नहीं उतरा और जबरदस्ती आचरण में आ गया है तो वह क्रिया उसे पाखंडी बनायेगी। यदि ज्ञान में आ गये तो आचरण में उतारने के लिए किसी कोशिश की आवश्यकता नहीं है। यदि ज्ञान में आ गया तो आचरण में आने से बच नहीं सकता। उन्होंने यह क्रम बताया है कि दर्शन–ज्ञान क्रिया। इसलिए

बच्चों पर अनुशासन थोपने के बजाय विवेक सिखाना श्रेयस्कर है। इसलिए शिक्षा में रत अध्यापकों कि दशा और दिशा पर श्री कृष्ण, महावीर और पूरे भारतीय चिंतन कि दृष्टि से गहराई से विचार किया जाना आवश्यक है। श्री गीता व्यक्ति के अन्तस को बदलना चाहती है। आज शिक्षा जगत व्यक्ति के वाह्य को बदल रहा है। जोर क्रियाओं पर दिया जा रहा है, जोर बाहर पर दिया जा रहा है। भीतर अन्तस पर नहीं दिया जा रहा है। जबकि हम जानते हैं कि वाह्य अन्तस को नहीं बदल सकता। यदि अन्तस बदल जाय तो वाह्य अवश्य बदल जायेगा।

श्री गीता आत्म ज्ञान पर विशेष बल प्रदान करती है ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक विषयगत ज्ञान, दूसरा आत्मगत ज्ञान। कोई व्यक्ति चाहे लाखों–चीजें जान लें, चाहे पूरे जगत को जान ले। लेकिन यदिवह स्वयं को नहीं जानता तो वह अज्ञानी ही है। आज विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत से साधन है। यदि अध्यापक प्रज्ञावान नहीं है केवल जानकार है तो सही रूप में शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर सकता।

श्री कृष्ण जैसे अध्यापक जानकार ही नहीं है बल्कि प्रज्ञावान भी है। तभी तो वह अर्जुन जैसे शिष्य को शिक्षा रूपी उद्देश्य को प्राप्त कराने में सफल हो सके । शिक्षा का उद्देश्य बाल के अर्न्तनिहित गुणों व शक्तियों का विकास करना है अर्थात उसे आत्मबोध, आत्मज्ञानी, विवेकशील और चैतन्य बनाना है। श्री कृष्ण ने अर्जुन को ऐसा ही बनाया था।

श्री गीता हमें प्रकरान्तर से यह बताना चाहती है कि यदि शिक्षक को अपने अर्न्तज्ञान, विवेक, होश पर विचार करने और परिपूर्ण करने का अवसर नहीं मिलता है तो वह सच्चे अध्यापक के उत्तरदायित्व का निर्वहन ही नहीं कर सकता है। अतः श्री गीता के अनुसार विद्यार्थी को विवेकपूर्ण होशपूर्ण बनाना है। वास्तविक शिक्षा तो

आत्मगत ज्ञान प्रदान करना ही है।

क्रिया वाह्य है, अन्तस केन्द्र है और वाह्य परिधि है; परन्तु अन्तस महत्वपूर्ण है। वाह्य सहयोगी है। वाह्य उतना महत्वपूर्ण नहीं है कि अन्तस को भुला दिया जाए। वास्तव में परिधि भी केन्द्र का ही अंग है। यदि परिधि से बदलने का कार्य प्रारम्भ करे तो केन्द्र तक पहुँचाने में अधिक समय लगेगा यदि केन्द्र से कार्य करें तो क्रियायें अथवा परिधि स्वतः बदल जायेगी। यदि अन्तस बदलेगा तो परिधि उसका अनुशरण करेगी। यदि एक बार स्वयं में उतरना आ जाय तो कोई भी कार्य कठिन नहीं होगा।

श्री कृष्ण ने अर्जुन को स्वयं में उतरना ही सिखाया और फिर उनके लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं रह गया। सारा समाज आज सतह से चिपका हुआ है और उसे डर है कि सतह छोड़ तो खो जायेंगे। भीतर गिरने से डर लगता है; क्योंकि अन्तहीन अंधेरी खाई दिखायी देती है। शिक्षा बाहरी परिवर्तन पर जोर देती है। तो बाहरी बदलाव, आन्तरिक रूपान्तरण नहीं होगा। आज सभी प्राणी उलझन में फंसे हुये है। एक उलझन सुलझती है तो दूसरी खड़ी हो जाती है। इसलिए उलझनों को हमेशा के लिए खत्म करने क लिए अर्न्तदृष्टि की जरूरत पड़ती है। स्वयं को जानना ही अर्न्तदृष्टि है। हम अपने शरीर को जानते हैं, अपने मन को जानते हैं परन्तु शरीर रूपी भवन के तीसरे खण्ड में अजर अमर और अविनाशी आत्मा से अपरिचित रह जाते हैं। श्री गीता की ही भांति महावीर एवं बुद्ध की मूल शिक्षा स्वयं में प्रवेश करने की है। आत्मवोध व आत्म ज्ञान का है। स्वयं को जानना ही आचरण की क्रान्ति का मूल आधार है और शिक्षा में परिवर्तन लाने का यही एक मात्र ताकि ताखिक साधन है। श्री गीता के ही उपदेशों से प्रभावित होकर ईसामसीह ने भी बाइबिल में बार–बार कहा है "जिनके पास आँखें है वे देखें, और जिनके पास कान है वे सुन लें – मैं कहे जा रहा हूँ मैं प्रगट किए जा रहा हूँ।"

जिनसे ईसामसीह कह रहे थे वे अंधे भी नहीं थे, बहरे भी नहीं थे; किन्तु ईसामसीह को उपर्युक्त कथन बार–बार कहना पड़ा। वास्तव मेंवे बाहर दिखने वाली आंखों की बात नहीं कह रहे थे। उनका अर्थ उन आँखों तथा कानों से है जो दिखाई नहीं देती है। वे भीतरी आँख की बात कर रहे थे। ईसामसीह का कथन है कि असली बात वे ही समझ सकते हैं जो भीतरी आँख से देखे और भीतरी कान से सुने। पश्चिम के आचरण वादी, मनुष्य को एक यन्त्र मानते है। मनुष्य में कोई आत्मा नहीं है; इसलिए मानव का आचरण संस्कार मात्र है। आज यही मान्य हो रहा है। इसी प्रकार का चिन्तन चल रहा है कि यदि गलत आचरण को दण्ड दिया जायेगा तो वह घटेगा और निश्चित आचरण को पुरस्कार दिया जाएतो वह बढ़ेगा; परन्तु भारतीय चिंतन मनुष्य को मशीन नहीं मानता, वह तो सच्ची नैतिकता में विश्वास करता है। सच्ची नैतिकता ऊपर से लादी नहीं जाती, वह प्राणों की सहज और स्वाभाविक खिलावट होती है।यदि कोई व्यक्ति भय और लोभ के कारण नैतिक बनेगा तो वह भौतिक परिवर्तन नहीं होगा। लोभ और भय निद्रा के हिस्से है। जाग्रत व्यक्ति को न ही भयभीत किया जा सकता है और न ही प्रलोभित। बुद्ध ने धम्म पद में कहा है– "नत्थि जागरतो भयम् " जागे हुए को भय नहीं। सब भय सोये हुए को है। ऋगवेद में एक सूक्त है– **जागरणम् अभूत्ये स्वप्नम्''6** जागने से उन्नति, सोने से स्वप्न मे अवनति। सारे संसार के आध्यात्म ने घोषणा की है कि मनुष्य सोया हुआ है। इसी तथ्य की उपनिषद के ऋषि आदि सभी उद्घोषणा करते हैं। यही ईसामसीह भी उद्घोषणा करते हैं। एक ही चीज रूपान्तरण ला सकती है वह है जागरण। महावीर ने सम्यक् दृष्टिवाले को जगा हुआ, देखता हुआ और आँख वाला कहा है।

भारतीय शिक्षा हेतु गीता के शिक्षा दर्शन की संगति :– गीता के शैक्षिक दर्शन में सार्वभौमिक मूल्य के तत्व पाये जाते हैं ये तत्व अथवा दर्शन भारतीय शिक्षा

को सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय पुनर्रचना के लिए एक शक्तिशाली साधन के रूप में प्रयोग करने में संगति रखते है।

हम जानते है कि शिक्षा में प्रत्येक पद्धति एवं अभ्यास का निर्माण उस काल के समाज में प्रशंसनीय और प्रमुख रूप से प्रधानता रखने वाले विचारों एवं रूचियों से सम्बन्ध रखता है। हमारे राष्ट्रीय जीवन के प्रमुख विचार एवं रूचि ही हमारे मस्तिष्क में वे उद्‌देश्य है जिनसे हम अपने सपनों का भारत बनाना चाहते हैं। हम राष्ट्रीय पुनर्रचना के कार्य में लगने के लिए सम्पूर्ण मानव को एक शक्ति के रूप में बदलना चाहते हैं। हम गरीबी, बेरोजगारी, अज्ञानता और परम्परागत अन्ध विश्वासों से लड़ रहे हैं। हम अपने औद्योगिक जीवन की पुनर्रचना मे लगे हुए है ताकि प्रमुख आर्थिक कृषि प्रधान जीवन को कृषि उद्योग में बदल सके; परन्तु इसका विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक सार्वभौतिक साक्षरता का विकास नहीं होता है और असंख्य किशोर व किशोरियों को तकनीकी एवं वैज्ञानिक शिक्षा की सुविधा का अवसर नहीं उपलब्ध होता हैं।

श्री गीता के अनुसार जनतन्त्र में केवल शिक्षा ही वह साधन है जिससे आदर्शचरित्र और ज्ञान धारण करने वाले पुरूष एवं स्त्रियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है एवं प्राचीन काल की बहुत सी बुरी परम्पराओं को उखाड़ा जा सकता है। अस्वीकृत विश्वास एवं मूल्यों के स्थान पर नूतन विश्वास एव मूल्यों को स्थापित कियाजा सकता है। इन समस्त कार्य्रो के लिएएक सर्वाधिक प्रभावशाली गीता के शिक्षा दर्शन की महती आवश्यकता है।

गीता दर्शन की मूल्य शिक्षा के अन्दर जो पाठयक्रम निर्मित किया गया वह लोक कल्याण के लिए ही है। इतना होने पर भी वास्तव में सजीव पाठ्‌यक्रम तो शिक्षक है। जो शिक्षार्थी के सामने स्वयं को एक आदर्श के रूप में प्रकट करता है एवं शिक्षार्थी उसका अनुशरण करते है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक दृष्टिकोंण से गीता की शिक्षा आधुनिक समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है एवं भारतीय परिवेश में इसकी पूर्ण संगति है।

श्रीमद् भगवद गीता की शिक्षा योजना, कर्म एवं श्रम की प्रतिष्ठा को महत्व देती है– श्रीमद् भगवद गीता व्यक्ति को कर्म करने के लिये प्रेरित करती है। यदि किसी मनुष्य में ज्ञान प्राप्ति की इच्छा न हो तो वह ज्ञान को प्राप्त ही नहीं कर सकता हऐसे अनिच्छुक मनुष्य को शिक्षा देना मानो चलनी में दूध दुहना ही है। श्री मद्भगवद् गीता के अनुसार उसी मनुष्य को ज्ञान देना चाहिये जिसमें जानने की इच्छा या जिज्ञासा हो। अतः शिक्षक को सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक है कि शिष्य में तत् ज्ञान को प्राप्त करने की जिज्ञासा है या नहीं। अर्जुन के मन में जब ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा आई तथी उसने अपने गुरू श्री कृष्ण से ज्ञान प्रदान करने की याचना की।

श्री गीता कर्म एवं श्रम की महत्ता पर बल देती है क्योंकि कर्मयोगी बनकर ही मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। इस तथ्य को श्री गीता में इस प्रकार वर्णित किया गया है–

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभते अर्जुन ।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।7

कहने का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अनासक्त होता हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ माना जाता है।

अतः श्री गीता के शिक्षा दर्शन का लक्ष्य व्यक्ति को स्वावलम्बी, आत्म निर्भर, श्रमशील, अहिंसक व ईमानदार सामाजिक सदस्य का निर्माण करना है।

श्री गीता प्रजातन्त्रात्मक, सामाजिक शिक्षा का पोषण करती है :– व्यक्ति

एक सामाजिक प्राणी है। अतः समाज के प्रति उसके कुछ कर्तव्य होते हैं। मानव जीवन का एक अंग पर्यावरण स्वयं है। सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत सांस्कृतिक आध्यात्मिक राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम समाज सेवा उत्सव व त्योहारों का आयोजन राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्य तथा देश हित के कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। जो बालक में राष्ट्रीयता सांस्कृतिक चेतना सामाजिक शिष्टाचार और सहकारिता की भावना का विकास करती है। व्यक्तिगत स्वार्थ सामाजिक हित में बदल जाते हैं। यही कारण है कि व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि होते हुये भी सामाजिक हित में बदल जाते हैं अर्जुन का कौरवों के साथ युद्ध अन्ततोगत्वा अपने देश तथा सामाजिक हित के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

श्री गीता का दर्शन प्रत्येक प्राणी से मानव कल्याण के लिये सत्कर्मों को करने की अपेक्षा रखता है क्योंकि सामाजिक सेवा रूपी ईश्वर चिन्तन से मानवीय दुर्बलताओं का समापन होता है और उसमें निर्भयता समाज के प्रति निष्ठा तथा सामाजिक प्राणियों के प्रति सह–भावना का विकास होता है। इस प्रकार से गीता व्यक्ति की भौतिक शक्ति की विभिन्नता में आध्यात्मिक शक्ति की एकता का दर्शन करती है।

श्रीमद् भगवद गीता का विश्व के शिक्षा दर्शन में योगदान :– श्रीमद् भगवद् गीता का शिक्षा दर्शन सर्व कालिक तथा सार्व भौतिक है इसका अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि यह एक देशीय नहीं वरन् सर्वदेशीय है विश्व में अमन तथा शान्ति के लिये यह मील का पत्थर है। आधुनिक युग वैज्ञानिक तथा तकनीकी का युग है। आज सम्पूर्ण विश्व जटिल समस्याओं तथा आपसी द्वेष, कलह, ईर्ष्या से जल रहा है ऐसी विकट परिस्थिति में संजीवनी बूटी के रूप में श्री गीता नारा प्रतिपादित सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहयोग, सद् भावना जैसे उत्तम विचार ही विश्व को सहारा दे सकते हैं। श्री गीता दर्शन के अनुसार व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हित

सामाजिक हित के लिये बलिदान कर देने चाहिये यही मानव के उन्नयन का मात्र आधार स्तम्भ है–

1. श्री मद्भगवद् गीता मानव की पूर्ण क्षमता से सम्पन्न दर्शन है।
2. यह श्रम निष्ठा को महत्व प्रदान करती हे।
3. यह सभी धर्मों एवं संस्कृतियों के प्रति समान आदर धारण करती है तभी तो निर्देश देती है कि स्वधर्म निधनं श्रेयः पर धर्मोभयावह''
4. यह व्यक्ति स्वावलम्बन, समाज स्वावलम्बन पर बल प्रदान करती है।
5. जाति, वर्ग, धन, शक्ति और राष्ट्रीयता आदि की कृत्रिम सीमाओं से बाहर एक सार्व लौकिक स्वतन्त्र मानव लोक 'वसुधैव कुटुम्बकम' की स्थापना पर श्री मद् भगवत गीता जोर देती है।

श्री गीता का शिक्षा दर्शन विकेन्द्रित, स्वावलम्बी तथा श्रेणीहीन सामाजिक व्यवस्थ पर आधारित है जो भारत के लिये ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिये पूर्ण संगति रखती है।

नये युग में श्री मद् भगवद गीता के विचारों की संगति :– वर्तमान युग में शिक्षा नीति की अस्पष्टता हमें जगह–जगह दिखलाई पड़ती है। आज चारों और भ्रष्टाचार, मक्कारी, वेईमानी, चोरी–चकारी, निराशा, घृणा आदि जितनी भी बुराईयां देखने को मिलती हैं उसका सीधा सा कारण है व्यक्ति का अपने जीवन के लक्ष्य को ना पहचानना। श्री गीता शिक्षा का महत्व पूर्ण ग्रन्थ है जो मानव को आत्म बोध की ओर ले जाती है। आत्मबोध व्यक्ति को कलुषता से ऊपर उठाता है और उसे उदार बनाता है। श्री जनार्दन राय के अनुसार – ''वर्तमान दूषित अमानवीय तथा सामाजिक लक्ष्य बेध से हीन शिक्षा प्रणाली में सर्वाधिक सुधार और उपयोगी

परिष्करण करने पर भी भारतीय शिक्षा की अपनी दृष्टि तथा शील का होना अनिवार्य है।"8

श्री गीता की शिक्षा नीति विद्यार्थी का शील तथा नम्र बनाती है इस सम्बन्ध में श्री जनार्दन राय ने पुनः कहा है–

"मैं चाहता हूँ भारत की पंचशील विदेशी नीति के समान ही भारत की शिक्षा नीति जिसे मैं भारत का अमृतशील कहता हूँ होनी चाहिये। भारत के इतिहास को एक आश्वासन और एक वचन दे रखा है और वह यह श्री भगवान कृष्ण ने गीता द्वारा दिया है। भारत के इस अमृतशील देश में हम जातियों, सम्प्रदायों, प्रादेशिक आग्रहों और ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों के तनावों को दूर कर भारतीय विराट आत्मा के प्रकाश शान्तिशील, शक्ति तथा सौन्दर्य के योग्य एवं क्षमतावान अभिव्यक्ति के लिये निःसन्देह प्रयत्न कर सकते हैं।"9

अतः गीता के विचार परिवर्तित होने वाले वैज्ञानिक एवं औधोगिक युग में भी पूर्ण संगति रखते हैं यदि हम उन शिक्षाओं और दर्शन को अपनाने में समर्थ हों सके तो 'राम राज्य' एवं नये 'स्वर्ण युग' का निर्माण कर सकते है। मानव को सत्य, अहिंसा, प्रेम सौहार्द, सद् भावना, समानता की प्रेरणा देती हुई श्री गीता विश्व शान्ति के लिये अग्रसर करती है।

श्रीमद् भगवद गीता का शिक्षा दर्शन मानव जीवन के लक्ष्य के अनुकूल है– अतीत पर वर्तमान पर भविष्य आधारित होता है। यदि वर्तमान प्रदूषित हो तो भविष्य का निर्माण कैसे सम्भव होगा? एक जन तन्त्रात्मक समाज व्यक्तियों का आध्यात्मिक समुदाय है जो समानता एवं स्वतन्त्रता का हामी होता हैं इस प्रकार के समाज में शिक्षा की व्यवस्था का लक्ष्य सामाजिक कुशलता, आध्यात्मिकता, समानता स्वतन्त्रता एवं न्याय जैसी विशेषताओं को उद्घाटित करना है। जन समूह को
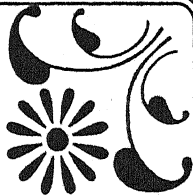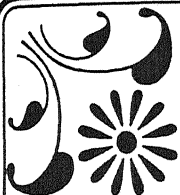
ज्ञानी, बुद्धिमान पौरूषयुक्त एवं सूक्ष्मग्राही होना चाहिये। श्री गीता के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्र की पुनर्रचना एवं पुर्नसंगठन करना है। इस दर्शन के अनुसार शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे राष्ट्रीय सेवा और विकास के लिये कृत संकल्प, चरित्र सम्पन्न और योग्य युवक युवतियों का निर्माण हो सके तभी तो शिक्षा राष्ट्रीय विकास कर सकती है। सामान्य नागरिकता और संस्कृति की भावना पैदा कर सकती है। राष्ट्रीय एकता को मजबूत बना सकती है। विश्व के राष्ट्रो में इस देश की महान सांस्कृतिक विरासत को योग्य स्थान दिलाने के लिये इस ग्रन्थ के शिक्षा दर्शन को मानना आवश्यक है।

श्री गीता के शिक्षा दर्शन का जीवन परिस्थितियों से पूर्ण संगति है – श्री गीता के अनुसार समस्त शिक्षामूर्त जीवन की परिस्थितियों के माध्यम से ही जानी चाहिये ताकि जो भी बालक सीखे वह उसके व्यक्तित्व में घुल मिल जाये। जब बालक सक्रिय होकर ज्ञान प्राप्त करता है और समझ से इसका प्रयोग करता है तथी वह अपने सामाजिक पर्यावरण को ठीक से नियंत्रित कर सकता है। श्री गीता की शिक्षा आत्म निर्भर बनाकर प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कराते हुये जीवन के अन्तिम लक्ष्य आत्मबोध की ओर प्रेरित करती है।

इस प्रकार गीता का शिक्षा दर्शन लोकतान्त्रिक मूल्यों राष्ट्रीय एकता के प्रति वचन बद्ध, आत्म विश्वासी एवं आत्म बोधी व्यक्तियों के विकास पर बल देता है। इसके द्वारा ही व्यक्ति में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य विकसित किये जा सकते हैं अतः इसके विचारों की आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पूर्ण संगति है।

सन्दर्भ ग्रन्थ अध्याय षष्ठम
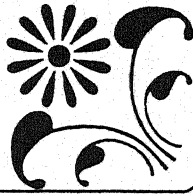
1. स्वामी, प्रभुपाद – श्री मदभगवद गीता यथारूप भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई अध्याय – 13 श्लोक नं0 – 30 पृ0 – 442
2. श्री अरविन्दो – द ब्रेन ऑफ इण्डिया पान्डेचेरी श्री अरविन्दो आश्रम पंचम संस्करण 1955 पृ0 – 9–15
3. रामनाथन, जी – एजूकेशन फ्रॉम डिवीट गॉधी, एशिया पब्लिशिंग हाऊस 1962 – पृ0 – 29
4. डकर, पी0एफ0 – द न्यू सोसायटी इन एनाटॉमी ऑफ इन्डस्ट्रियल आर्डर, हेरप एण्ड ब्रदर्स न्यूयार्क पृ0 – 2
5. डयूवी, जान – Theory of Moral life No. - 133
6. ऋृगवेद – प्राचीन वेद
7. तिलक, बालगंगाधर – गीता रहस्य अध्याय – 3 श्लोक – 7, पृ0 – 656
8. तिवारी, बाल गोविन्द, शिविरा – पृ0 25
9. वही – पृ0 – 25

सप्तम् अध्याय

"भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं में होता है।"

(कोठारी आयोग (1964–66))

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष एवं सुझाव

इतिहास के दर्पण में झॉकते ही हमारा अपना प्रतिविम्ब मुखर हो उठता है। इतिहास की रेखायें हमारी वास्तविकता का दर्शन कराती हैं। इतिहास के पृष्ठ हमारे वैभव को प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं कि हम क्या थे ? हम क्या हैं ? और हम क्या होगें ? इतिहास के आधार पर हम उस बीज तत्व की खोज कर लेते हैं, जिससे हमारा भावी समाज निर्मित होता है। शिक्षा का अध्ययन यदि इतिहास की आखों से किया जाये तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली को दिशा मिल सकती है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य समस्याओं के अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठता प्रदान करता है। शिक्षा के विकास, शिक्षा के वंशक्रम और शिक्षा की संस्कृति का अध्ययन विचार के नये द्वार खोलता है।

प्राचीन काल में आध्यात्मिकता से ही राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक धारायें प्रवाहित हुई। सत्याचरण, प्रेम, अहिंसा आदि पर ही सामाजिक जीवन की नींव रखी गयी है। भारतीय शिक्षा का आरम्भ प्रकृति की गोद में मानव की मूलभूल जिज्ञासा की शान्ति था, जिसका संरक्षण गुरूकुल में होता था। श्री मदभगवद्गीता वह प्राचीन ग्रन्थ है जिसमें सभी दर्शनों की विचार धाराओं का निचोड़ हैं यह केवल प्राचीन कालमें ही नही वर्तमान काल में भी महत्वपूर्ण सार्वकालिक एवं वरणीय है।

श्री मदभगवद् गीता दर्शन वस्तुतः शिक्षा दर्शन का आधार है। गीता दर्शन ने शैक्षिक प्रक्रियाओं के निर्माण में जो योगदान दिया है वह अवर्णनीय है। गीता दर्शन व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक दोनों विद्याओं को भली भॉति आवश्यक बताती है। इसकी महिमा अगाध और असीम है। गीता के महात्मय को बताते हुए कहा गया है –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत्।।1

इस श्लोक में गीता की कई विशेषताओं का सार्थक संकेत है। पहली बात तो यह कि गीता समस्त उपनिषदों का सार है। इससे गीता की महत्ता का आभास मिलता है दूसरा यह सार संकलन स्वयं श्री कृष्ण ने किया है। उपर्युक्त श्लोक को स्पष्ट करते हुये श्री विष्णुकान्त शास्त्री जी कहते हैं –

''गीता के दुग्धामृत का पान करने वाले श्रेष्ठ बुद्धि वाले ही हो सकते हैं। ये श्रेष्ठ बुद्धि वाले भोक्ता किसी भी देश में किसी भी काल में हो सकते हैं।''2

अर्थात अर्जुन के माध्यम से गीता का उपदेश देश–काल निरपेक्ष उन सभी आस्थावान जिज्ञासुओं को दिया गया है, जो श्रद्धा पूर्वक परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उपनिषदों को वेदों का ज्ञानकाण्ड कहा जाता है। गीता में वेदों और उपनिषदों के ज्ञान का सार समाहित है।

श्री गीता दर्शन में शिक्षा का आधार धर्म तथा धार्मिक क्रियाऐं हैं। शिक्षा प्रकाश का स्रोत है अशिक्षित मनुष्य पशु के समान है 'विद्याविहीनः पशु'। शिक्षा ज्ञान है और वह मनुष्य का तीसरा नेत्र है 'ज्ञान तृतीय मनुजस्य नेत्र'। ज्ञान से मनुष्य के अन्तः चक्षु खुल जाते हैं। उसे आध्यामिक एवं आलौकिक प्रकाश मिलता है जो जीवन का लक्ष्य है। शिक्षा के द्वारा समस्त मानव जीवन का विकास सम्भव है।

विद्या, माता की तरह रक्षा करती है, पिता की तरह सद्मार्ग का अनुकरण करने की प्रेरणा देती है और पत्नी के समान सुख देती है – ''मातेव रक्षति, पितेव हिते नियुक्ते, कान्तेव चापि रमयत्य पत्नीम् स्वेदम्''

शिक्षा सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए होनी चाहिए। केवल भौतिक शक्ति की प्राप्ति शिक्षा नहीं है जैसा की गॉधी जी ने कहा है –

"सच्ची शिक्षा भौतिक शक्ति की प्राप्ति के लिए नही होनी चाहिए, इसे आध्यात्मिक शक्ति के प्रतिफल के रूप में प्रकट होना चाहिए।"3

1. **ज्ञान व अनुभव पर बल –** गीता दर्शन बालक को ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त करने पर बल देता है। वर्तमान काल की तरह इस समय उपाधि वितरण की प्रथा नहीं थी। अतः छात्रों की योग्यता का मापन तर्क विर्तक शास्त्रार्थ के आधार पर किया जाता था। डॉ0 आर0के0 मुखर्जी के अनुसार – "शिक्षा का उद्देश्य पढ़ना नहीं, ज्ञान एवं अनुभव को आत्मसात करना है।"4

2. **आध्यात्मिकता –** गीता दर्शन के अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी है। विद्या मुक्ति का मार्ग प्रशस्त्र करती है। ईश्वर प्राप्ति ही मुक्ति है।

3. **चरित्र तथा व्यक्तित्व का विकास –** गीता शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य बालको के चरित्र तथा व्यक्तित्व का विकास करना बताती है। उत्तम वातावरण में सदाचार के उपदेश, महापुरूषों के जीवन चरित्र तथा उनके आदर्शों द्वारा छात्रों को अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व का विकास करना चाहिये। छात्रों में आत्मसंयम, आत्म सम्मान प्रेम, सहयोग सद्भावना आदि सद्गुणों को विकसित करना चाहिये यही श्री गीता का शैक्षिक लक्ष्य है।

4. **आत्म नियंत्रण –** इन्द्रिय निग्रह के द्वारा छात्रों में आत्म नियंत्रण की क्षमता का विकास करना चाहिये। इसका शिक्षा दर्शन अपने विद्यार्थियों को आत्म नियंत्रण की शिक्षा देता है।

5. **सामाजिकता की भावना पैदा करना –** अतिथि सत्कार, आज्ञा पालन, अनुशासन, दूसरों की सहायता, सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करना आदि गुण भी विद्यार्थियों में विकसित करना चाहिये। ऐसा आदेश इस ग्रन्थ की शैक्षिक विचार धारा का है।

6. **व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास –** शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक, चारित्रिक, नैतिक सम्पूर्ण विकास बालक का होना चाहिये। गीता के

अनुसार शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति को केवल मानसिक रूप से ही नहीं शारीरिक रूप से भी पुष्ट बनाये। श्री गीता दर्शन मस्तिष्क (Head) हस्त (Hand) और हृदय (Heart) तीनों के विकास तथा सामंजस्य पर जोर देती है। गीता योग में कर्मयोग, भक्ति योग, ज्ञान योग समाहित है। जिसके द्वारा बालक का सम्पूर्ण विकास होता है।

गीता का शिक्षा दर्शन मानव की पूर्ण क्षमता से सम्पन्न दर्शन है। यह सभी प्रकार से नौजबानों को स्वाव लम्बी बनाना चाहती है तथा जीवन की कठिन समस्याओं का सामना करने के योग्य बनाती है।

7. **गीता दर्शन का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति –** गीता दर्शन के अनुसार मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य "आत्मानुभूति" है। जिसका तात्पर्य है अन्तिम सत्य का अनुभव करना, मोक्ष प्राप्त करना व ईश्वर का साक्षात्कार करना। गीता दर्शन का मौलिक तत्व मानव जीवन के लक्ष्य की व्याख्या करना और उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये मार्ग व विधि प्रतिपादित करन है। यदि जीवन का लक्ष्य ईश्वरनुभूति है तो हमें ईश्वर के विषय में व उसे जानने, अनुभव करने का सतत अभ्यासी होना चाहिये–ईश्वर की असंख्य परिभाषायें हैं ईश्वर का प्रकाशन या उसकी अभिव्यक्ति अनन्त है। श्री गीता हमें बताती है कि सत्य ही ईश्वर है अथवा ईश्वर ही सत्य है। वह सृष्टिकर्ता सम्पूर्ण जगत का पालन करने वाला, सर्व ज्ञानी, सर्वदाता तथा न्यायी है।

अतः श्री गीता वह मार्ग प्रस्तुत करती है जिसके माध्यम से मनुष्य इस योग्य बनता है कि वह सत्य तथा आत्मा की ईश्वरानुभूति कर सके।

श्री गीता का सम्पूर्ण सार इसमें वर्णित योग दर्शन में निहित है। यथा – 1. कर्म योग में 2. ज्ञान योग में 3. भक्ति योग में।

8. **श्री गीता का कर्म योग –** इहलोक व परलोक दोनों दृष्टियों से मनुष्य के लिये

कर्म करना अनिवार्य है परन्तु आधुनिक समाज स्वार्थ के घेरे में जकड़ा हुआ है। श्री गीता कुछ कर्मो के त्याग करने का उपदेश देती है। ऐसा करने से व्यक्ति के जीवन में शान्ति तथा देश एवं विश्व में सोहार्दपूर्ण वातावरण निर्मित होता है।

1. **निषिद्ध कर्मो का सर्वथा त्याग –** चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, जबरदस्ती, हिंसा, अभक्ष्य भोजन और प्रमाद आदि नीच कर्मो को मन वाणी और शरीर से किसी भी दशा में न करना प्रथम श्रेणी का त्याग है।

2. **काम्य कर्मो का त्याग –** तत्कालिक उद्देश्यों के पूर्ति के लिए काम्य कर्म अवश्य करना चाहिये क्योंकि इसके बिना न तो समाज की न राष्ट्र की न तद् राष्ट्र की संस्कृति का विकास होगा। भौतिक सुख सुविधाओं की उपलब्धि तत्कालिक काम्य कर्म करने से ही होती है किन्तु अन्ततोगत्वा सत्यान्वेषी अथवा आत्मानुभूति के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को इन काम्य कर्मो का भी त्याग कर देना चाहिए। श्री गीता के अनुसार स्त्री, धन, पुत्र, मान, प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले यज्ञ, दान, तप आदि काम्य कर्मो का भी त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार का त्याग द्वितीय श्रेणी का माना गया है।

3. **तृष्णा का सर्वथा त्याग –** मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, धन सम्पत्ति आदि को बढ़ाने की इच्छा का त्याग तृतीय श्रेणी का त्याग है।

4. **स्वार्थ के लिये दूसरों से सेवा कराने का त्याग चतुर्थ श्रेणी का त्याग है।–**

5. **आलस्य का त्याग तथा कर्म के फल की इच्छा का त्याग पॉचवी श्रेणी का त्याग है।**

6. **संसार के सम्पूर्ण पदार्थो में ममता और आसक्ति का त्याग षष्टम श्रेणी का त्याग है।**

7. **अहं भाव का त्याग वास्तव में सप्तम श्रेणी का त्याग है बिना इसके त्याग के आत्मा नुभूति संभव नहीं है।**

इन सभी कर्मो को करते हुये उनसे संलग्न फल का परित्याग वास्तव में मानव को शान्ति का अनुभव कराता है तथा ईश्वर की अनुभूति में अग्रसर करता है। इस प्रकार जो समदृष्टि रखता हुआ संसार में समस्त कार्यो को सम्पादित करता है वही वास्तव में उच्च पुरूष कहलाता है क्रीचमाण कर्तव्यों के गुण व कर्म के अनुसार सांसारिक प्राणियों की उत्तम, मध्यम तथा निम्न गतियां बतलाई गई है। कर्मानुसार ही व्यक्ति की जाति एवं गति निश्चित होती है।

श्री गीता में निहित प्रमुख बाते इस प्रकार हैं –

1. वाध्य कर्म की अपेक्षा कर्ता की बुद्धि ही श्रेष्ठ है।

2. भौतिक वादी बुद्धि में जब समत्व की अनुभूति हो जाती है तो वह बुद्धि अपने आप ही परिशुद्ध हो जाती है।

3. सम और स्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति ही स्थित प्रज्ञ पुरूष कहलाता है।

4. ऐसे स्थित प्रज्ञ पुरूष के कार्य व आचरण सामान्य पुरूष के लिये आदर्श बन जाते है।

5. जीवन का अन्तिम लक्ष्य है मोक्ष अर्थात सांसारिक बन्धनों से मुक्ति या आत्मानुभूति प्राप्त करना।

श्री गीता द्वारा वर्णित तथ्य आदर्श जीवन की नींव रखते हैं। अधिकांश लोग गीता के उपदेश को एक बखेड़ा समझते हैं उनके अनुसार इसके उपदेश हमें इस संसार को त्याग देने एवं सन्यासी बनाने में सहायता देते हैं किन्तु ऐसा सोचना अपनी अल्पज्ञता प्रकट करना है श्री गीता तो हमें कर्मठ, कर्मशील और कर्मो में कुशलता का योगात्मक पाठ पढ़ाती है। श्री गीता जीवन के समस्त कर्मो में कुशलता का योगात्मक पाठ पढ़ती है। श्री गीता जीवन के समस्त कर्मो को करता हुआ और इन कर्मो के फल की इच्छा न करते हुये उसे ईश्वरार्पण करने का मन्तव्य प्रस्तुत करती है। जब मनुष्य इस भाव भूमि पर उतर कर जीवन के

समस्त कर्मो को करता हुआ भी अपने को कर्ता न मानते हुये निमित्त समझता है तो वही शरीर स्वआत्मानुभूति को प्राप्त कर आत्म ज्ञानी बन जाता है।

श्री गीता का प्रतिपाद्य विषय कर्म योग ही है ज्ञान और कर्म में विरोध नहीं है। गीता में कर्म योग के इस सिद्धान्त का विस्तार सहित वर्णन किया गया है। वासना का क्षय होने पर भी ज्ञानी पुरूष अपने सब कर्मो को परमेश्वर को अर्पण करके लोक संग्रह के लिये केवल कर्तव्य समझ कर कार्य करते रहते है। अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करने के लिये श्री कृष्ण ने यही उपदेश दिया था कि – हे अर्जुन –

''तस्मात्सर्वेशु कालेशु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेंवैश्यस्य संशयम।।''5

तू मुझ परमेश्वर को सब कर्म समर्पित करके युद्ध कर, ऐसा करने से तू पाप पुण्य से विरत रहेगा। अतः अर्जुन के समान ही किसान, सुनार, लोहार, बढई, बनिया, ब्राह्मण, व्यापारी, लेखक, उद्यमी इत्यादि सभी को अपने अपने अधिकारानुरूप अपने अपने कर्मो व व्यवहारों को परमेश्वर को अर्पण कर निष्काम बुद्धि से कर्म करते रहना चाहिये। ऐसा करने से व्यक्ति को पाप नहीं लगता है क्योकि दोष केवल कर्ता की बुद्धि में होता है न कि उसके कर्मो में। अतः समत्व बुद्धि से कर्म करते रहना चाहिये। अतः गीता निरन्तर कर्म रत रहने पर जोर देती है।

''नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ध्यकर्मठाः।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्ध सेदकर्मणः।।6

गीता के अनुसार कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। आधुनिक पश्चिमी पंडित भी कर्म त्याग की अपेक्षा कर्म मार्ग की श्रेष्ठता के जो कारण बताये

हैं वह श्री गीता के कर्म प्रवृत्ति मार्ग से भिन्न हैं। पश्चिमी कर्म मार्गीय लोग ''सुख प्राप्ति के आशा से सांसारिक कर्म करने वाले'' होते हैं और कर्म का त्याग करने वाले लोग ''संसार से दबे हुये'' होते हैं, परन्तु श्री मदभगवद् गीता का वर्णित कर्म मार्ग इससे भिन्न है।

मनुष्य सांसारिक सुखो की प्राप्ति के लिये ही सांसारिक कर्मो में प्रवृत्त होता है। मनुष्य को चाहिये कि सुख और दुख का विचार किये बिना जो भी कर्म हमारे करने हेतु आवे उसे निष्काम बुद्धि से करते रहना चाहिये संक्षेप में यही गीता दर्शन का कर्म योग है।

दो विश्व युद्धों ने मानव जाति की भौतिक एवं सामाजिक जीवन की प्रगति को इस प्रकार अवरूद्ध किया है कि हमारी प्राचीन परम्परायें, विश्वास, रीति रिवाज एवं संस्थाओं को विनष्ट कर दिया। अतः अपनी संस्कृति, विश्वासों की पुनर्रचना में श्री गीता की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः हम जानते है कि सामाजिक आवश्यकतानुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य समाज की पुनर्रचना एवं पुर्न संगठन करना ही है।

सचेतन एवं शिक्षित मानव समूह ही जनतन्त्र का सार है। ऐसा नहीं है कि मानव समूह केवल शासित होता है, वही शासन भी करता है। इसलिये जन समूह को बुद्धिमान, ज्ञानवान, पौरूषयुक्त एवं सूक्ष्मग्राही होना चाहिये। निष्कर्ष रूप में हम श्री गीता धर्म को ज्ञान का आधार मानते हैं। गीता धर्म कैसा है ? वह सर्वतोपरि निर्भर है व्यापक है। श्री गीता वर्ण, जाति, देश या किसी अन्य भेदों के झगड़ों में न पड़कर सम्पूर्ण मानव को एक ही माप तौल से सद्गति देने का प्रयत्न करती है। सभी धर्मो के प्रति यथोचित सहिष्णुता प्रस्तुत करता है। यह सनातन वैदिक धर्म वृक्ष का अत्यन्त मधुर तथा अमृत फल है। अतः उपनिषदों का ज्ञान, ब्रम्ह ज्ञान तथा प्रेम का ज्ञान अर्जुन को निमित्त मानकर गीतोपदेश के रूप

में मुक्त कंठ से कहा गया है जो सभी के लिये बोधगम्य था।

जब तक इस दर्शन के अनुसार मानव अपने कर्तव्यों व व्यवहारों को प्रस्तुत करता रहा है यह देश अपने उत्थान एवं उत्कृष्टता पर था परन्तु जब से इस दर्शन के आदर्श छूट गये तभी से इस देश की मानवीय दृष्टि से निकृष्ट अवस्था आरम्भ हो गई और भारतीय गौरवशाली शिक्षा दर्शन अनुपयुक्त सा हो गया है। अतः हमे प्राचीन गौरव का स्मरण करते हुये श्री गीता दर्शन को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समझें एवं अंगीकृत कर लोक कल्याण का कार्य करें।

सुझाव – प्रस्तुत शोध भारतीय परिप्रेक्ष्य में श्री मद्‌भगवद् गीता के शैक्षिक निहितार्थ की प्रसांगिकता का एक अध्ययन है। जो वर्तमान में अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनुसंधान के क्षेत्र में उपयोगी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय समाज पाश्चात्य् संस्कृति की चपेट में आ गया था तथा यदि हम अपनी संस्कृति को जीवित रखना चाहते हैं तो हमें श्री मद्‌भगवद् गीता के शैक्षिक दर्शन के अध्ययन तथा अध्यापन पर जोर देना चाहिये। श्री मद्‌भगवद् गीता इतना विशाल ग्रन्थ है कि इसमें नित नये रहस्यों का उद्‌घाटन होता रहता है। गीता ज्ञान का अथाह समुद्र है। इस के अन्दर ज्ञान का अत्यन्त भण्डार भरा पड़ा है अतः अभी भी कई पहलू ऐसे हैं जिन पर शोध किया जा सकता है। जो निम्न प्रकार है –

1. श्री मद्‌भगवद्‌गीता दर्शन के संदर्भ में विभिन्न शैक्षिक, व दार्शनिक विचार धाराओं यथा आदर्श वाद, प्रयोजन वाद, मानवता वाद, प्रकृति वाद, वास्तव वाद आदि का एक तुलनात्मक अध्ययन।
2. श्री मद्‌भगवद् गीता दर्शन की लोक कल्याण कारी राज्य की अवधारणा का एक अध्ययन।
3. आधुनिक भारतीय शैक्षिक समस्याओं में गीता के शिक्षा दर्शन की भूमिका का अध्ययन।
4. श्री मद्‌भगवद् गीता दर्शन एवं अन्य समकालीन दर्शनो के शैक्षिक विचारों को तुलनात्मक अध्ययन।

सन्दर्भ ग्रन्थ अध्याय सप्तम

1. तिलक, बाल गंगाधर – गीता रहस्य, विषय प्रवेश पृ0 – 2
2. शास्त्री, विष्णु कान्त (राज्यपाल उत्तर प्रदेश) – अभिलेख (आत्मनियंत्रित कड़ी साधना है तप दैनिक जागरण 29 जुलाई – 2003
3. गॉधी, एम0के0 – सच्ची शिक्षा साहित्य मण्डल अहमदाबाद
4. मुखर्जी, आर0के0 – The Teacher's world 4-2-48
5. तिलक, बाल गंगाधर – पृ0 – 746
6. वही – पृ0 – 657

परिशिष्ट एवं सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

परिशिष्ट

सन्दर्भ सूची

1. अल्तेकर, ए0एस0 – प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति इण्डियन बुक शॉप, बनारस 1951
2. अरस्तु – पॉलिटिक्स
3. अग्रवाल, प्रेमलता – युग पुरूष महात्मा गॉधी, मेरठ 1972
4. अभ्युदय – मदन मोहन मालवीय, जीवन और नेतृत्व मुकुट बिहारी लाल 1909
5. अवधूत गीता – गीता
6. आपस्तम्व – धर्मसूत्र
7. आधुनिक भारत के निर्माता पण्डित मदन मोहन मालवीय भारत सरकार नई दिल्ली 1970
8. ईशावस्योपनिषद – उपनिषद
9. ऐतरेय ब्रह्मण – विनायक गणेश आपटे, हिन्दी सहित्य सम्मेलन प्रयोग
10. ओढ, एल0के0 – शिक्षा के दार्शनिक आधार, राजस्पान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
11. ऋृगवेद – वेद
12. कणेपनिषद – उपनिषद
13. कबीर दास – दोहे
14. कठोपनिपद – सं0 नारायणराम आ0 निर्णय सागर प्रेस मुम्बई 1948
15. कौशाम्बी, वी0सी0 – प्राचीन भारत में शिक्षा का विकास (600–1200) पी0एच0डी0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर 1992

16. गोयन्दका, जयदयाल – श्री मदभगवत गीता तत्वविवेचनी हिन्दी टीका गीता प्रेस गोरखपुर सं0 – 2057

17. गॉधी, एम0के0 – हिन्दू धर्म, नवजीवन पविलशिंग हाऊस अहमदाबाद 1950

18. गॉधी, महात्मा – गुजरात महाविद्यालय के व्याख्यान 1921

19. गॉधी, महात्मा – 'बापू क सीख' नई दिल्ली 1949

20. गुप्ता, एस0पी0 – आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2002

21. गॉधी, एम0के0 – दक्षिण अफ्रीका सत्यग्रह इतिहास गुजरात।

22. गॉधी, एम0के0 – सच्ची शिक्षा – साहित्य मण्ड

23. गॉधी, एम0के0 – 'गीता द मदर' जग प्रवेश चन्द्र प्रकाशन लाहौर

24. गॉधी, महात्मा – गुजरात महाविद्यालय के व्याख्यान – 1931

25. गीता पढ़ने से लाभ – गीता प्रेस गौरखपुर

26. गीता दर्पण – गीता प्रेस गौरखपुर

27. गॉधी, महात्मा – बापू की सीख नई दिल्ली – 1949

28. चतुर्वेदी, सीताराम – ''आधुनिक भारत के निर्माता'' पं0 मदन मोहन मालवीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार – 1970

29. जालान, मोतीलाल – श्री मदभगवद् गीता भाषा गीता प्रेस गौरखपुर संवत – 2032

30. टैगोर, रवीन्द्र नाथ – 'पर्सनेलिटी' शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त, रामबाबू गुप्ता (संकलन)

31. तिलक, बालगंगाधर – श्री मदभगवत गीता रहस्य, गणेश मुद्रणालय पुणे – 2000

32. तैत्तिरीयोपनिषद – उपनिषद

33. तुलसीदास – रामचरितमानस

34. दैवी पुराण – पुराण

35. देवराज – विश्व के सन्त महापुरूष काशी हिन्दू वि0वि0 1964

36. पातज्जलयोगदर्शन – दर्शन

37. पद्मपुराण – पुराण

38. पौद्धार, हनुमानप्रसाद – महात्मा गॉधी आत्यकथा नई दिल्ली, 1951

39. पाण्डेय, रामशक्ल – शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा 1983

40. परमहंस, डॉ0 राधेश्याम – अष्टावक्र गीता, राजा पॉकेट बुक्स दिल्ली – 2001

41. भट्ट, कृष्णदत्त, पंडित – 'कल्याण' लेख – पढ़ना और हे गुनना 2005

42. भर्तृहरि – नीतिशतक

43. भावे, विनोवा – "तीसरी शक्ति" सर्वोदय संध प्रकाशन वाराणसी 1960

44. भारतीय दर्शन का इतिहास – साहित्य भण्डार, मेरठ तृतीय संस्करण

45. भारतीय दर्शन की रूपरेखा – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वितीय संस्करण 1969

46. भटनागर, सुरेश – भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास मेरठ 2004

47. भटनागर, सुरेश – आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याऐं मेरठ 2001

48. महाभारत – वनपर्व

49. महाभारत – शन्तिपर्व

50. मालवीय, पदमकान्त – मालवीय जी के लेख, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली 962

51. महात्मा गॉधी – 'बेसिक एजूकेशन' नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस अहमदाबाद 1951
52. मुकुट बिहारी लाल – महामना मदन मोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व 1978
53. मैक्समूलर – भारतीय दर्शन प्राक्थन
54. मालवीय, मदन मोहन – हिन्दु धर्मोपदेश संवत – 1989
55. मनृस्मृति – आचार्य मनु
56. यजुर्वेद – प्राचीन वेद
57. रामसुखदास स्वामी – श्री मदभगवत गीता साधक संजीवनी गीता प्रेस गोरखपुर सं0 – 2057
58. रामसुखदास स्वामी – गीता माधुर्य, गीता प्रेस गोरखपुर संवत– 2057
59. रूसो – एमील, डेन्ट लन्दन 1925
60. लाल, रमन बिहारी – शिक्षा के दार्शिनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त रस्तौगी पब्लिकेशन मेरठ – 1995
61. वेद व्यास कृत – महाभारत भीष्मपर्व
62. वाराहपुराण – पुराण
63. बृहदारव्यक – आरव्यक
64. विनीत, गोविन्ददास सम्पादित – महा भारत खेमराज श्री कृष्णदास 91/109, खेमराज श्री कृष्णदास मार्ग, मुम्बाई 2000
65. वासुदेव शरण – महामना मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण (संकलन)
66. वर्मा, ईश्वरी प्रसाद – मालवीय जी के सपनो का भारत किताब घर, दिल्ली 1967
67. हितोपदेश – प्रस्तावना

68. शर्मा, प्रो0 राममूर्मि – शंकराचार्य उनके मायवाद तथा अन्य सिद्धान्तों का आलोचनात्मक अध्ययन, साहित्य भण्डार मेरठ 1964

69. शर्मा, श्रीमती मणी – समकालीन भारतीय शिक्षा का स्परूप तथा उसकी सम्भावनायें, एच0पी0 भार्गव बुक हाऊस भार्गव भवन 4/230 कचहरी घाट आगरा 2000

70. स्वामी, प्रभूपाद – कृष्णभावनामृतः सर्वोत्तम योग पद्धति भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट मुम्बई 2004

71. स्वामी, प्रभुयाद – श्री मदभगवत गीता यथारूप, मुम्बई – 2004

72. सम्पूर्णानन्द – परम्परा और आधुनिकता, ज्ञान मण्डल वाराणसी 1962

Books of English

1. Altekar, A.S. - Education in ancient India, Nand Kishore Brothers Varanasi 1951
2. Anderws, C.F. - "Mahatma Gandhi's Ideas" Allan and Unwin, Landon, 1929
3. Andrews, Sir John - "Evolution of Educational Theory" Macmillan, London, 1915
4. A system of National Education Calcutta, Arya Publishing House 1949
5. Bhattacharya Sidheswara - Philosophy of shrimad Bhagavat Geeta Vishavabharti Shanti Niketan
6. Brown, D.M. - Indian political thought from Manu to Gandhi, The white umbrela, Jaico 1964
7. Bhave, Vinoba - "Teesari Shakti" Sarvodaya Sangh Prakashan. Varanasi, First Edition 20th Oct. 1960
8. Bhagavad Geeta - "Hindu teaching on the separatino of spiritual & non spiritual. A paper published by S.N. Apte. Mumbai 2004
9. Convocation speech of Mahamana Madan Mohan Malviya B.H.U. 1929-30
10. Chatterji, H.N. - Concept of good and evil in Bhagavad Geeta
11. Das gupta, S.N. - History of Indian Philosophy university press cambridge 1992
12. Das, S.K. - The educational system of Ancient Hindus Mitra Press Calcutta 1930
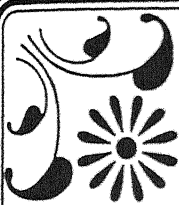
13. Desai, R.P. - Mahatma Gandhi, "The influence of the Bhagavad Geeta and Krishna on his Ideology and teachings.

14. Gandhi M.K. - The collection works of Mahatma Gandhi, New Delhi 1968

15. Ghandi M.K. - "An autobiography" the story of my experiences with truth translator 'Mahaveer Prasad Poddar' Sahtya Mandal New Delhi 1951

16. Goyandka, Jaydayal - Secret of Jnana yoga, Geeta Press Gorakhpur 2003

17. Goyandka, Jaydayal - Secret of Prem yoga, Geeta Press Gorakhpur 2004

18. Goyandka, Jaydayal - Secret of Karma yoga, Geeta Press Gorakhpur 2004

19. Goyandka, Jaydayal - Secret of Bhakti yoga, Geeta Press Gorakhpur 2004

20. Goyandka, Jaydayal - Gemas of Truth, Geeta Press Gorakhpur 2003

21. Goyandka, Jaydayal - Sure steps of God Realization, Geeta Press Gorakhpur 2003

22. Goyandka, Jaydayal - What is Dharma ? What is God ? Geeta Press Gorakhpur 2003

23. Gandhi M.K. - 'Basic education, Nav Jeevan Publishing House Ahmadabad 1937

24. Ghandi M.K. - Yonug India - 1919-22 (Tagore & Madres)

25. Gandhi M.K. - 'Towards New education N.P.H. 1937 and 1953

26. Himalyan, R.T. Pt. - Seven system of Indian philosophy

27. John Macqarrie - In search of deity : An essay in dialactical theism London 2005

28. Jayadvaita Swami - The Krishna Conscious vision of spiritual equalty

29. J.L. Bhavad - Comparison of the Bhagvad Geeta and the Bible.

30. K.F.E. - History of indian educatino on accient and latar time, Hampry Millford, Oxford University press London.

31. Kripalani J.V. - Gandhi His Life & Thought, New delhi 1970

32. Mukherji S.N. - Education in India today and tomorrow 1964

33. Mitra S.N. - Bhagvat Geeta, the analects and symposium a paper which presents common features of socrates with Bhagwat Geeta Mumbai 2005

34. Mukharji R.K. - Ancient Indian Education

35. Malviya, M.M. - Biography of eminent indians, nateshan and company Madras.

36. Pal B.C. - Swadeshi and swaraj, the rise of new patriotism Calcatta 1954

37. P. Pindu - Gandhi's is use of Bhagavad Geeta

38. Rousseau, J.J. - "Emile" translated by Barbaran Foxlay, (Everyman's Library, Dent, London 1923)

39. Sharma Ram Nath- Shri Aurobindo's philosophy of social development atlantic Delhi 1991

40. Shri Aurobindo - The Brainof India Aurobindo Ashram Pandichary 1955

41. Soares, A.K. - Lectures and addresses by Rabindra Nath Tagore, London 1962

42. Swami Prabhupatta - The Nector of devotion, Mumbai 2002

43. Tolystoy liyo - Towards struggle, Patama Publication Mumbai 1936

Journals and Periodicals etc.

(1) Danik Jagran (Daily) - An article written by Vishnukant Shastri

Governor of Uttar Pradesh 29 July 2003

(2) Journal of Educational and Psycholgoy, Baroda.

(3) Harijan (Weakly) 1933-40, 1942 and 1945-48 (N.P.)

(4) Harijan Bandhu - Ahmadabad, N.P.

(5) Harijan Sewak - Ahamadabad, N.P.

(6) Kalyan (Monthly) - 2003-05, Gorakhpur

(7) Karm Ki Mahatta - An articles in Danik Jagran by Vishnu Kant Shastri

Governer Uttar Pradesh 22 July 2003

(8) Politics and Morality - Quarterly (Vishwa Bharti Gandhi Memorial Paice,

Shanti Niketan, 1944, By Sprinks Stefenation

(9) Rishiprasad (Monthaly) - 2005-05, Ahamadabad

(10) Vishvabharti, Quarterly, Shantiniketan, Education Number

(Vol. XIII) 1948

गीता के विषय में महान विभूतियों के वक्तव्य
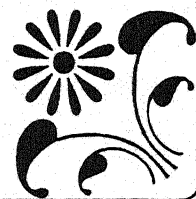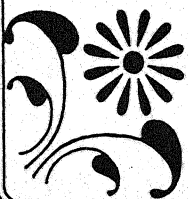
Extraordinary Personalities Reflect upon Shrimad Bhagavad Geeta

When I need the Bhargavad Geeta and reflect about how god created this universe every thing else seems so superfluous. (Albert Einstein)

The Bhargavad Geeta calls on humanity to dedicate body mind and soul to pure duty and not to become mental voluptuaries at the mercy of random desires and undisciplined inpulses. (Mahatma Gandhi)

The Bhagwat Geeta has a profound influence on the spirit of mankind by its devotion to god which is manifested by actions. (Dr. Albert Schweizey)

The Bhagavad Geeta is a tried scripture of the human race a living creation rather than a book, with a new message for every age and a new meaning for every civilization. (Aarvindo)

The Bhagavad Geeta deals essentially with the spiritual foundation of human existence. It is a call of action to meet the obligation and duties of life, yet keeping in view the spiritual nature and grander purpose of the universe.

(J.L. Nehru)

The secret of Karmayoga which is to perform actions without any fruitive desires is taught by lord krishna in the Bhagavad Geeta.

(Vivekananda)

The Bhagavad Geeta is an empire of thought and in its philosophical teachings Krishna has all the tributes of the full fledged montheistic deity and at the some time the attributes of the Upnisadic absolute.

(Ralph waldo Enesson)

The Bhagavat Geeta is the most systematic statement of spiritual evolution of endouring value to mankind. It is one of the most clear and comprehensive summaries of perennial philosophy ever revealed, hence its enduring value is subject not only to India but to all of humanity.

(Huxley)
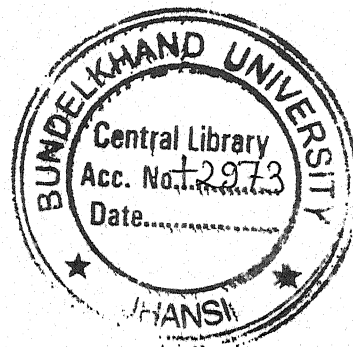
Om Nahoh Bhagwate Vasudevaya